'पद्मपुराण'
और
'रामचरितमानस'

(भाग-२)

लेखक :
डा० रमाकान्त शुक्ल

१९८२

प्रकाशक :
सुधाकमल ग्रन्थालय
नयी दिल्ली मुजफ्फरनगर

'पद्मपुराण'
और
'रामचरितमानस'

(भाग-२)

लेखक:
डा० रमाकान्त शुक्ल
एम०ए० हिन्दी (लब्धस्वर्णपदक), एम०ए० संस्कृत,
साहित्याचार्य, सांख्ययोगाचार्य, पी-एच०डी०,
वरिष्ठ प्राध्यापक, हिन्दी-विभाग,
राजधानी कालेज (दिल्ली विश्वविद्यालय)
राजा गार्डन, नयी दिल्ली–११००१५

प्रकाशक :
सुधाकमल ग्रन्थालय
नयी दिल्ली मुजफ्फरनगर

'पद्मपुराण और रामचरितमानस' (भाग-२)
(ले० डा० रमाकान्त शुक्ल)

सर्वाधिकार : डॉ० रमाकान्त शुक्ल

प्रकाशक : सुधाकमल ग्रन्थालय
WZ १४७ए, सूबेदार मार्किट, उत्तम नगर,
नयी दिल्ली-११००५९
२६४ उत्तरी गाधी कालौनी, मुज्जफरनगर
(उ० प्र०)

मुद्रक : देववाणी प्रिन्टर्स
WZ १४७, उत्तम नगर, नयी दिल्लो-५९

संस्करण : द्वितीय १९८२

मूल्य : ५०रुपये मात्र

PADMAPURĀṆA AURA RĀMACARITA-MĀNASA (Vol.–II)

By
SHUKLA, Dr. RAMAKANT.

Rs. 50-00

द्वितीय भाग की

अनुक्रमणिका

दो शब्द

प्रस्तुत 'ग्रन्थ वाणी-परिषद्, दिल्ली' ने **जैनाचार्य रवि-षेणकृत पद्मपुराण और तुलसीकृत रामचरितमानस**' शीर्षक से '**आचार्यश्रीब्रह्मानन्दशुक्लग्रन्थमाला**' के प्रथम पुष्प के रूप में सर्वप्रथम १९७४ ई० में प्रकाशित किया था। तब यह एक ही जिल्द में प्रकाशित हुआ था। १९७५ में उत्तर प्रदेश सरकार ने इसे ३००० रु० के विशेष पुरस्कार से सम्मानित किया तथा शोधार्थियों ने भी इसका पर्याप्त उपयोग किया। कुछ मित्रों ने यह परामर्श दिया कि अगले संस्करण में इसे दो भागों में प्रकाशित किया जाय ताकि जो पाठक या अनुसन्धित्सु केवल 'पद्मपुराण' और 'राम-चरितमानस' की तुलनामात्र को ही देखना चाहें अथवा जो पद्मपुराण के काव्यात्मक पक्ष को ही देखने में रुचि रखते हों, उन्हें अल्प मूल्य में अपनी रुचि की सामग्री उपलब्ध हो सके। उनके परामर्श को ध्यान में रखते हुए ग्रन्थका यह संस्करण 'पद्मपुराण और रामचरितमानस भाग–१' तथा 'पद्मपुराण और रामचरितमानस, भाग-२' के रूप में सुधाकमल ग्रन्थालय से प्रस्तुत किया जा रहा है। पहले भाग में रविषेणकृत पद्मपुराण का परिचय और उसके काव्या-त्मक सौन्दर्य से सम्बद्ध सामग्री है तथा द्वितीय भाग में पद्मपुराण की दार्शनिक और सांस्कृतिक दृष्टि से समीक्षा एवं रामचरितमानस के साथ उसकी विविधपक्षीय तुलना प्रस्तुत की गयी है। आशाहै, सुधी जनों के लिए ग्रन्थ उप-योगी बना रहेगा। उन सभी समीक्षकों के प्रति कृतज्ञ हूँ जिन्होंने समय-समय पर ग्रन्थ के विषय में, आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों तथा पत्र-पत्रिकाओं में, समीक्षाएँ प्रस्तुत की।

३० जनवरी १९८२, वसन्त पंचमी

६, वाणी-विहार, नयी दिल्ली-११००५९ रमाकान्त शुक्ल

अष्टम अध्याय

पद्मपुराण में जैन धर्म-दर्शन

धर्म और दर्शन एक-दूसरे के पूरक शब्द हैं। 'धर्म' की अनेक व्याख्याओं और 'दर्शन' की विचारधाराओं का मिलान करने पर धर्म और दर्शन अलग-अलग नहीं दिखाई देते। ये अन्योन्याश्रित दिखाई देते हैं। यद्यपि विवेचन के सौकर्य की दृष्टि से दर्शन को विचारपक्ष और धर्म को आचारपक्ष के रूप में पृथक्तया देखा जा सकता है तथापि इनका ऐकान्तिक पार्थक्य असम्भव है। जैन धर्म और दर्शन के विषय में भी यह वात लागू होती है। जैन-दर्शन का मूल विचार 'अहिंसा' है और 'अहिंसा' से फलित होने वाला आचार जैन-धर्म है। पद्मपुराण पर जैन धर्म और दर्शन का पर्याप्त प्रभाव है।

डा० राधाकृष्णन् ने जैन-दर्शन की मुख्य विशेषताएँ ये बतायी हैं :—'इसका प्राणिमात्र का यथार्थ रूप में वर्गीकरण, इसका ज्ञान सम्बन्धी सिद्धान्त, जिसके साथ संयुक्त हैं इसके प्रख्यात सिद्धान्त 'स्याद्वाद' एवं 'सप्तभंगी' अर्थात् निरूपण की सात प्रकार की विधियाँ; और इसका संयमप्रधान नीतिशास्त्र अथवा आचार-शास्त्र। इस दर्शन में अन्यान्य भारतीय विचार-पद्धतियों की भाँति क्रियात्मक नीतिशास्त्र का दार्शनिक कल्पना के साथ गठबन्धन किया गया है।'[६६५] इन समस्त विशेषताओं को इन तीन शब्दों में कहा जा सकता है :—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक् चारित्र। ये तीनों मिलकर ही मोक्षमार्ग बनते हैं।[६६६] सम्यग्दर्शन होने पर ही सम्यग्ज्ञान होगा और सम्यग्ज्ञान होने पर ही सम्यक् चारित्र होगा; तभी मोक्षलाभ होगा। 'तत्त्वार्थश्रद्धान' को सम्यग्दर्शन कहते हैं। जिस-जिस

---

६६५. 'भारतीय दर्शन (हिन्दी अनुवाद)', राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली, संस्क० १९६६, पृष्ठ २७०।

६६६. तत्त्वार्थसूत्र १।१ पर सर्वार्थसिद्धि टीका—"मार्ग इति चैकवचननिर्देशः समस्तस्य मार्गभावज्ञापनार्थः। तेन व्यस्तस्य मार्गत्वनिवृत्तिः कृता भवति। अतः सम्यग्दर्शनं, सम्यग्ज्ञानं, सम्यक्चारित्रमित्येतत्त्रितयं समुदितं मोक्षस्य साक्षान्मार्गो वेदितव्यः।।"

प्रकार से जीवादि पदार्थ व्यवस्थित हैं उसी प्रकार से उनकी अवगति को सम्यक्-ज्ञान कहा जाता है। संसार के कारण की निवृत्ति के प्रति उद्यत ज्ञानी जिन अच्छे कामों को करता है उसे सम्यक्चारित्र कहा जाता है। सम्यक् शब्द यहाँ साभिप्राय है जैसा कि पूज्यपाद ने 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः' (तत्त्वार्थ-सूत्र १।१) की व्याख्या करते हुए लिखा है--"पदार्थानां याथात्म्यप्रतिपत्ति-विषय-श्रद्धानसंग्रहार्थं दर्शनस्य सम्यग्विशेषणम्। येन येन प्रकारेण जीवादयः पदार्था व्यवस्थितास्तेनतेनावगमः सम्यग्ज्ञानम्। अनध्यवसायसंशयविपर्यय-निवृत्त्यर्थं सम्यग्विशेषणम्। संसारकारणनिवृत्तिं प्रत्यागूर्णस्य ज्ञानवतः कर्मा-दाननिमित्तक्रियोपरमः सम्यक्चारित्रम्। अज्ञानपूर्वकाचरणनिवृत्यर्थं सम्यग्वि-शेषणम्।"[६६७]

इन्हीं तीनों का विचार उमास्वाति के 'तत्त्वार्थाधिगमसूत्र' या 'तत्त्वार्थसूत्र', कुन्दकुन्द के 'पञ्चास्तिकायसार' एवं सिद्धसेन दिवाकर के 'न्यायावतार' में हुआ है।[६६८]

सम्यग्दर्शन : तत्त्वार्थश्रद्धान को सम्दग्दर्शन कहा गया है। जैनदर्शन में मूल दो तत्त्व हैं--जीव और अजीव। इन दोनों का विस्तार पाँच अस्तिकाय,

---

६६७. तत्त्वार्थसूत्र १।१ पर सर्वार्थसिद्धि टीका।

६६८. ये सभी ग्रन्थ रविषेण से पूर्व रचे जा चुके थे।

जैनदर्शन का सर्वप्रसिद्ध ग्रन्थ है उमास्वाति का 'तत्त्वार्थसूत्र' जिसका काल ईसा की पहली शताब्दी से तीसरी तक माना जाता है। 'तत्त्वार्थसूत्र' को 'मोक्षशास्त्र' भी कहा जाता है। "भगवद्भिस्तत्त्वार्थसूत्रापरनाममोक्षशास्त्रस्यैव केवलस्य विरचना कृता।"—मोतीचन्द्र कोठारी। 'सर्वार्थसिद्धिः', भूमिका भाग, पृष्ठ ३४। प्रका० रावजी सखाराम दोषी, माणिकचन्द्र, दिगम्बर जैन, परीक्षालय तृतीय संस्करण, १९३९ ई०। इस ग्रन्थ के स्पष्टीकरण के लिए अनेक विद्वानों ने टीकायें लिखीं जिनका उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है :—(१) समन्त-भद्रस्वामि-विरचित गन्धहस्ति-महाभाष्य (२) पूज्यपादस्वामि-विरचित सर्वार्थसिद्धि टीका, (३) अकलङ्कभट्ट-विरचित राजवार्तिक, (४) विद्यानन्दिप्रणीश्लोकवार्तिकालङ्कार, (५) भास्करनन्दि की टीका, (६) श्रुतसागर की श्रुतसागरी टीका, (७) द्वितीयश्रुतसागरकृता तत्त्वार्थसुखबोधनी टीका, (८) विबुधसेनाचार्य की तत्त्वार्थटीका, (९) योगीन्द्रदेव की तत्त्व-प्रकाशिका टीका, (१०) योगदेव की तत्त्वार्थवृत्ति, (११) लक्ष्मीदेव की तत्त्वार्थटीका तथा (१२) अभयनन्दिसूरि की टीका। इसके अतिरिक्त प्राकृत भाषा में रचित अनेक अर्वाचीन टीकाएँ भी उपलब्ध होती हैं। इन सभी टीकाओं से इस ग्रन्थ का महत्त्व सिद्ध होता है। भगवत्कुन्दकुन्द का समय ५० वर्ष ईसा पूर्व से लेकर छठी शताब्दी ई० तक माना जाता है। सिद्धसेन दिवाकर का समय ईसा की पाचवीं शताब्दी माना जाता है।

छः द्रव्य अथवा सात या नव तत्त्व के रूप में पाया जाता है।[६६९] **पाँच अस्तिकाय** हैं--जीव, धर्म, अधर्म, आकाशऔर पुद्‌गल। छः द्रव्य हैं--जीव, धर्म, अधर्म, आकाश, काल और पुद्‌गल। सात तत्त्व हैं--जीव, अजीव, आस्रव, संवर, वन्ध, निर्जरा और मोक्ष। नव तत्त्व हैं--जीव, अजीव, आस्रव, संवर, वन्ध, निर्जरा, भोक्ष, पाप और पुण्य। इन तत्त्वों की सरल विवेचना श्री दलसुख मालवणिया के शब्दों में इस प्रकार की जा सकती है--

"जैन दर्शन में मूल दो तत्त्व हैं : जीव और अजीव। इन दोनों का विस्तार पाँच अस्तिकाय, छः द्रव्य अथवा सात या नव तत्त्व के रूप में पाया जाता है। चार्वाक केवल अजीव को पाँच भूतरूप मानते थे और उपनिषद के ऋषि केवल जीव अर्थात् आत्मा---पुरुष---ब्रह्म को मानते थे। इन दोनों मतों का समन्वय जीव एवं अजीव ये दो तत्त्व मानकर जैन दर्शन में हुआ। संसार और सिद्धि अर्थात् निर्वाण अथवा वन्धन और मोक्ष सभी घट सकते हैं जब जीव और जीव से भिन्न कोई हो। इसीलिए जीव और अजीव दोनों के अस्तित्व की तार्किक संगति जैनों ने सिद्ध की और पुरुष एवं प्रकृति का अस्तित्व मानकर प्राचीन सांख्यों ने वैसी संगति साधी। इसके अतिरिक्त आत्मा को या पुरुष को केवल कूटस्थ मानने से भी वन्ध मोक्ष जैसी विरोधी अवस्थाएँ जीव में नहीं घट सकतीं। इससे सब दर्शनों से अलग पड़कर, बौद्धसम्मत चित्त की भाँति, आत्मा को भी एक अपेक्षा से जैनों ने अनित्य माना और सबकी तरह नित्य मानने में भी जैनों को कुछ आपत्ति तो है ही नहीं, क्योंकि वन्ध और मोक्ष तथा पुनर्जन्म का चक्र एक ही आत्मा में है। इस प्रकार आत्मा को जैन मत में परिणामी नित्य माना गया और पुरुष को कूटस्थ, जैनों ने जड़ और जीव दोनों को परिणामी-नित्य माना। इसमें भी उनकी अनेकान्त दृष्टि स्पष्ट होती है।

जीव के चैतन्य का अनुभव मात्र देह में ही होता है, अतः जैन मत के अनुसार

---

६६९. जिनसेन ने अपने 'हरिवंशपुराण' (८४० वि० सं०) में--

'एकद्वित्रिचतुःपञ्चपट्सप्ताष्टनवास्पदा।
अपर्यायापि सत्तेवानन्तपर्यायभाविनी॥' (हरिवंश, ५८।५)

कहकर एक से नौ तक जैन धर्म के तत्त्व गिनाये हैं।

एक--जीव, दो---चेतन-अचेतन अथवा मूर्तिक-अमूर्तिक, तीन---सम्यक् दर्शन, ज्ञान और चारित्र अथवा चेतन-अचेतन और चेतना, चेतन द्रव्य, चार--चार गति, चार कषाय अथवा चार प्रत्यय, आठ--अष्ट कर्म।

जीव-आत्मा देह परिणाम हैं। नये नये जन्म जीव धारण करता है, इसलिए उसके लिए गमनागमन अनिवार्य है। इसी कारण जीव को गमन में सहायक द्रव्य धर्मास्तिकाय के नाम से और स्थिति में सहायक द्रव्य अधर्मास्तिकाय के नाम से—इस प्रकार दो अजीव द्रव्यों का मानना अनिवार्य हो गया। इसी प्रकार यदि जीव का संसार हो तो वन्धन भी होना ही चाहिए। वह वन्धन पुद्गल अर्थात् जड़ द्रव्य का है। अतएव पुद्गलास्तिकाय के रूप में एक दूसरा भी अजीव द्रव्य माना गया। इन सबको अवकाश देने वाला द्रव्य आकाश है, उसे भी जड़रूप अजीव द्रव्य मानना आवश्यक था। इस प्रकार जैन दर्शन में जीव, धर्म, अधर्म, आकाश और पुद्गल—ये पाँच अस्तिकाय माने गये हैं। परन्तु जीवादि द्रव्यों की विविध अवस्थाओं की कल्पना काल के बिना नहीं हो सकती। फलतः एक स्वतंत्र काल-द्रव्य भी अनिवार्य था। इस प्रकार पाँच अस्तिकायों के स्थान पर छह द्रव्य हुए। जब काल को स्वतंत्र द्रव्य नहीं माना जाता तब उसे जीव और अजीव द्रव्यों के पर्याय रूप मानकर काम चलाया जाता है।

अब सात तत्त्व और नौ तत्त्व के बारे में थोड़ा स्पष्टीकरण कर लें। जैन दर्शन में तत्त्वविचार दो प्रकार से किया जा सकता है। एक प्रकार के बारे में हमने ऊपर देखा। दूसरा प्रकार मोक्षमार्ग में उपयोगी हो, उस तरह पदार्थों की गिनती करने का है। इसमें जीव, अजीव, आस्रव, संवर, बन्ध, निर्जरा और मोक्ष—इन सात तत्त्वों की गिनती का एक प्रकार और उसमें पुण्य एवं पाप का समावेश करके कुल नौ गिनने का दूसरा प्रकार है। वस्तुतः जीव और अजीव का विस्तार करके ही सात और नौ तत्त्व गिनाये हैं, क्योंकि मोक्षमार्ग के वर्णन में वैसा पृथक्करण उपयोगी होता है। जीव और अजीव का स्पष्टीकरण तो ऊपर किया ही है। अंशतः अजीव-कर्मसंस्कार-वन्धन का जीव से पृथक् होना निर्जरा है और सर्वांशतः पृथक् होना मोक्ष है। कर्म जिन कारणों से जीव के साथ बन्ध में आते हैं वे कारण आस्रव हैं और उसका निरोध संवर है। जीव और अजीव कर्म का एकाकार जैसा सम्बन्ध बन्ध है।

सारांश यह कि जीव में राग-द्वेष, प्रमाद आदि जहाँ तक रहते हैं, वहाँ तक वन्ध के कारणों का अस्तित्व होने से संसारवृद्धि हुआ करती है। उन कारणों का निरोध किया जाय तो संसारभाव दूर होकर जीव सिद्धि अथवा निर्वाण अवस्था प्राप्त करता है। निरोध की प्रक्रिया को संवर कहते हैं, अर्थात् जीव की मुक्ति होने की साधना—विरति आदि—संवर हैं, और केवल विरति आदि से सन्तुष्ट न होकर जीव कर्म से छूटने के लिए तपश्चर्या आदि कठोर अनुष्ठान आदि भी करता हैं, उससे निर्जरा—आंशिक छुटकारा—होता है और अन्त में वह मोक्ष को

प्राप्त करता है।"[६७०]

सम्यग्ज्ञान : डॉ० राधाकृष्णन् के अनुसार उसका (वर्धमान का) का ज्ञान-सम्बन्धी सिद्धान्त उसका अपना है और दर्शनशास्त्र के विद्यार्थी के लिए अपना एक विशेषत्त्व रखता है।[६७१]

'येन येन प्रकारेण जीवादयः पदार्था व्यवस्थितास्तेन तेनावगमः सम्यग्ज्ञानम्।' यह ज्ञान पाँच प्रकार का माना गया है—मति, श्रुति, अवधि, मनःपर्यय और केवल।[६७२]

(१) "मतिज्ञान साधारण ज्ञान है, जो इन्द्रिय के प्रत्यक्ष सम्बन्ध द्वारा प्राप्त होता है। इसी के अन्तर्गत आते हैं स्मृति, संज्ञा अथवा प्रत्यभिज्ञा अथवा पहचान; और तर्क अथवा प्रत्यक्ष के आधार पर किया गया आगमन अनुमान, अभिनिबोध या अनुमान अथवा निगमन विधि का अनुमान।[६७३] मतिज्ञान के कभी-कभी तीन भेद किये जाते हैं अर्थात् उपलब्धि अथवा प्रत्यक्ष ज्ञान भावना अथवा स्मृति और उपयोग अथवा अर्थग्रहण।[६७४] इन्द्रियों एवं मन (जिसे इन्द्रियों से भिन्न होने के कारण अनिन्द्रिय भी कहते हैं) के संयोग के द्वारा जो ज्ञान प्राप्त किया जाता है उसे मतिज्ञान कहते हैं।[६७५] मतिज्ञान की उत्पत्ति से पूर्व हमें सदा दर्शन होता है। (२) श्रुतिज्ञान अथवा शब्द या आप्तप्रमाण वह ज्ञान है जो लक्षणों, प्रतीकों अथवा शब्दों द्वारा हमें प्राप्त होता है। जब कि मतिज्ञान हमें परिचय द्वारा मिलता है, यह ज्ञान केवल वर्णन द्वारा प्राप्त होता है। श्रुतिज्ञान भी चार प्रकार का है—लब्धि अथवा संसर्ग या साहचर्य, भावना अथवा ध्यान देना, उपयोग अथवा अर्थ-ग्रहण, और नय अथवा वस्तुओं के तात्पर्य के नाना पक्ष।[६७६] नय को यहाँ इसलिए दर्शाया गया है चूँकि धार्मिक ग्रन्थों की भिन्न-भिन्न व्याख्याएँ विवाद के लिए उपस्थित की जाती हैं। (३) देश और काल की दूरी रहते हुए भी वस्तुओं का

---

६७०. दलसुख मालवणिया, 'जैनधर्म का प्राण (पं० सुखलाल)' की भूमिका, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, संस्क० १९६५, पृ० ९-११।

६७१. 'भारतीय दर्शन' (हिन्दी अनुवाद), पृ० २७०

६७२. मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि ज्ञानम् ॥ —तत्त्वार्थसूत्र १।९

६७३. 'पञ्चास्तिकाय समयसार', ४१

मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ताऽभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम्।—तत्त्वार्थसूत्र १।१३

६७४. वही, ४२।

६७५. 'इन्द्रियैर्मनसा च यथास्वमर्थान्मन्यते, अनया मनुते, मननमात्रं वा मतिः।

(तत्त्वार्थसूत्र १।९ पर सर्वार्थसिद्धि)

६७६. पञ्चास्तिकाय, समयसार, ४३।

जो सीधी या प्रत्यक्ष ज्ञान है उसे अवधि कहते हैं। यह ज्ञान असाधारण दृष्टि द्वारा अतीन्द्रिय विषयों का ज्ञान है। (४) मनःपर्यय, अन्य व्यक्तियों के वर्धमान एवं भूत विचारों साक्षात् ज्ञान; जैसे टेलीपैथी द्वारा दूसरों के मन में प्रवेश किया जाता है। (५) केवल अथवा पूर्णज्ञान, सब पदार्थों एवं उनके परिवर्तनों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेना।[६७७] यह देश, काल एवं विषय की सीमा से रहित सर्वज्ञता है। पूर्ण चेतना के लिए सम्पूर्ण यथार्थता प्रत्यक्ष रूप में प्रकट है। यह ज्ञान जो इन्द्रियों के ऊपर निर्भर नहीं है और जो केवल अनुभवगम्य ही है एवं वाणी द्वारा जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता, केवल ऐसे पवित्रात्माओं के लिए ही सम्भव हैं जो बन्धनों से मुक्त हो चुके हैं। पहले तीन प्रकार के ज्ञानों में भ्रान्ति की सम्भा- है, किन्तु पिछले दोनों में कोई दोष नहीं हो सकता।[६७८]

पुनः ज्ञान दो प्रकार का है : **प्रमाण** अर्थात् पदार्थ को उसी रूप में जानना जिस रूप में वह है, और **नय** अर्थात् पदार्थ का किसी सम्बन्ध-विशेष के साथ ज्ञान। नयों को कई प्रकार से विभक्त किया गया है यथा—नैगमनय, संग्रहनय, व्यवहारनय, ऋजुसूत्रनय, शब्दनय, समभिरूढनय और सर्वभूतनय।[६७९] नयों के और भी भेद किये गये हैं; यथा द्रव्यार्थिक एवं पर्यायार्थिक। इन नयों का सबसे महत्त्वपूर्ण उपयोग निश्चय ही 'स्याद्वाद' पर 'सप्तभंगी' में होता है। 'सप्तभंगी' का अर्थ है किसी वस्तु अथवा उसके गुणों के विषय में कथन करने के, दृष्टिकोण के रूप से, सात भिन्न-भिन्न प्रकार, जो ये हैं—(१) स्याद् अस्ति, (२) स्याद् नास्ति, (३) स्याद् अस्ति नास्ति (४) स्याद् अवक्तव्यम्, (५) स्याद् अस्ति च अवक्तव्यम्। (६) स्याद् नास्ति अवक्तव्यम्, (७) स्याद् अस्ति च नास्ति च अवक्तव्यम्। यह 'सप्तभङ्गी' जैन तर्कशास्त्र का बहुचर्चित पारिभाषिक शब्द है।

सम्यक्चारित्र : कर्म जिन कारणों से जीव के साथ बन्ध में आते हैं वे कारण **आस्रव** हैं और उनका निरोध **संवर** है।[६८०] जीव की मुक्त होने की साधना, विरति आदि–संवर है और केवल विरति आदि से सन्तुष्ट न होकर जीव की कर्म से छूटने के लिए तपश्चर्या आदि कठोरअनुष्ठान आदि निर्जरा-आंशिक छुटकारा है, अन्त में मोक्ष की प्राप्ति होती है। इस प्रकार संवर और निर्जरा सम्यक् चारित्र के अन्तर्गत आते हैं। पूज्यपाद ने सम्यक्चारित्र की परिभाषा देते हुए लिखा है कि संसार के कारणों की निवृत्ति के प्रति समुद्यत ज्ञानवान् का कर्मादाननिमित्तक्रियोपरम

---

६७७. सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य।—तत्त्वार्थसूत्र १।२९

६७८. डा० राधाकृष्णन् 'भारतीय दर्शन', पृष्ठ २७०-२७१

६७९. नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्दसमभिरूढैवम्भूता नयाः।—तत्त्वार्थसूत्र १।३३

६८०. आस्रवनिरोधः संवरः।—तत्त्वार्थसूत्र ९।१

सम्यक्चारित्र है।[६८१] इस चारित्र के अन्तर्गत सागार तथा अनागारों का धर्म आता है। महाव्रत, अणुव्रत, गुप्तियाँ, समितियाँ, शिक्षाव्रत, गुणव्रत एवं अनेक नियम इस चारित्र के अन्तर्गत आते हैं। मोटे तौर से इन्हें अहिंसा-दर्शन का क्रियात्मक पक्ष कहा जा सकता है।

'पद्मपुराण' में जैन-धर्म के इन तीन स्तम्भों—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक्चारित्र का यथावसर पर्याप्त विवेचन मिलता है। दिगम्वर और श्वेताम्वर—जैन धर्म के दोनों सम्प्रदायों में पद्मपुराण का समान सम्मान है। इसका कारण यह है कि रविषेण ने अपने पूर्ववर्ती ग्रन्थों—जिन्हें आज दिगम्वर या श्वेताम्वर सम्प्रदाय के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ कहा जाता है—का गहन अध्ययन किया था और उनकी मान्यताओं को अपने ग्रन्थ में स्थान दिया। यही कारण है कि 'पद्मपुराण' में कुछ बातें ऐसी आ गयी हैं जो दिगम्वर-सम्प्रदाय में मान्य हैं कुछ ऐसी भी जो श्वेताम्वर-सम्प्रदाय में मान्य है। उमास्वाति भी रविषेण को मान्य है और कुन्दकुन्द भी। सम्यक् दर्शन, ज्ञान और चारित्र का विवेचन वर्धमान, गौतमस्वामी, सर्वभूषण केवली, अनन्तवल, मुनिराज आदि के उपदेशों में मुखरित हुआ है। जैन तर्कशास्त्र की मान्यताओं का उपयोग एकादश पर्व में नारद-पर्वतक के शास्त्रार्थ के समय किया गया है। 'पद्मपुराण' में तत्त्वों का विवेचन प्रायः उमास्वाति के सूत्रों के आधार पर किया है।[६८२] क्षेत्र तथा काल के वर्णन उमास्वाति के सूत्रों और यतिवृषभ की 'तिलोयण्णत्ति' से पर्याप्त प्रभावित हैं। 'ज्ञान' के सिद्धान्त के प्रकाशन में 'अनेकान्तवाद', 'स्याद्वाद', 'सप्तभङ्गी' आदि शब्दों का प्रयोग रविषेण ने किया है। चारित्र का विस्तृत विवेचन उसने विविध उपदेशों के समय किया है। यह स्मरणीय है कि रविषेण ने धर्म का प्रयोग कहीं पूरे मोक्ष मार्ग (दर्शन-ज्ञान-चारित्र) के लिए, कहीं चारित्र के लिए और कहीं केवल

---

६८१. संसारकारणनिवृत्ति प्रत्यागूर्णस्य ज्ञानवतः कर्मादाननिमित्तक्रियोपरमः सम्यक्चारित्रम्॥
तत्त्वार्थसूत्र १।१ पर सर्वार्थसिद्धि टीका।

६८२. तिलोयपण्णत्ति (त्रिलोकप्रज्ञप्ति)' की रचना रविषेण से पूर्व हो चुकी थी। प्राकृत भाषा में रचित इस ग्रन्थ का विषय मुख्यतः विश्वरचना—लोकस्वरूप है तथा प्रसंगवश इसमें धर्म और संस्कृति से सम्वन्ध रखने वाली अनेक अन्य वातों की भी चर्चा आयी है। समस्त ग्रन्थ नौ महाधिकारों में विभाजित है—(१) सामान्य लोक का स्वरूप, (२) नारक लोक, (३) भवन-वासी लोक, (४) मनुष्य लोक, (५) तिर्यग्लोक, (६) व्यन्तरलोक, (७) ज्योतिलोक, (८) देवलोक और (९) सिद्धलोक।

इसका प्रथम भाग (चतुर्थ महाधिकार तक) १९४३ ई० में और दूसरा भाग १९५१ ई० में प्रो० हीरालाल जैन, आदिनाथ उपाध्ये एवं पं० वालचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री के सम्पादकत्व में जैन संस्कृति-संरक्षक-मंत्र शोलापुर से प्रकाशित हुआ है।

धार्मिक अनुष्ठानादि के लिए किया है, । कहीं जिनेन्द्र-शासन का अर्थ धर्म है और कहीं 'धारयति' के अर्थ में। इसीलिए 'पद्मपुराण' में 'धर्म' शब्द से धर्म और दर्शन दोनों की सम्मिश्रित अर्थावगति होती है।

'पद्मपुराण' के अनुसार जैनधर्म ही एक ऐसा धर्म है जो निष्कलुष एवं आदर्श है। यद्यपि मिथ्यादृष्टियों (ब्राह्मणों) के कुशासन में भी कहीं थोड़ा बहुत धर्म का लेश मिल सकता है तथापि सम्यग्दर्शन के विना वह निर्मूल ही है।[६८३]

'पद्मपुराण' के अनुसार––धर्म का मूल है दया और उसका मूल–अहिंसा[६८४] धर्म दो प्रकार का है––महाव्रत और अणुव्रत। इनमें महाव्रत गृहत्यागियों (अनागारों) का है और अणुव्रत गृहस्थों का।

मुनियों को पंच महाव्रतों का पालन करना पड़ता है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का ऐकान्तिक और आत्यन्तिक पालन करना पंचमहाव्रत-पालन है। अनागारों को तीन गुप्तियों, पंच समितियों एवं नाना तपों को वश में करना होता है।[६८५]

गृहस्थों का धर्म मुख्यतः इन द्वादश भागों में विभक्त है––पाँच अणुव्रत, चार शिक्षाव्रत एवं तीन गुणव्रत।[६८६] इनके अतिरिक्त यथाशक्ति उन्हें अनेक नियम धारण करने होते हैं। स्थूल हिंसा, स्थूल झूठ, स्थूल पर-द्रव्य-ग्रहण, पर-स्त्री-समागम और अनन्ततृष्णा से विरत होना––ये गृहस्थों के पाँच अणुव्रत हैं।[६८७] इन व्रतों की रक्षा के लिए अहिंसा, सत्य, अस्तेय, परस्त्रीविरक्ति तथा इच्छा का परिमाण परम आवश्यक है।[६८८]

अणुव्रतों के साथ ये तीन गुणव्रत भी लेने पड़ते हैं:––अनर्थदण्डों का त्याग करना, दिशाओं और विदिशाओं में आवागमन की सीमा निर्धारित करना एवं भोगोपभोगों का परिमाण करना।[६८९]

चार शिक्षाव्रत ये हैं––प्रयत्नपूर्वक सामायिक करना, प्रोषधोपवास धारण करना, अतिथि-संविभाग और आयु का क्षय होने पर सल्लेखना धारण करना।[६९०] सामायिक व्रत में गृहस्थ को प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल में नित्य कुछ समय तक आध्यात्मिक तत्त्वानुशीलन करना होता है। प्रोषधोपवास के अनुसार गृहस्थ को दोनों पक्षों की अष्टमी और चतुर्दशी को भोजन से विरत रहने का व्रत लेना होता है। अतिथि-संविभाग के द्वारा उसे अथितियों का स्वागत करना होता है एवं उन्हें भोजन देकर स्वयं भोजन करना होता है। जिसने अपने आगमन के

६८३. पद्म०, ६।२८२। ६८४. वही, ६।२८६। ५८५. वही, ६।२८९-२९२, १४।१६४-१८१। ६८६. वही, १४।१८३। ६८७. वही, १४।१८४-१८५। ६८८. वही, १४।१८६-१९४। ६८९. वही, १४।१९८। ६९०. वही, १४।१९९।

विषय में किसी तिथि का संकेत नहीं किया है, जो परिग्रह से रहित है और सम्यग्दर्शनादि गुणों से युक्त होकर घर आता है ऐसा मुनि अतिथि कहलाता है। ऐसे अतिथि के लिए अपने वैभव के अनुसार आदरपूर्वक लोभरहित हो भिक्षा तथा उपकरण आदि देना चाहिए।[६९१] सल्लेखना के अनुसार शुद्धमन होकर, सभी मनोविकारों से मुक्त होकर और सकी लोगों को क्षमा प्रदान करके अपने सभी पापों की आलोचना की जाती है और अन्त में महाव्रतों को अपना कर शोक-भय-विषाद-अरति आदि से चित्त को विमुक्त करके भोजन और पेय का सर्वथा त्याग करके समाधि-मरण अपना लिया जाता है। इन व्रतों में से सामायिक प्रोषधोपवास और अतिथिसंविभाग क्रमशः वैदिक संस्कृति के ब्रह्मचर्य, व्रतोपवास और अतिथि-यज्ञ के समकक्ष पड़ते हैं।[६९२]

इनके अतिरिक्त गृहस्थ के लिए पालनीय ये नियम हैं––मधुत्याग, मद्य-त्याग, मांस-त्याग, द्यूत-त्याग, रात्रिभोजन-त्याग और वेश्यागमन-त्याग आदि।[६९३]

इस प्रकार धर्माचरण करने से गृहस्थ मरकर देव-पर्याय को प्राप्त होता है और वहाँ से च्युत होकर उत्तम मनुष्यत्व प्राप्त करता है। ऐसा जीव अधिक से अधिक आठ भवों में रत्नत्रय का पालन कर अन्त में निर्ग्रन्थ होकर सिद्धिपद को प्राप्त हो जाता है।[६९४]

'पदमपुराण' के अनुसार जो भी व्यक्ति जिनेद्र की वन्दना करता है अथवा उनका भावपूर्वक स्मरण करता है, उसके पाप क्षीण हो जाते हैं।[६९५] जिनेन्द्र की स्तुति से, जिनेन्द्र की प्रतिमा वनवाने से और जिनेन्द्र की पूजा करने से कुछ भी दुर्लभ नहीं रह जाता।[६९६] जो भी प्राणी धर्म से युक्त होता है वही समस्त संसार में पूज्य होता है और स्वर्ग में अपार सौख्य प्राप्त करता है।[६९७]

इस मुनिधर्म और गृहस्थ धर्म के विपरीत जो भी आचरण अथवा ज्ञान है वह 'अधर्म' है[६९८]—जिससे परलोक और पुनर्जन्म में अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं।[६९९] अधर्मी प्राणी अनेक नरकों में जाता है[७००]—ऐसी 'पद्मपुराण' की मान्यता है।

'पद्मपुराण' के अनुसार, यज्ञ करना (विशेषतः हिंसायज्ञ) पातक है और

---

६९१. वही २४।२००-२०१।
६९२. रामजी उपाध्याय : प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका।
६९३. पद्म० १४।२०२।
६९४. पद्म० १४।२०३-२०४
६९५. वही, १२।२०८
६९६. वही, १४।२१३
६९७. वही, १४।२१४
६९८. वही, ६।३०४
६९९. वही, १४।२६६-२८५
७००. वही, ६।३०५-३११

दिन भर व्रत करके रात्रि में व्रत की पारणा करना भी अधर्म है।[७०१]

'पद्मपुराण' के अनुसार, जैनधर्म में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्-चारित्र--इनकी एकता ही मोक्ष का मार्ग है।[७०२] इनमें से तत्त्वों का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन कहलाता है।[७०३] अनन्त गुण और अनन्त पर्यायों को धारण करने वाला तत्त्व चेतन-अचेतन के भेद से दो प्रकार का है।[७०४] स्वभाव अथवा परोपदेश के द्वारा भक्तिपूर्वक जो तत्त्व को ग्रहण करता है, वह जिनमत का श्रद्धालु सम्यग्दृष्टि जीव कहा गया है।[७०५] शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, अन्यदृष्टिप्रशंसा और प्रत्यक्ष ही उदार मनुष्यों में दोष लगाना--उनकी निन्दा करना--ये पाँच अतिचार हैं।[७०६] परिणामों की स्थिरता रखना, जिनायतन आदि क्षेत्रों में रमण करना--स्वभाव से उनका अच्छा लगना, उत्तम भावनाएँ भाना तथा शंकादि दोषों से रहित होना--ये सब सम्यग्दर्शन को शुद्ध रखने के उपाय हैं।[७०७] सम्यग्ज्ञानपूर्वक जितेन्द्रिय मनुष्य के द्वारा जो आचरण किया जाता है वह सम्यक्चारित्र कहलाता है।[७०८] सम्यक्चारित्र में, इन्द्रियों का वशीकरण, वचन तथा मन का नियन्त्रण, न्यायपूर्ण प्रवृत्ति करने वाले त्रस-स्थावर जीवों पर अहिंसा, मन और कानों को आनन्दित करने वाले, स्नेहपूर्ण, मधुर, सार्थक और कल्याण-कारी वचनों का कथन, अदत्त वस्तु के ग्रहण में मन-वचन-काय से निवृत्ति, न्यायपूर्वक दी गयी वस्तु का ग्रहण, ब्रह्मचर्य-धारण, मोक्ष-मार्ग में महाविघ्नकारी मूर्च्छा के त्याग के साथ परिग्रह का त्याग, मुनियों के लिए दान एवं विनय-नियम-शील-ज्ञान-दया-दम-मोक्ष के लिए ध्यान-धारण आदि करने होते हैं।[७०९] कल्याण-प्राप्ति के लिए जिन-शासनोक्त सम्यक्चारित्र का अवश्य पालन करना चाहिए।[७१०] इनके विरुद्ध मिथ्या दर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र हैं जिनसे प्राणी संसार से नहीं निकल पाता।[७११]

किन्तु इस विवेचन से पद्मपुराण की काव्यात्मकता अत्यन्त बोझिल प्रतीत होने लगती है। यदि जैन धर्म और दर्शन के सिद्धान्तों का सार प्रस्तुत किया जाता तो अधिक सरसता बनी रह सकती थी। किन्तु रविषेण, मानों कच्चे माल की भरती करने के आदी हैं। जिस तत्परता से वे बाण के हर्षचरित के वाक्य के वाक्य

---

७०१. वही, पर्व १४
७०२. वही, १०५।३-२१०
७०३. वही, १०५।२११
७०४. वही, १०५।२११
७०५. वही, १०५।२१२
७०६. वही, १०५।२१३
७०७. वही, १०५।२१४
७०८. वही, १०५।२१५
७०९. वही, १०५।२१६-२२३
७१०. वही, १०५।२२४
७११. वही, १०५।२२६-२६१

पद्यीकृत करके राजगृह नगर का अथवा श्रेणिक राजा का वर्णन करते हैं उसी तत्परता से वे कुन्दकुन्द के 'पंचास्तिकायसार' उमास्वाति के 'तत्त्वार्थसूत्र' एवं यतिवृषभ की 'तिलोयपण्णत्ति' की सामग्री को अनुष्टुप्-बद्ध करके पाठकों के सम्मुख रखते हैं, चाहे उनका पाठक उसे सरलता से पचा सके या न पचा सके[७१२]। कुछ तुलनात्मक उद्धरण प्रस्तुत हैं—

उमास्वाति और रविषेण

१. उमास्वाति : सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः ।[७१३]

रविषेण : उवाच भगवान् सम्यग्दर्शनज्ञानचेष्टितम् ।
मोक्षवर्त्म समुद्दिष्टमिदं जैनेन्द्रशासने ।।[७१४]

२. उमा० : तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ।[६१५]

रवि० : तत्त्वश्रद्धानमेतस्मिन् सम्यग्दर्शनमुच्यते ।[७१६]

३. उमा० : तन्निसर्गादधिगमाद्वा ।[६१७]

रवि० : निसर्गाधिगमद्वाराद्भक्त्या तत्त्वमुपाददत् ।[७१८]

४. उमा० : शङ्काकांक्षाविचिकित्साऽन्यदृष्टिप्रशंसासंस्तवाः सम्यग्दृष्टेरतीचाराः ।[७१९]

रवि० : शङ्काकांक्षा चिकित्सा च परशासनसंस्तवः ।
प्रत्यक्षोदारदोषाद्या एते सम्यक्त्वदूषणाः ।।[७२०]

५. उमा० : तत्स्थैर्यार्थं भावनाः पञ्च पञ्च ।[७२१]

रवि० : स्थैर्यं जिनवरागारे रमणं भावनाः पराः ।
शङ्कादिरहितत्वं च सम्यग्दर्शनशोधनम् ।।[७२२]

---

७१२. आगे चलकर जिनसेन से भी अपने 'हरिवंशपुराण' (८४० वि० सं०) के ५८वें सर्ग में जैन धर्म के तत्त्वों का इसी प्रकार विस्तृत विवेचन किया है। दे० 'हरिवंशपुराण', (सम्पादक, पं० पन्नालाल जैन साहित्याचार्य, भारतीय ज्ञानपीठ काशी, संस्क० १९६२ ई०) पृ० ६६०-६९३। क्षेत्र, काल तथा श्रुत-मति-केवल ज्ञानों का विवेचन भी रविषेण की रीति से 'हरिवंशपुराण' के चतुर्थ, पंचम, सप्तम तथा दशम सर्ग में हुआ है।

७१३. तत्त्वार्थसूत्र, ११
७१४. पद्म०, १०५।२१०
७१५. तत्त्वार्थ०, १।२
७१६. पद्म०, १०५।२११
७१७. तत्त्वार्थ०, १।३
७१८. पद्म०, १०५।२१२
७१९. तत्त्वार्थ०, ७।२३
७२०. पद्म०, १०५।२१३
७२१. तत्त्वार्थ०, ७।३
७२२. पद्म०, १०५।२१४

६. उमा० : कायवाङ्मनःकर्म योगः।[७२३]
स आस्रवः।[७२४]

रवि० : गोपायितहृषीकत्वं वचोमानसयन्त्रणम्।
विद्यते यत्र निष्पापं सुचारित्रं तदुच्यते॥[७२५]

७. उमा० : हिंसाऽनृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम्।[७२६]

रवि० : अहिंसा यत्र भूतेषु त्रसेषु स्थावरेषु च।
क्रियते न्याययोगेषु सुचारित्रं तदुच्यते॥
मनःश्रोत्रपरिह्लादं स्निग्धं मधुरमर्थवत्।
शिवं यत्र वचः सत्यं सुचारित्रं तदुच्यते॥
अदत्तग्रहणे यत्र निवृत्तिः क्रियते त्रिधा।
दत्तं च गृह्यते न्याय्यं सुचारित्रं तदुच्यते॥
सुराणामपि सम्पूज्यं दुर्धरं महतामपि।
ब्रह्मचर्यं शुभं यत्र सुचारित्रं तदुच्यते॥
शिवमार्गमहाविघ्नमूर्च्छात्यजनपूर्वकः ।
परिग्रहपरित्यागः सुचारित्रं तदुच्यते॥[७२७]

८. उमा० : बन्धवधच्छेदातिभारारोपणान्नपाननिरोधाः।[७२८]
क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्णधनधान्यदासीदासकुप्यप्रमाणाति-
क्रमाः।[७२९]

रवि० : वधताडनबन्धाङ्कदोहनादिविधायिनः ।
ग्रामक्षेत्रादिसक्तस्य प्रव्रज्या का हतात्मनः॥
क्रयविक्रयसक्तस्य पंक्तियाचनकारिणः।
सहिरण्यस्य का मुक्तिर्दीक्षितस्य दुरात्मनः॥[७३०]

९. उमा० : रत्नशर्करावालुकापङ्कधूमतमोमहातमःप्रभाभूमयो घनाम्बु-
वाताकाशप्रतिष्ठाः सप्ताधोऽधः।[७३१]

रवि० : रत्नाभा प्रथमा तत्र यस्यां भवनजाः सुराः।
षडधस्तात्ततः क्षोण्यो महाभयसमावहाः॥

---

७२३. तत्त्वार्थ०, ६।१
७२४. वही, ६।२
७२५. पद्म०, १०५।२१६
७२६. तत्त्वार्थ०, ७।१
७२७. पद्म० १०५।२१७-२२२,
७२८. तत्त्वार्थ०, ७।२५
७२९. वही, ७।२९
७३०. पद्म०, १०५।२३१-२३२
७३१. तत्त्वार्थ०, ३।१

शर्करावालुकापङ्कधूमध्वान्ततमोनिभाः ।
सुमहादुःखदायिन्यो नित्यान्धध्वान्तसंकुलाः ।।[७३२]
...अधस्तान्महीरत्नप्रभाशर्करावालुकापङ्कधूमप्रभाध्वान्त-भातिप्रकृष्टान्धकाराभिधास्ताश्च नित्यं महाध्वान्त-युक्ता ...।[७३३]

१०. उमा० : नारका नित्याशुभतरलेश्यापरिणामदेहवेदनाविक्रियाः।[७३४]

रवि० : चक्षुषः पुटसङ्कोचो यावन्मात्रेण जायते ।
तावन्तमपि नो कालं नारकाणां सुखासनम् ।।[७३५]

११. उमा० : जम्बूद्वीपलवणोदयादयः शुभनामानो द्वीपसमुद्राः ।।[७३६] द्विर्द्विर्विष्कम्भाः पूर्वपूर्वपरिक्षेपिणो वलयाकृतयः ।।[७३७] तन्मध्ये मेरुनाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्रविष्कम्भो जम्बूद्वीपः ।।[७३८] भरतहैमवतहरिविदेहरम्यकहैरण्यवतैरावतवर्षाः क्षेत्राणि ।।[७३९] तद्विभाजिनः पूर्वापरायता हिमवन्महाहिमवन्निषधनीलरुक्मिशिखरिणो वर्षधरपर्वताः ।।[७४०] हेमार्जुनतपनीयवैडूर्यरजतहेममयाः ।।[७४१] मणिविचित्रपार्श्वा उपरि मूले च तुल्यविस्ताराः ।।[७४२] पद्ममहापद्मतिगिंछकेसरिमहापुण्डरीकपुण्डरीका ह्रदास्तेषामुपरि ।।[७४३] प्रथमो योजनसहस्रायामस्तदर्द्धविष्कम्भो ह्रदः ।।[७४४] दशयोजनावगाहः ।।[७४५] तन्मध्ये योजनं पुष्करम् ।।[७४६] तद्द्विगुणाद्विगुणा ह्रदाः पुष्कराणि च ।।[७४७] तन्निवासिन्यो देव्यः श्रीह्रीधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्म्यः पल्योपमस्थितयः ससामानिकपरिषत्काः ।।[७४८] गङ्गासिन्धुरोहिद्रोहितास्याहरिद्धरिकान्तासीतासीतोदानारीनरकान्तासुवर्णरूप्यकूला-

---

७३२. पद्म०, १०५।१११-११२ — ७३३. वही, ७८।६२ के वाद का गद्य ।
६३४. तत्त्वार्थ०, ३।३ — ७३५. पद्म०, २।१८२
७३६. तत्त्वार्थ, ३।७ — ७३७. तत्त्वार्थ०, ३।८
७३८. वही, ३।९ — ७३९. वही, ३।१०
७४०. वही, ३।११ — ७४१. वही, ३।१२
७४२. वही, ३।१३ — ७ड३. वही, ३।१४
७४४. वही, ३।१५ — ७४५. वही, ३।१६
७४६. वही, ३।१७ — ७४७. वही, ३।१८
७४८. वही, ३।१९

रक्तारक्तोदाः सरितस्तन्मध्यगाः ।।[७४९] द्वयोर्द्वयोः पूर्वाः पूर्वगाः ।।[७५०] शेषास्त्वपरगाः ।।[७५१] चतुर्दश नदी सहस्रपरिवृता गङ्गासिन्ध्वादयो नद्यः ।।[७५२] विदेहेषु संख्येयकाला ।।[७५३] द्विर्धातकीखण्डे ।।[७५४] पुष्करार्द्धे च ।।[७५५] प्राङ्-मानुषोत्तरान्मनुष्याः ।।[७५६] आर्या म्लेच्छाश्च ।।[७५७] भरतैरावतविदेहाः कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरूत्तरकुरुभ्यः ।।[७५८] नृस्थिती परापरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते ।।[७५९] तिर्यग्योनिजनानां च ।।[७६०]

रवि० : जम्बूद्वीपमुखा द्वीपा लवणाद्याश्च सागराः ।
प्रकीर्त्तिताः शुभा नाम संख्यानपरिवर्जिताः ।।
पूर्वाद् द्विगुणविष्कम्भाः पूर्वविक्षेपवर्तिनः ।
वलयाकृतयो मध्ये जम्बूद्वीपः प्रकीर्त्तितः ।।
मेरुनाभिरसौ वृत्तो लक्षयोजनमानभृत् ।
त्रिगुणं तत्परिक्षेपादधिकं परिकीर्तितम् ।।
पूर्वापरायतास्तत्र विज्ञेयाः कुलपर्वताः ।
हिमवांश्च महाज्ञेयो निषधो नील एव च ।।
रुक्मी च शिखरी चेति समुद्रजलसङ्गताः ।
वास्यान्येभिर्विभक्तानि जम्बूद्वीपगतानि च ।।
भरताख्यमिदं क्षेत्रं ततो हैमवतं हरिः ।
विदेहो रम्यकाख्यं च हैरण्यवतमेव च ।।
ऐरावतं च विज्ञेयं गङ्गाद्याश्चापि निम्नगाः ।
प्रोक्तं द्विर्धातकीखण्डे पुष्करार्द्धे च पूर्वकम् ।।
आर्या म्लेच्छा मनुष्याश्च मानुषाचलतोऽपरे ।
विज्ञेयास्तत्प्रभेदाश्च संख्यानपरिवर्जिताः ।।
विदेहे कर्मणो भूमिर्भरतैरावते तथा ।
देवोत्तरकुरुर्भोगक्षेत्रं शेषाश्च भूमयः ।।

---

७४९. वही, ३।२०
७५०. वही, ३।२१
७५१. वही, ३।२२
७५२. वही, ३।२३
७५३. वही, ३।३१
७५४. वही, ३।३३
७५५. अही, ३।३४
७५६. वही, ३।३५
७५७. वही, ३।३६
७५८. वही, ३।३७
७५९. वही, ३।३८
७६०. वही, ३।३९

त्रिपल्यान्तर्मुहूर्त्तं तु स्थिती नृणां परावरे।
मनुष्याणामिव ज्ञेया तिर्यग्योनिमुपेयुषाम् ॥[७६१]

१२. उमा० : देवाश्चतुर्णिकायाः ॥[७६२] दशाष्टपञ्चद्वादशविकल्पाः कल्पोपपन्नपर्यन्ता ॥[७६३] भवनवासिनोऽसुरनागविद्युत्सुपर्णाग्निवातस्तनितोदधिद्वीपदिक्कुमाराः ॥[७६४] व्यन्तराः किन्नरकिम्पुरुषमहोरगगन्धर्वयक्षराक्षसभूतपिशाचाः ॥[७६५] ज्योतिष्काः सूर्याचन्द्रमसौ ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णकतारकाश्च ॥[७६६] मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके ॥[७६७] सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठशुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारेष्वानतप्राणतयोरारणाच्युतयोर्नवसु ग्रैवेयकेषु विजयवैजयन्तजयन्तापराजितेषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥[७६८]

रवि० : अष्टभेदजुषो वेद्या व्यन्तराः किन्नरादयः।
तेषां क्रीडनकावासा यथायोग्यमुदाहृताः ॥
ऊर्ध्वं व्यन्तरदेवानां ज्योतिषां चक्रमुज्ज्वलम्।
मेरुप्रदक्षिणं नित्यङ्गतिश्चन्द्रार्कराजकम् ॥
संख्येयानि सहस्राणि योजनानां व्यतीत्य च।
तत ऊर्ध्वं महालोको विज्ञेयः कल्पवासिनाम् ॥
सौधर्माख्यस्तथैशानः कल्पस्तत्र प्रकीर्त्तितः।
ज्ञेयः सानत्कुमारश्च तथा माहेन्द्रसंज्ञकः ॥
ब्रह्म ब्रह्मोत्तरो लोको लान्तवश्च प्रकीर्त्तितः।
कापिष्ठश्च तथा शुक्रो महाशुक्राभिधस्तथा ॥
शतारोऽथ सहस्रारः कल्पश्चानतशब्दितः।
प्राणतश्च परिज्ञेयस्तत्परावारणच्युतौ ॥
नव ग्रैवेयकास्ताभ्यामुपरिष्टात्प्रकीर्त्तिताः।
अहमिन्द्रतया येषु परमास्त्रिदशाः स्थिताः ॥

---

७६१. पद्म०, १०५।१५४-१६३ इसके अतिरिक्त पद्म० ३।३९-४० भी देखें।
७६२. तत्त्वार्थ०, ४।१
७६३. तत्त्वार्थ, ४।३ — ७६४. वही, ४।१०
७६५. वही, ४।११ — ७६६. वही, ४।१२
७६७. वही, ४।१३ — ७६८. वही, ४।१९

विजयो वैजयन्तश्च जयन्तोऽथापराजितः ।
सर्वार्थसिद्धिनामा च पञ्चैतेऽनुत्तराः स्मृताः ।।[७६९]

१३. उमा० : भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणी-भ्याम् ।।[७७०]

रवि० उत्सर्पिण्यवसर्पिण्योरेवं क्रमसमुद्भवः ।।[७७१]

१४. उमा० : पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः ।।[७७२]
संसारिणस्त्रसस्थावराः ।।[७७३]

रवि० : पृथिव्यापश्च तेजश्च मातरिश्वा वनस्पतिः ।
शेषास्त्रसाश्च जीवानां निकायाः षट् प्रकीर्त्तिताः ।।[७७४]

१५. उमा० : अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गलाः ।।[७७५] द्रव्यानि ।।[७७६]
जीवाश्च ।।[७७७] आ आकाशादेकद्रव्यानि ।।[७७८]

रवि० धर्माधर्मवियत्कालजीवपुद्गलभेदतः ।
षोढा द्रव्यं समुद्दिष्टं सरहस्यं जिनेश्वरैः ।।[७७९]

१६. उमा० : तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ।।[७८०] तन्निसर्गादधिगमाद्वा ।।[७८१] नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्न्यासः ।।[७८२] प्रमाणनयै-रधिगमः ।।[७८३] सत्संख्याक्षेत्रस्पर्शनकालान्तरभावाल्प-बहुत्वैश्च ।।[७८४] नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्दसमभिरू-ढैवम्भूता नयाः ।।[७८५] जीवभव्याभव्यत्वानि च ।।[७८६] उप-योगो लक्षणम् ।।[७८७] स द्विविधोऽष्टचतुर्भेदः ।।[७८८] संसारिणो मुक्ताश्च ।।[७८९] समनस्कामनस्काः ।।[७९०] संसारिणस्त्रस-स्थावराः ।।[७९१] पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः ।।[७९२]

---

७६९. पद्म०, १०५।१६४-१७१
७७०. तत्त्वार्थसूत्र ३।२७
७७१. पद्म०, ३।७३
७७२. तत्त्वार्थसूत्र २।१३
७७३. वही, २।१२
७७४. पद्म०, १०५।१४१
७७५. तत्त्वार्थसूत्र, ५।१
७७६. वही, ५।२
७७७. वही, ५।३
७७८. वही, ५।६
७७९. पद्म० १०५।१४२
७८०. तत्त्वार्थसूत्र १।२
७८१. वही १।३
७८२. वही, १।५
७८३. वही १।६
७८४. वही, १।८
७८५. वही १।३३
७८६. वही, २।७
७८७. वही २।८
७८८. वही, २।९
७८९. वही २।१०
७९०. वही, २।११
७९१. वही २।१२
७९२. वही, २।१३

द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः ।।[793] पञ्चेन्द्रियाणि ।।[794] स्पर्शनरसन-
घ्राणचक्षुःश्रोत्राणि ।।[795]

रवि० सप्तभंगीवचोमार्गः सम्यक्प्रतिपदं मतः ।
प्रमाणं सकलादेशो नयोऽवयवसाधनम् ।।
एकद्वित्रिचतुःपञ्चहृषीकेष्वविरोधतः ।
सत्त्वं जीवेषु विज्ञेयं प्रतिपक्षसमन्वितम् ।।

० ० ०

भव्याभव्यादिभेदं च जीवद्रव्यमुदाहृतम् ।
संसारे तद्द्वयोन्मुक्ताः सिद्धास्तु परिकीर्तिताः ।।
ज्ञेयदृश्यस्वभावेषु परिणामः स्वशक्तितः ।
उपयोगश्च तद्रूपं ज्ञानदर्शनतो द्विधा ।।
ज्ञानमष्टविधं ज्ञेयं चतुर्धा दर्शनं मतम् ।
संसारिणो विमुक्ताश्च ते सचित्तविचेतसः ।।
वनस्पतिपृथिव्याद्याः स्थावराः शेषकास्त्रसाः ।
पञ्चेन्द्रियाः श्रुतिघ्राणचक्षुस्त्वग्रसनान्विताः ।।[796]

१७. उमा० : सम्मूर्च्छनगर्भोपपादा जन्म ।।[797] सचित्तशीतसंवृताः
सेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनयः ।।[798] जरायुजाण्डजपोतानां
गर्भः ।।[799] देवनारकाणामुपपादः ।।[800] शेषाणां
सम्मूर्च्छनम् ।।[801]

रवि० पोताण्डजजरायूनामुदितो गर्भसम्भवः ।
देवानामुपपादस्तु नारकाणाञ्च कीर्त्तितः ।।
सम्मूर्च्छनं समस्तानां शेषाणां जन्मकारणम् ।
योन्यस्तु विविधाः प्रोक्ता महादुःखसमन्विताः ।।[802]

१८. उमा० : औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणानि शरीराणि।।[803]
परम्परं सूक्ष्मम् ।।[804]

---

७९३. वही, २।१४
७९४. वही, २।१५
७९५. वही, २।१९
७९६. पद्म०, १०५।१४३-१४९
७९७. तत्त्वार्थसूत्र, २।६१
७९८. वही, २।३२
७९९. वही, २।३३
८००. वही, २।३४
८०१. वही, २।३५
८०२. पद्म०, १०५।१५०-१५१
८०३. तत्त्वार्थसूत्र, २।३६
८०४. वही, २।३७

रवि० औदारिकं शरीरं तु वैक्रियाऽऽहारके तथा।
तैजसं कार्मणं चैव विद्धि सूक्ष्मं परं परम् ॥[८०५]

१९. उमा० : प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राक्तैजसात् ॥[८०६] अनन्तगुणे परे ॥[८०७] तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्ना चतुर्भ्यः ॥[८०८]

रवि० असंख्येयं प्रदेशेन गुणतोऽनन्तके परे।
आदिसम्वन्धमुक्ते च चतुर्णामेककालता ॥[८०९]

२० उमा० : देवाश्चतुर्णिकायाः ॥[८१०] भवनवासिनोऽसुरनागविद्युत्सुपर्णाग्निवातस्तनितोदधिद्वीपदिक्कुमाराः ॥[८११] व्यन्तराः किन्नरकिम्पुरुषमहोरगगन्धर्वयक्षराक्षसभूतपिशाचाः ॥[८१२] ज्यौतिष्काः सूर्याचन्द्रमसौ ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णकतारकाश्च ॥[८१३] वैमानिकाः ॥[८१४] कल्पोपपन्नाः कल्पातीताश्च ॥[८१५]

रवि० ज्योतिषाः भावनाः कल्पा व्यन्तराश्च चतुर्विधाः।
देवा भवन्ति योग्येन कर्मणा जन्तवो भवे ॥[८१६]

२१. उमा० : ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गाः समितयः ॥[८१७]

रवि० : ईर्यावाक्यैषणादाननिक्षेपोत्सर्गरूपिका ।
समितिः पालनं तस्याः कार्यं यत्नेन साधुना ॥[८१८]

२२. उमा० : सम्यग्योगनिग्रहो गुप्तिः ॥[८१९] कायवाङ्मनःकर्म योगः ॥[८२०]

रवि० : वाङ्मनःकायवृत्तीनामभावो ऽदिमाथवा।
गुप्तिराचरणं तस्यां विधेयं परमादरात् ॥[८२१]

२३. उमा० : दिग्देशानर्थदण्डविरतिसामायिकप्रोषधोपवासोपभोगपरि - भोगपरिमाणातिथिसंविभागव्रतसम्पन्नश्च ।[८२२] मार-

---

८०५. पद्मपुराण, १०५।१५२
८०६. तत्त्वार्थसूत्र, २।३८
८०७. वही, २।३९
८०८. वही, २।४३
८०९. पद्मपुराण, १०५।१५३
८१०. तत्त्वार्थसूत्र, ४।१
८११. वही, ४।१०
८१२. वही, ४।११
८१३. वही, ४।१२
८१४. वही, ४।१६
८१५. वही, ४।१७
८१६. पद्मपुराण, ३।८२
८१७. तत्त्वार्थसूत्र, ९।५
८१८. पद्म०, १४।१०८
८१९. तत्त्वार्थ०, ९।४
८२०. वही, ६।१
८२१. पद्म०, १४।१०९
८२२. तत्त्वार्थ०, ७।२१

णान्तिकीं सल्लेखनां जोषिता ।[८२३]

रवि० : पद्मपुराण (१४।१८३-१६६)। किन्तु रविषेण ने 'सल्लेखना' को चार शिक्षाव्रतों में चौथा माना है जो कि 'कुन्दकुन्द' की स्पष्ट मान्यता है। उमास्वाति ने सल्लेखना को चार शिक्षाव्रतों में परिगणित नहीं किया है।

कुन्दकुन्द और रविषेण

२४. कुन्दकुन्द : पंचेवणुव्वयाइं गुणव्वयाइं हवंति तह तिण्णि ।
सिक्खावय चत्तारि य संजमचरणं च सायारं ॥
थूले तसकायवहे थूले मोसे अदत्तथूले य ।
परिहारो परमहिला परिग्गहारंभ परिमाणं ॥
दिसविदिसमाणपढमं अणत्थदण्डस्स वज्जणं विदियं ।
भोगोपभोगपरिमा इयमेव गुणव्वया तिण्णि ॥
सामाइयं च पढमं विदियं च तहेव पोसहं भणियं ।
तइयं च अतिहिपुज्जं चउत्थ सल्लेहणा अंते ॥[८२४]

रविषेण : व्रतान्यणूनि पञ्चैषां शिक्षा चोक्ता चतुर्विधा ।
गुणास्त्रयो यथाशक्ति नियमास्तु सहस्रशः ॥
प्राणातिपाततः स्थूलाद्विरतिर्विततात्तथा ।
ग्रहणात्परवित्तस्य परदारसमागमात् ॥
अनन्तायाश्च गर्द्धायाः पञ्चसङ्ख्यमिदं व्रतम् ।
भावना चेयमेतेषां कथिता जिनपुङ्गवैः ॥
× × ×
विगमोऽनर्थदण्डेभ्यो दिग्विदिक्परिवर्जनम् ।
भोगोपभोगसङ्ख्यानं त्रयमेतद्गुणत्रम् ॥
सामायिकं प्रयत्नेन प्रोषधानशनं तथा ।
संविभागोऽतिथीनां च सल्लेखश्चायुषः क्षये ॥[८२५]

यतिवृषभ और रविषेण

२५. 'तिलोयपण्णत्ति' के नरलोक महाधिकार में मनुष्यलोक का निर्देश, जम्बुद्वीप, लवणसमुद्र, धातकी खण्ड, कालोदक समुद्र, पुष्करार्ध

---

८२३. वही, ७।२२ ८२४. चारित्तपाहुड २३-२६
८२५. पद्म० १४।१८३-१९९

द्वीप, इन अढ़ाई द्वीपसमुद्रों में स्थित मनुष्यों के भेद, संख्या, अल्पबहुत्व, गुणस्थानादि, आयुबन्धक, परिणाम, योनि, सुख, दु:ख, सम्यक्त्वग्रहण के कारण और मोक्ष जाने वाले जीवों का प्रमाण, इस प्रकार १६ अधिकार हैं। इसके २९६१ पद्यों और एक गद्यभाग में वेदिका, भरतादि क्षेत्रों और कुलपर्वतों का विन्यास, भरत क्षेत्र, उसमें प्रवर्तमान छः काल, हिमवान्, हैमवत महाहिमवान्, हरिवर्ष, निषध, विदेह क्षेत्र, नील पर्वत, रम्यक क्षेत्र, रुक्मि पर्वत, हैरण्यवत क्षेत्र, शिखरी पर्वत और ऐरावत क्षेत्र—इन १६ अन्तराधिकारों द्वारा जम्वूद्वीप का वर्णन, वहुत विस्तार पूर्वक किया गया है।

यहाँ प्रसंगवश २४ तीर्थंकरों का वर्णन ५२२ से गाथाओं में विस्तार के साथ किया गया है।

चक्रवर्तिप्ररूपणा में (गाथा १२८१ से १४१० तक) भरतादिक चक्रवर्तियों का उत्सेध, आयु, कुमारकाल, मण्डलीककाल, दिग्विजय, राज्य और संयमकाल का वर्णन है।

गा० १४११ से १४-७३ में वलदेव, नारायण, प्रति-नारायण, रुद्र, नारद और कामदेव की संक्षिप्त प्ररूपणा की गयी है।

रविषेण ने पद्मपुराण के तीसरे, बीसवें और एक सौ पाँचवें पर्व में मुख्यत: इस धार्मिक सामग्री का प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए एक संकेत दिया जा रहा है।

यतिवृषभ ने तीर्थंकरों की ऊँचाई (उत्सेध) इस प्रकार निरूपित किया है—

"पंचसयधणुपमाणो उसहजिणिदस्स होदि उच्छेहो।
तत्तो पण्णासूणा णियमेण य पुप्फदंतपेरंते॥
एत्तो जाव अणंतं दस दस कोदंडमेत्तपरिहीणो।
तत्तो णेमि जिणंतं पणपणचावेहिं परिहीणो॥
णव हत्था पासजिणे सग हत्था वड्ढमाणणामम्मि।
एत्तो त्तित्थयराणं सरीरवण्णं परूवेमो॥"८२६

८२६. तिलोयपण्णत्ति, चतुर्थ महाधिकार

रविषेण ने भी इसी रूप में तीर्थंकरों के उत्सेध का उल्लेख किया है—

"शतानि पञ्च चापानां प्रथमस्य महात्मनः।
उत्सेधो जिननाथस्य वपुषः परिकीर्तितः।।
पञ्चाशच्चापहान्यातः प्रत्येकं परिकीर्तितम्।
शीतलात् प्राग् जिनेन्द्राणां नवतिः शीतलस्य च।।
ततो धर्मजिनात्पूर्वं दशचापपरिक्षयः।
प्रत्येकं धर्मनाथस्य चत्वारिंशत्सपञ्चिकाः।।
ततः पार्श्वजिनात्पूर्वं प्रत्येकं पञ्चभिः क्षयः।
नवारत्निमितः पार्श्वो महावीरो द्विवर्जितः।।[८२७]

८२७. पद्म०, २०।११२-११५

नवम अध्याय

पद्मपुराण में संस्कृति

'संस्कृति वह प्रक्रिया है जिससे किसी देश के सर्वसाधारण का व्यक्तित्व निष्पन्न होता है। इस निष्पन्न व्यक्तित्व के द्वारा लोगों को जीवन और जगत् के प्रति एक अभिनव दृष्टिकोण मिलता है। कवि इस अभिनव दृष्टिकोण के साथ अपनी नैसर्गिक प्रतिभा का सामंजस्य करके सांस्कृतिक मान्यताओं का मूल्यांकन करते हुए उनकी उपादेयता और हेयता प्रतिपादित करता है।[८२८] साहित्य और संस्कृति के निर्भेद्य सम्बन्ध का पोषण करते हुए डा० राजेन्द्रप्रसाद ने कहा है कि 'साहित्य की ओट में कालविशेष की विशेषता छिपी रहती है।[८२९] जब हम किसी ग्रन्थ में छिपी कालविशेष की इस विशेषता का अध्ययन करते हैं तो उसे उस ग्रन्थ का सांस्कृतिक अध्ययन कहा जाता है। यहाँ हमें अपने आलोच्य ग्रन्थ का सांस्कृतिक अध्ययन करना है जिसे हम इन शीर्षकों के माध्यम से प्रस्तुत करेंगे:— **राजनीतिक रहन-सहन:** राज-दरबार, राजघरानों की परम्पराएँ, अन्तःपुरों की व्यवस्था, राजघरानों के उत्सव, आमोद-प्रमोद, राजवैभव, राज्य-व्यवस्था, राज्यापराध और दण्ड। **युद्ध:** कारण, स्वरूप, शस्त्रास्त्र, नियम, व्यवस्था आदि। **समाज-व्यवस्था एवं रहन-सहन :** वर्णाश्रम, जातियों के पारस्परिक सम्बन्ध, विवाह और यौन-नैतिकता, धार्मिक-सम्प्रदाय एवं उनके आचार-विचार, पर्व, भोजन, वेशभूषा, प्रस्थानकालिक मंगल, शकुन-अपशकुन, जादू-टोने आदि। **आर्थिक और व्यावसायिक जीवन :** विविध व्यापार एवं व्यवसाय। भवन-मंदिर-मूर्ति-निर्माण-कला। **विविध कलाएँ :** यन्त्र विज्ञान। **भौगोलिक उल्लेख :** पर्वत, नदी, नगर, जनपथ, ग्राम, राष्ट्र आदि।

'पद्मपुराण' सप्तम श० ई० का ग्रन्थ है। सप्तम श० ई० में ही वाण ने 'हर्षचरित' और 'कादम्वरी' लिखे थे। वाण के ग्रन्थ तत्कालीन संस्कृति के परम

---

८२८. रामजी उपाध्याय: प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका, पृ० १।

८२९. डा० राजेन्द्रप्रसाद : साहित्य, शिक्षा और संस्कृति की भूमिका, पृष्ठ ५।

परिचायक हैं। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के शब्दों में 'बाणभट्ट का समय सातवीं शती का पूर्वार्द्ध है। उस समय गुप्तकालीन संस्कृति पूर्ण रूप से विकसित हो चुकी थी। एक प्रकार से स्वर्णयुग की वह संस्कृति उत्तर गुप्तकाल में अपनी संध्यावेला में आ गयी थी और सातवीं शती में भी उसका बाह्य रूप भली-भाँति पुष्पित फलित और प्रतिमंडित था। कला, धर्म, दर्शन, राजनीति, आचार-विचार आदि की दृष्टि से बाण के अधिकांश उल्लेख गुप्तकालीन संस्कृति पर भी प्रकाश डालते हैं।'[८३०] बाण के ग्रन्थों का 'पद्मपुराण' पर पर्याप्त प्रभाव है, अतः उसका भी सांस्कृतिक दृष्टि से प्रायः उतना ही महत्त्व है। विशेष बात इतनी है कि जहाँ बाण के ग्रन्थों में गुप्तकालीन ब्राह्मण संस्कृति प्रधानतः वर्णित है वहाँ, 'पद्म-पुराण' में जैन-संस्कृति। इस दृष्टि से 'पद्मपुराण' में वर्णित संस्कृति को द्विधा विभक्त किया जा सकता है :—कवि के मत से आदर्श संस्कृति—जैन-संस्कृति तथा यथार्थ संस्कृति—जैनेतर संस्कृति। विविध स्थलों पर जैन धर्म की मान्यताओं, परम्पराओं तथा कार्यकलापों के वर्णन से कवि ने 'जैन-संस्कृति' का परिचय दिया है और अनेक स्थलों पर पूर्वपक्ष के रूप में जैनेतर संस्कृति का। सांस्कृतिक महत्त्व की दृष्टि से 'पद्मपुराण' के वर्णन तथा उपाख्यान विशेषतः दर्शनीय हैं। इन स्थलों के अध्ययन से तत्कालीन संस्कृति का विशद परिचय हमें मिल जाता है। यहीं एक बात कह देनी भी आवश्यक है कि 'पद्मपुराण' में निबद्ध संस्कृति का विवेचन करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि इसकी 'तत्कालीनता' अभिधा-वृत्ति से ही सर्वत्र प्रतिपादित नहीं की जानी चाहिए। अनेक स्थलों पर वर्णित संस्कृति पौरा-णिक संस्कृति है जिसमें यथार्थता अत्यल्प है। साथ ही बहुत से ऐसे वर्णन हैं जिसमें परम्परा-निर्वाह मात्र किया गया है (उदाहरणार्थ युद्ध आदि के वर्णन)। ऐसे स्थलों की भी 'तत्कालीनता' याथार्थिक दृष्टिकोण से प्रतिज्ञात नहीं की जा सकती। तथापि 'पद्मपुराण' में निबद्ध होने के कारण इन सबका भी विवेचन हमें करना है। हमें यह नहीं देखना कि रविषेण के काल में क्या था, हमें यह देखना है कि 'पद्मपुराण' में क्या है? रविषेण के काल की परिस्थितियों का विवेचन तृतीय अध्याय में हो चुका है; यहाँ अन्तःसाक्ष्य के आधार पर 'पद्मपुराण' में निबद्ध संस्कृति का विवेचन हमें करना है। 'पद्मपुराण' में निबद्ध अयथार्थ वर्णनों से भी कुछ न कुछ निष्कर्ष निकलता अवश्य हैं, उदाहरणार्थ वारुणास्त्र आदि के वर्णनों से उनके प्रति विश्वास की भावना व्यक्त होती है। अस्तु, 'पद्म-पुराण' में वर्णित सांस्कृतिक सामग्री प्रस्तुत की जा रही है।

---

८३०. हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ३।

राजनीतिक रहन-सहन : राजघरानों की परम्पराओं, उत्सवों, आमोद-प्रमोदों तथा वैभवादि के वर्णनों से यह ध्वनित होता है कि 'पद्मपुराण' में वर्णित राजनीतिक रहन-सहन पर्याप्त उच्चस्तरीय है।

राजाओं में बहुपत्नीत्व-प्रथा खूब प्रचलित थी, अन्तःपुर भरे रहते थे--ऐसा प्रतीत होता है। राजा श्रेणिक के अन्तःपुर में सहस्रों महिषियों का उल्लेख है।[८३१] राजाओं की दिनचर्या प्रातःकाल से रात्रि तक अत्यन्त व्यस्त थी। उनके शयनीय-गृह में अत्यन्त शोभा होती थी। शय्या पर रत्न एवं पुष्प जड़े होते थे।[८३२] शैय्या के पास बैठकर वेश्याएँ गान करती थीं।[८३३] राजा स्त्रियों के द्वारा मंगल किये जाने पर (स्वस्त्रीभिः कृतमंगलः) शयनीय से उठता था।[८३४] वन्दीजन तुरहीवादन एवं मांगलिक शब्द करते थे।[८३५] वेश्याएँ उसका जयकार करती थीं।[८३६] जागकर राजा भद्रविष्टर (सिंहासन) पर कृताशेषतनुस्थिति एव सर्वालंकारसम्पन्न होकर बैठता था।[८३७] तनुस्थिति का प्रधान अंग था--स्नान। गन्ध और उद्वर्तन के साथ स्नान का अनेक वार उल्लेख हुआ है।[८३८] राजाओं और युवराजों की स्नानविधि बड़ी उपचारपूर्ण थी। सुन्दर वनिताएँ उन्हें स्नान कराती थीं। रत्न-जटित और स्वर्णनिर्मित चौकियों पर बैठकर वे स्नान करते थे। सौवर्ण और राजत कलशों से उनका अभिषेक किया जाता था। इन कलशों के मुख पर नव-पल्लव रखे रहते थे और ये हारों से सुशोभित रहते थे। इनमें सुवासित जल रहता था। कलशों में एक या अथवा अनेक मुख होते थे। स्नान के समय गन्धलेपन और उद्वर्तन होता था एवं कुलांगनाएँ मंगलाचार करती थीं। तूर्यनाद होता था। स्नानोपरांत वस्त्राभूषण धारण किये जाते थे, राजकुमार गुरुजनों की वन्दना भी करते थे।[८३९]

प्रतीहारदत्तद्वार सामन्त प्रातःकाल आकर राजा को प्रणाम करते थे।[८४०] जब राजा किसी धार्मिक स्थान पर जाता था तो सामन्त उसके साथ चलते थे।[८४१] वह कुथा (भूल) से युक्त हाथी पर चढ़कर चलता था।[८४२] आगे-आगे पैदल

८३१. पद्मपुराण, २।३४
८३२. वही, २।२१९-२२०
८३३. वही, २।२२०
८३४. वही, २।२५३
८३५. वही, १०।५७
८३६. वही, २।२५६
८३७. वही, ३।१
८३८. वही, ३।१८५।७२।११२।१७ तथा ८३।१०७-१०८ आदि।
८३९. वही, ७।३५९-३६७। वाण ने भी कादम्बरी में शूद्रक के स्नान का ऐसा ही वर्णन किया है।
८४०. वही, ३।२-४
८४१. वही, ३।५
८४२. वही, ३।३५

सिपाही भीड़ को हटाते चलते थे[८४३] तथा वन्दीजन सुभाषित पढ़ते चलते थे।[८४४] किसी बड़े मुनि के पास जाकर राजा हाथी से उतरकर पैदल ही जाता था और उनकी तीन प्रदक्षिणाएँ करके कृतांजलि होकर उन्हें प्रणाम करता था।[८४५] हाथी से उतरना अपार शिष्टाचार का द्योतक था।[८४६] राजा आदि के सामने आकर तथा अनुग्रहकामना सूचित करने के लिए पृथ्वी पर घुटने टेकने तथा सिर पर अंजलि रखने की प्रथा थी।[८४७] उच्च मुनियों तथा महर्षियों का राजकुलों में विशेष आदर होता था।[८४८] राजा और रानियाँ मन्दिरों में धार्मिक पूजा के लिए आज्ञा प्रसारित करते थे।[८४९]

राजकुलों में **अन्तःपुर की व्यवस्था** के लिए कंचुकी रखे जाते थे।[८५०] कन्याओं के अन्तःपुरों में द्वारपालियाँ भी रखी जाती थीं।[८५१] रानियों की शय्याओं पर गल्लक (गद्दे), उपधान (तकिये) तथा चारों ओर सशस्त्र स्त्रियाँ पहरे के लिए खड़ी रहती थीं।[८५२] शंखों एवं तूर्यों के मधुर शब्दों और चारणों की रम्य वाणी से रानियाँ जागती थीं।[८५३] रानी की गर्भावस्था में उसकी परिचर्या पर विशेष ध्यान दिया जाता था। इस परिचर्या की झलक रानी मरुदेवी की गर्भावस्था के वर्णन में मिलती है। परिचारिकाएँ रानी की स्तुति करती थीं।[८५४] वीणा बजाकर उसका गुणगान करती थीं,[८५५] उसे गीत सुनाती थीं,[८५६] उसके पैर पलोटती थी,[८५७] कोई ताम्बूल देती थीं कोई आसन,[८५८] कोई तलवार हाथ में लेकर उसकी रक्षा करती थीं,[८५९] कोई महल के भीतरी द्वार पर और कोई महल के बाहरी द्वार पर माला, सुवर्ण की छड़ी, दण्ड और तलवार आदि हथियार लेकर पहरा देती थीं,[८६०] कोई चमर डोलती थीं, कोई वस्त्र लाकर देती थी, कोई आभूषण लाकर उपस्थित करती थी,[८६१] कोई शय्या बिछाने के कार्य में रत रहती थी, कोई झाड़ू लगाती थीं। कोई पुष्प बिखेरने में लीन रहती थी, कोई सुगन्धित द्रव्य का लेप करती थी, कोई भोजन-पान के कार्य में व्यग्र रहती थी और कोई आह्वान-कर्म में लीन रहती

---

८४३. वही, ३।८
८४४. वही, ३।९
८४५. वही, ३।१३-१५
८४६. वही, ३६।८८
८४७. वही, २९।४२
८४८. वही, १०।१४२, २९।८७
८४९. वही, ६९।११
८५०. वही, २९।४१
८५१. वही, २८।८
८५२. वही, ७।१७२-१७३
८५३. वही, ७।१७
८५४. वही, ३।११४
८५५. वही, ३।११४
८५६. वही, ३।११५
८५७. वही, ३।११५
८५८. वही, ३।११६
८५९. वही, ३।११६
८६०. वही, ३।११७
८६१. वही, ३।११८

थी।[८६२] प्रमोद के अवसर पर राजा लोग भी नृत्य करते थे।[८६३]

'पद्मपुराण' के अनेक वर्णनों मे राजाओं के **आमोद-प्रमोदों** का भी परिचय मिल जाता है। राजा लोग रानियों के साथ प्रमदोद्यान में क्रीडा और वापिकाओं में जलक्रीड़ा किया करते थे। प्रमदोद्यान में सरोवर, दोला (झूले) कृत्रिम क्रीडा-पर्वत (जिस पर सीढ़ियाँ वनीं होती थीं) एवं वृक्षों के झुरमुट बनाये जाते थे।[८६४] राजाओं के द्वारा रात्रि में उत्तुंग भवन के शिखर पर वैठकर चारुगोष्ठीसुधास्वाद ग्रहण करने का भी उल्लेख आया है।[८६५] इसके अतिरिक्त नृत्य, वाद्य एवं संगीत द्वारा भी राजाओं का मनोविनोद होता था। वेश्या, नृत्यकार(लासक), वन्दीजन, गीतशास्त्रकौशलकोविद वार्तिक (पेशेवर कहानी सुनाने वाले), चारण तथा विटों का मनोरंजन के साधन के रूप में उल्लेख हुआ है।[८६६] पानगोष्ठी भी प्रचलित थी। स्त्रियाँ भी मदिरापान करती थीं।[८६७]

'पद्मपुराण' के **राजवैभव-वर्णनों** से निष्कर्ष निकलता है कि खजाने, खान, गौएँ, हल, उत्तम हाथी, घोड़े, अनेक वशंवद राजा, अनेक सुन्दर स्त्रियाँ एवं रत्न राजा के वैभव के प्रतीक थे।[८६८] अनेक यन्त्रों का भी उल्लेख हुआ है।[८६९] राज-भवनों को विविध रंगों से सजाया जाता था। सम्पन्न महलों तथा भवनों में हाथी-घोड़े आदि रखे जाते थे। विमान, उज्ज्वल छत्र, चामर आदि राजाओं की विभूति के परिचायक थे। वीणा-तूर्य, बाँसुरी और शंख आदि के मांगलिक शब्द राज-भवनों में होते रहते थे।[८७०] राजभवनों में अनेक द्वार तथा गोपुर होते थे। विभिन्न भवनों तथा शालाओं के नाम अलग-अलग रखे जाते थे। कोट और सभाएँ होती थीं। प्रेक्षागृहों, कार्यालयों एवं गर्भगृहों का व्यवस्थित रूप से निर्माण होता था। रानियों के महलों की पंक्तियाँ एक तरफ होती थीं। सुसज्जित शय्यागृह होते थे। अनर्घ्य वस्त्र, दिव्य आभूषण, दुर्भेद्य कवच, आभूषण तथा शस्त्रास्त्र, ऊँचे कोट, वाहन, मणिमय फर्शों, छज्जों, खम्भों तथा स्नानभूमि आदि से समन्वित, क्षुद्र-घण्टिका-रेशमी वस्त्र-पट्टलम्वूष (फन्नूस)-चामर-उत्तमोत्तमप्राकार-तोरण-गोपुरादि से अलंकृत अनेक मंजिलों वाले ससंगीत विशाल प्रासाद राजाओं के वैभव में परिगणित थे।[८७१] ग्रीष्म-वर्षा और शीत में ऋतु के अनुसार राजाओं का

---

८६२. वही, ३।११९-१२० — ८६३. वही, ३८।३१५

८६४. वही, ५।२९७-३०४, ६।२२७- ३१ — ८६५. वही, ६।३३५-१३६

८६६. वही, २।३९-४३ — ८६७. वही, २।३८

८६८. वही. ४।६१।६६ — ८६९. वही, ८।२५८-२५९

८७०. वही, ८।५११-५१८।

८७१. वही, ८३।४-१४, १०२।११८, ११०।६३-६७, ११२।४४-४८

वैभव-विलास होता था। गर्मियों में वे चन्दन का लेप लगवाते थे; जलयन्त्रों (फव्वारों) में स्नान करते थे; ठण्डे उपवनों, चामर, जलकणों से युक्त पंखों, स्फटिक की स्वच्छ मणियों, इलायची, लौंग, कर्पूरचूर्ण युक्त शीतल स्वादिष्ट मनोहर जल एवं कथासक्त स्त्रियों का सेवन करतेथे।[८७२] वर्षा में वे उत्तम महलों एवं महाविलासिनी स्त्रियों का सेवन करते थे।[८७३] शीतकाल में तरुणी-स्तनों का सेवन करके वे शीतापनोदन करते थे।[८७४]

राजव्यवस्था और राजा के कर्त्तव्य का भी परिचय 'पद्मपुराण' हमें देता है। राजा सभी भीषित, दरिद्र और दुःखियों का शरण समझा जाता था एवं उनका कष्ट दूर करना उसका कर्त्तव्य था।[८७५] इसके लिए वह अन्याय का दमन तथा न्याय की उन्नति करके राज्य व्यवस्था को सुदृढ़ करता था। अनेक सामन्तों, गुप्तचरों, लेखवाहक दूतों तथा अन्य प्रशासकों तथा नौकरों के द्वारा वह राज्य की स्थिति से अवगत होता रहता था तथा व्यवहार-निर्णय किया करता था।[८७६] अत्यन्त गोपनीय समाचारों को वह बिल्कुल एकान्त में सुनता था।[८७७]

राज्यापराध और दण्ड का भी 'पद्मपुराण' परिचय देता है। उपद्रव, लूट, राजद्रोह, विषदान, हत्या, षड्यन्त्र तथा और भी अनेक अपराध राजनीतिक क्षेत्र में होते थे एवं उनके कर्ताओं को कठोर दण्ठ दिया जाता था।[८७८] कन्या, वेश्या तथा रत्नादि को लूट में झपटा जा सकता था।[८७९] नगर का ध्वंस करना, बाग उजाड़ना, रक्षकों को विह्वल करना, प्याऊ आदि नष्ट करना, अन्तःपुर में उपद्रव करना, रात्रि में वीरों की हत्या, हाथी-घोड़ों की चोरी आदि राज्यापराध पद्म-पुराण में उल्लिखित हैं।[८८०] अपराधी को साँकलों में बाँधकर नंगी तलवार के पहरे में लाया जाता था।[८८१] उसे नगर में भी घुमाया जा सकता था जहाँ कि जनता उसे धिक्कारती थी।[८८२] अपराधी के गर्दन, हाथ तथा पैरों को साँकलों में जकड़ा जाता था, उस पर धूल फेंकी जाती थी। राजदण्ड में, अपराधी को तलवार से दो टुकड़े करा देना, मुद्गरों की मार से प्राण घुटाकर मरवा देना, लकड़ियों के

---

८७२. वही, ११२।३-८ ८७३. वही, ११२।१०-१२

८७४. वही, ११२।१३-१८ ८७५. वही, २६।२२

८७६. वही, ६।५३८, १२।७९-८१, १०।२०-२२

८७७. वही, १२।११८-११९

८७८. वही, ५।१०५, ८।१६१-१६३, ८।४४२, १०।१५८-१६१, २७।८१-८५, ५३।२५०-२५१, ५३।२५७-२६१, ५३।२२१-२२६, ५३।२४१. ७२।५२-७७, ७२।७१-७६, १०६।२७-३४।

८७९. वही, ८।१६२।

८८०. वही, ३७।८१-८५ ८८१. वही. १०।१५८ ८८२. वही. ५३।२१९-२२१

शिकंजे में कसकर अत्यन्त तीक्ष्ण धार वाली करोंत से चिरवा देना एवं अन्यान्य शस्त्रों से चूर-चूर करा देना, पानी में विष मिलवाकर पिलवा देना आदि आते थे।[८८३] राहजनी और जंगलों में रहकर आभूषण आदि लूटना भी राज्य-अपराध थे।[८८४]

युद्ध के विषय में प्रभूत सूचनाएँ पद्मपुराण में मिलती हैं। युद्ध का प्रधान कारण दिग्विजय की भावना थी। राजा अपनी सर्वोच्चता का परिचय देने के लिए नरसंहारकारी दिग्विजय का आयोजन करते थे। दिग्विजय ही नवाभिषिक्त राजा के प्रतापारोपण का एकमात्र साधन था। युद्ध का कारण स्वयंवर में कन्या द्वारा किसी राजा को वरा जाना भी था। चुने गये राजा को प्रतिपक्षी ललकारते थे और दोनों की सेनाओं में युद्ध हो जाता था।[८८५] कन्याओं का हरण आम बात थी।[८८६] इसे वंश के लिए अपमान समझा जाता था और कन्यापक्षीय व्यक्ति अपहरणकर्त्ता को मारने तक के लिए तैयार हो जाते थे।[८८७] यदि अपहृत कन्या को अपहर्त्ता से छुड़ा लिया जाता था तो उसका विवाह करने को सुविधा से कोई तैयार नहीं होता था और उसे आजीवन विधवा के समान भी रहना पड़ सकता था।[८८८]

बलवान राजा दूसरे राजाओं को झुकाने के लिए पहले दूत-प्रेषण करता था। दूत अपने राजा की बड़ाई करता हुआ दूसरे राजा को पहले नीति से समझाता था और फिर राजा को पाखण्ड-भरे अपमानजनक वाक्य भी कह देता था।[८८९] दूत को मारना, नीति-विरुद्ध समझा जाता था किन्तु उसका तिरस्कार खूब किया जा सकता था।[८९०] दूत के साथ सेना भी चल सकती थी।[८९१] दूत अपने सैनिकों को डेरे के बाहर ही ठहराकर द्वारपाल के द्वारा राजा की अनुज्ञा पाकर कुछ आप्तजनों के साथ भीतर पहुँचता था जहाँ कि वह शिष्टतापूर्वक सन्ध्यादि का प्रस्ताव राजा के सम्मुख रखता था।[८९२] दूत की कभी-कभी दुर्गति भी हो जाती थी। स्वामी के प्रधान सामन्त की आज्ञा से क्रुद्ध भट्ट दूत के पैर पकड़कर उसे घसीटते थे तथा नगरी के मध्य तक घसीटकर उसे छोड़ देते थे जहाँ से वह धूलि-धूसरित होकर भाग जाता था।[८९३] दूत की दुर्गति देखकर उसका स्वामी राजा कुपित होकर प्रतिपक्षी से प्रतिशोध लेने के लिए सन्नद्ध हो सकता था।[८९४]

---

८८३. वही, ७२।७३-७६
८८४. वही, ९८।१३
८८५. वही, ६।६२७-४३३
८८६. वही, ९।१५-१६
८८७. वही, ९।२९
८८८. वही, ९।३६।
८८९. वही, ९।१५-६५
८९०. वही, ९।६८, ६६।५१-५९
८९१. वही, ६६।१७
८९२. वही, ६६।२०-३२
८९३. वही, २७।३७-४८
८९४. वही, २७।५३-५४

रण के विषय में राजा अपने लोगों से सलाह लेता था।[८९५] युद्ध की तैयारी के लिए रणभेरी, तूर्य एवं शंख बजाये जाते थे जिससे योद्धा तैयार होकर राजा के सम्मुख आ जाते थे।[८९६] मित्र राजा युद्ध के लिए आते थे एवं राजा उनका अस्त्र, वाहन तथा कवच आदि से सत्कार करता था।[८९७]

युद्ध-यात्रा बड़े जोर-शोर से होती थी।[८९८] बड़े-बड़े राजाओं के पास चतुरंगिणी सेना होती थी।[८९९] लवणांकुश की अयोध्या पर चढ़ाई के वर्णन से ज्ञात होता है कि युद्ध-यात्रा के मार्ग को साफ करने के लिए अनेक पुरुष बड़े-बड़े कुल्हाड़े तथा कुदाल लेकर चलते थे। उनसे वे वृक्ष आदि को काटते जाते थे तथा उच्चावच भूमि को समतल करते थे। सेना में सबसे पहले ख़जाने के भार को धारण करने वाले भैंसे, ऊँट तथा बड़े-बड़े बैल चलते थे, फिर गाड़ियों के सेवक चलते थे, तदनन्तर पैदल सैनिकों के समूह और उनके बाद घोड़े चलते थे। उनके पीछे चतुर हाथी, घुड़सवार एवं सशस्त्र पदाति चलते थे। सेना में सभी के लिए शयन, आसन, ताम्बूल, गन्ध, माल्य, वस्त्र, आहार, विलेपनादि का प्रबन्ध रहता था। राजा की आज्ञा (राजवाक्य) से मार्ग में स्थान-स्थान पर नियुक्त पुरुष समस्त युद्ध यात्रियों के लिए मधु, शीधु, घृत, जल तथा विविध रसवत् व्यंजन प्रस्तुत करते थे। यात्रा में सजी हुई स्त्रियाँ भी चलती थीं। प्रायः नदी के किनारे पड़ाव डाल दिया जाता था।[९००]

युद्ध-यात्रा में विविध वादित्र, घोड़ों की हिन-हिनाहट, गजों की गर्जना, पदातियों को बुलाने के शब्द (आकारित), योद्धाओं के सिंहनाद, वन्दियों के जय शब्द एवं कुशीलवों के गीत हलचल किये रहते थे।[९०१]

आगत शत्रु का आक्रमण होने पर प्रतिपक्षी राजा आयुधशाला (सन्नाह-मण्डप) में जाकर युद्ध की तैयारी के लिये तूर्य बजवाता था, वहाँ हाथी तैयार होते थे, घोड़ों पर पलान कसे जाते थे, तलवार, कवच, धनुष, शिरस्त्राण, अर्धबाहुलिका, सायकपुत्रिका आदि से सैनिक लैस होते थे।[९०२] वे असि, तोमर, पाश, ध्वज, छत्र, शरासनों, अर्धबाहुलिका, अर्धसन्नाह, सन्नाहकण्ठसूत्र, शिरस्त्राण आदि से युक्त होकर और किरीट एवं सिर पर माणिक्य-शकल आदि धारण करके युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जाते थे।[९०३] युद्ध के आरम्भ में सेनाओं में योद्धाओं को

---

८९५. वही, ५५।२
८९६. वही, ५५।३-५
८९७. वही, ५५।८३-८९
८९८. वही, १०।३५-५१
८९९. वही, ८।४६७-४६८
९००. वही, १०२।९०-१२२
९०१. वही, ७३।१७५-१७६
९०२. वही, १२।१८१-१८४
९०३. वही, १२।१८८, ४४।५६, १०।११६, ५७।३०, ५७।३२, ५७।३९

उत्तेजित करने के लिए शंख, तूर्य, भम्मा, भेरी, मृदंग, लम्पाक, धुन्धु, मंडुक, झम्ला, अम्लातक, हक्का, हुंकार, दुन्दुकाणक, झर्झर, हेकगुंजा, काहल और दर्दुर आदि बजाकर तुमुल-नाद किया जाता था।[९०४]

तूर्यनाद के संकेत पर आक्रमण करने वाली सेना पहले शत्रु-सेना का 'मुख-भंग' करती थी।[९०५] इस पर दूसरी सेना बचाव के लिए अपनी सर्वाधिक शक्ति मुख पर ही लगाती थी। सेना की मुख-रक्षा दोनों सेनाओं का साध्य होता था।[९०६] युद्ध में प्रयुक्त होने वाले अनेक शस्त्रास्त्रों का उल्लेख मिलता है। असि, प्रास, कनक, भिण्डीमाल, अर्धचन्द्राकार वाण, गदा, शक्ति, कुन्त, मुसल, शर, परिघ, चक्र, करवाली, अहिप, शूल, पास, भुशुण्डी, कुठार, मुद्‌गर, घन, ग्रावा, लांगल, दण्ड, कौण, सायक, वेणु, शिलीमुख, परशु, शतघ्नी, उल्का, लांगूल, शिला, यष्टि, आर्ष्टि (वज्र) और पाँच प्रकार के शस्त्र आदि का युद्ध में खुलकर प्रयोग होता था।[९०७] विभिन्न दिव्यास्त्रों का भी उल्लेख मिलता है यथा—आग्नेयास्त्र,[९०८] वारुणास्त्र,[९०९] तामसास्त्र[९१०] प्रभास्त्र[९११] नागास्त्र,[९१२] गरुडास्त्र[९१३] आदि। निद्रा[९१४] एवं प्रतिवोधिनी[९१५] विद्याओं के प्रयोग का भी उल्लेख है। पर यह पौराणिक प्रभाव प्रतीत होता है।

वीर परस्पर ध्वजा-छेद, धनुर्भंग एवं कवच-विदारण करते थे। योद्धा एक कवच छिन्न हो जाने पर दूसरा तत्काल पहन लेते थे।[९१६] घनघोर युद्ध में सेना के चारों अंगों का परस्पर घात-प्रतिघात होता था।[९१७] शस्त्र लिये ही मर जाना सम्मान की बात थी।[९१८] शस्त्र के गिर जाने पर घूँसों से भी शत्रु को मारा जा सकता था।[९१९] शत्रु को पीठ दिखाना बुरा माना जाता था।[९२०] न्याय-संग्राम-तत्पर योद्धा त्यक्त-युद्ध प्रतिपक्षी को देखकर अपना भी शस्त्र छोड़ देता था।[९२१] योग्य शत्रु के साथ युद्ध करना शोभनीय था। पुत्र के रहते पिता का युद्ध करना

---

९०४. वही, ५८।२६-२८
९०५. वही, १२।१९४
९०६. वही, १२।१९७-१९९
९०७. वही, १०।११२, १२।१३४, १२।२३६, १२।२१२, १२।२५७-२५८, ५०।३२, ५०।३७, ५२।४०, ६२।७, ७३।१७४
९०८. वही, १२।३२४
९०९. वही, १२।३२५
९१०. वही, १२।३२८
९११. वही, १२।३३०
९१२. वही, १२।३३२
९१३. वही, १२।३३६
९१४. वही, ६०।६०
९१५. वही, ६०।६२
९१६. वही, ३३।३५
९१७. वही, ३२।२६४-२६५
९१८. वही, १२।२७७
९१९. वही, १२।२७९
९२०. वही, १२।२८२
९२१. वही, १२।२९०
९२२. वही, १२।२३१

पुत्र के लिए लज्जाजनक था।[९२३] मानी राजा असमान सामन्तों पर प्रहार नहीं करते थे।[९२४]

अधिक संकट आने पर हाथी पर चढ़कर युद्ध किया जाता था।[९२५] हाथी पर युद्ध करते समय प्रवल राजा दूसरे राजा के हाथी पर पैर रखकर महावत को नीचे गिराकर उसे वाँधकर भी पकड़ सकता था।[९२६] जीवित प्रतिपक्षी को पकड़ लेना चातुर्य और वीरता का द्योतक था।[९२७] योद्धा एक-दूसरे को वातों से नीचा दिखाते थे,[९२८] वाणों से कवचछेद, छत्रपात, धनुषछेद, रथाश्वों का वध, शक्ति-छेद[९२९] आदि करते थे। रथ पर उछलकर प्रतिपक्षी को पकड़ा भी जा सकता था।[९३०] वाहन के साथ योद्धा का छेद करना वीरता का प्रतीक था।[९३१]

युद्ध के समय कभी-कभी सामन्त अवसर देखकर विना प्रधान राजा की आज्ञा के भी (अनापृच्छ) लाभकारी युद्ध कर बैठते थे।[९३२] ऐसे अवसर पर विना आज्ञा के युद्ध करना भी ठीक ही समझा जाता था। मध्य रात्रि में भी भयंकर युद्ध हो सकता था।[९३३] रण-सज्जा के लिए रात या दिन कभी भी रणभेरी वज सकती थी।[९३४] स्त्रियों के युद्ध करने तथा वाण से प्रतिपक्षी के पास सन्देश-प्रेषण का भी उल्लेख हुआ है।[९३५] दृष्टि-युद्ध, जल-युद्ध एवं वाहु-युद्ध की भी चर्चा है।[९३६]

कवच और शस्त्र का त्याग युद्ध-विराम का द्योतक था।[९३७] शत्रु-सेना के नायक को मारकर शंखनाद किया जाता था और नायक के मरने पर सेना प्रायः भाग जाती थी।[९३८] भागी हुई सेना को कोई नायक तुरन्त सँभालकर उत्साहित कर सकता था।[९३९] स्वामिभक्ति से प्रेरित होकर सैनिक अत्यधिक युद्ध करते थे।[९४०] चूँकि नायक-रहित सेना में लड़ने की हिम्मत नहीं रहती थी अतः नायक-रक्षा पर विशेष वल दिया जाता था।[९४१] सेना के क्षय हो जाने पर राजा स्वयं आकर लड़ता था।[९४२]

प्रतीत होता है कि शत्रु की प्रार्थना पर कुछ देर के लिए युद्ध-विराम भी हो

९२३. वही, १२।२२३-२५५
९२४. वही, १२।३०६
९२५. वही, ६०।६९
९२६. वही, ८।४५१
९२७. वही, ८।४५१
९२८. वही, ५०।२९
९२९. वही, ४६।१२५, ५२।३८, ५०।१८, ५०।१९, ५२।३९
९३०. वही, ५०।३५-३६
९३१. वही, ४४।५८
९३२. वही, ५७।४४
९३३. वही, ८।४४४
९३४. वही, ६५।८
९३५. वही, ५२।३१, ५८
९३६. वही, ४।७१, ७२
९३७. वही, १०३।४४
९३८. वही, १२।२४२
९३९. वही, १२।२४३-२४४
९४०. वही, १२।२५६
९४१. वही, ६०।१११-११५
९४२. वही, ८।४४६, १०।११५

सकता था।[९४३]

सेना के नायक को गृहीत कर लेने पर प्रायः सेना को ध्वस्त नहीं किया जाता था।[९४४] गृहीतनायक सेना प्रायः विशीर्ण हो जाती थी।[९४५] सामन्तों की स्थिति पूर्ववत् भी रह सकती थी।[९४६] मूर्छित प्रधान योद्धाओं को कैद कर लिया जाता था।[९४७] जीवित शत्रुओं को पकड़कर बाँध लिया जाता था और अपने डेरे पर लाया जाता था।[९४८] वन्दी राजा को विजयी राजा के सामने नंगी तलवार के पहरे में लाया जाता था।[९४९] वन्दी राजा को कभी-कभी किसी महापुरुष की प्रार्थना पत्र छोड़ा भी जा सकता था एवं उसका सम्मान भी किया जा सकता था।[९५०] वन्दी योद्धाओं को मारा भी जा सकता था।[९५१] दूसरे द्वीपों के राजाओं को जीतकर उन्हें वहीं का अधिकारी भी बना दिया जाता था।[९५२] दिग्विजयी राजा को विजित राजा भेंट ले-लेकर तथा हाथों को जोड़कर तथा उन्हें मस्तक से लगाकर नमस्कार करते थे।[९५३] दिग्विजय बहुत बड़ी वीरता की द्योतक थी।[९५४] 'पराभिभवमात्रेण क्षत्रियाणां कृतार्थता' की भावना को ऊँचा स्थान प्राप्त था।[९५५]

विजयी राजा बड़ी शान से अपनी राजधानी को लौटता था जहाँ उसका परम स्वागत होता था।[९५६] उसका पटह, शंख, झर्झर एवं वन्दीजनों के जयनाद द्वारा अभिनन्दन होता था।[९५७]

आदर्श युद्ध में पीड़ितों की सहायता का उल्लेख इस प्रकार आया है: —

'युद्ध की यह विधि है कि दोनों पक्षों के खेद-खिन्न तथा महाप्यास से पीड़ित मनुष्यों के लिए मधुर तथा शीतल जल दिया जाता है, क्षुधा से दुःखी मनुष्यों के लिए अमृत-तुल्य भोजन दिया जाता है, पसीने से युक्त मनुष्यों के लिए आह्लाद का कारण गोशीर्षचन्दन दिया जाता है, तालवृक्ष आदि से हवा की जाती है। वर्फ के जल के छींटे दिये जाते हैं। इनके अतिरिक्त जो कार्य आवश्यक होता है उसकी पूर्ति भी समीपस्थ लोग तत्परता से करते हैं। युद्ध की यह विधि जिस प्रकार अपने पक्ष के लोगों के लिए है उसी प्रकार दूसरे पक्ष के लोगों के लिए भी। युद्ध में निज और पर का भेद नहीं होता। ऐसा करने से ही कर्त्तव्य की समग्र सिद्धि

---

९४३. वही, ६२।६४-९५
९४४. वही, १२।३५०
९४५. वही, १२।३५४
९४६. वही, १२।३५१
९४७. वही, ६०।११२
९४८. वही, १०।१३०-१३२
९४९. वही, १०।१५८
९५०. वही, १०।१५६-१६१, १३।१-२२
९५१. वही, ६६।६
९५२. वहीं, १०।२०
९५३. वही, १०।२४-२५
९५४. वही, १०।१९
९५५. वही, १०।१४७
९५६. वही, १२।३५७-२७४
९५७. वही, १२।३५५

होती है।[९५८] मूर्छित हो जाने पर वस्त्र के छोर से हवा करने, उसे आत्मीय जनों के द्वारा सुरक्षित स्थान पर ले जाकर चन्दन-मिश्रित शीतल जल से उसकी मूर्च्छा दूर करने तथा घायलों के घाव ठीक करने का भी विधान था।[९५९] युद्धभूमि में घायल सेनानायक की चिकित्सा के लिए विशिष्ट शिविर बनाया जाता था। लक्ष्मण-शक्ति के प्रसंग में सप्तकक्षाट्टसम्पन्न विशिष्ट शिविर का उल्लेख हुआ है जहाँ पर कठोर पहरा लगा हुआ था।[९६०]

पराङ्मुख क्लीवसम शत्रु को मारना वीरता का द्योतक नहीं था।[९६१]

कपोत, शुक, काम्बोज, मंकन आदि म्लेच्छों के आर्य देश पर आक्रमण का भी उल्लेख मिलता है। वे युद्ध करने में बहुत बर्बर थे। वे कारुण्य-विवर्जित होकर बड़े वेग से टिड्डियों के समान आक्रमण करते थे।[९६२] वे आदिदेश में उपद्रव करते थे।[९६३] युयुत्सु म्लेच्छों की वेषभूषा एवं स्वभाव का उल्लेख इस प्रकार हुआ है:--वे चापासिचक्रबहुल, कृतसंघातपंक्ति, रक्तवस्त्रशिरस्त्राण, बर्बरधारी, असिधेनुकर, क्रूर, नानावर्णांगधारी, भिन्नांजनच्छाय, शुष्कपत्रत्विष, कटिसूत्रमणिप्राय, पत्रचीवरधारी, नानाधातुविलिप्तांग, मंजरीकृतशेखर, वराटकाभदशन, विशालपिठरोदर, भीषणायुधपाणि, पीनजंघाभुजस्कन्ध, निर्दय, पशुमांसभक्षी, प्राणिवधोद्यत, सहसारम्भकारी, वराहमहिषव्याघ्रवृककंकारिकेतु,नानायानच्छदच्छत्र होते थे।[९६४] अर्धबर्बरक दुष्ट म्लेच्छों के द्वारा धन, धान्य, गौ, भैंस, एवं रत्नादिपूर्ण नगरी का लुण्ठन, प्रजापीडन एवं धर्मध्वंस का भी संकेत मिलता है।[९६५] युद्ध के समय धन और रत्नादि के साथ स्त्रियों को लूटना नैतिकता की दृष्टि से नहीं देखा जाता था।[९६६]

लंका के उपद्रव के समय यक्षेन्द्रों का सुग्रीव की खुशामद एवं स्वर्ण से अर्घदान प्राप्त कर प्रसन्न होना और उपद्रव करने की अनुमति देना इस बात का द्योतक है कि कुछ राज्याधिकारी इस प्रकार चाटुकारिता एवं उत्कोच के लोभ से विद्रोहियों की सहायता भी कर देते होंगे।[९६७]

समाजव्यवस्था एवं रहन-सहन का भी पद्मपुराण पर्याप्त परिचय देता है पद्मपुराण में चार वर्णों--ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र--का उल्लेख आता

---

९५८. वही, ७५।१-४
९५९. वही, ८।४४७, ४५३, ४४९
९६०. वही, ६३।२८-३९
९६१. वही, २७।८६
९६२. वही, २७।१०-११
९६३. वही, २७।१२-२२
९६४. वही, २७।६७-७३
९६५. वही, २७।१२७-१२८
९६६. वही, १९।७०-९१
९६७. वही, पर्व ७०।

हैं। क्षत्रियों का कार्य क्षतत्राण था, वाणिज्य-कृषि-गोरक्षा आदि करना वैश्यों का कार्य था और नीचकर्म करना शूद्रों का कार्य था।[९६८] जैनी लोग ब्राह्मणों के विरोधी थे, सम्भवतः इसीलिए उनकी निन्दा करते थे। उनके यज्ञादि कर्म जैनमतावलम्बियों के लिए गर्हित थे।[९६९] प्रतीत होता है कि ब्राह्मणों का फिर भी समाज में बोल-बाला था और प्रजा प्रायः उनकी अनुगामिनी थी। इससे जैनियों को बड़ी कुढ़न थी।[९७०] जैन धर्मानुयायियों के अनुसार ये ब्राह्मण पाखण्डी माने जाते थे। उनके लिए ये मदोद्धत, प्राणिहिंसक, महाकषायसंयुक्त, पापक्रियोद्यत, हिंसाभाषणतत्पर वेदसंज्ञक कुग्रन्थ को अकर्तृक बताकर प्रजा को बरगलाने वाले, महारम्भसंसक्त, प्रतिग्रहपरायण, जिनभाषित शासन की निन्दा करने वाले, निर्ग्रन्थमुनि को आगे देखकर क्रोध करने वाले तथा लोक के उपद्रव के लिए विषवृक्षांकुर-से थे।[९७१] ब्राह्मण राजाओं के पुरोहित होते थे।[९७२] हितकर वैश्य की कथा से पुरोहितों के छिप कर अकार्य करने का संकेत भी मिलता है।[९७३] ब्राह्मण चोरी आदि भी कर लेते होंगे। चोर ब्राह्मण को तिरस्कृत कर नगर से बाहर निकाल दिया जाता था। श्रीवर्द्धन ने वह्निशिख द्विज को नियमदत्त के धन की चोरी करने पर खलीकारपूर्वक नगर से निर्वासित किया था। जैनियों की खिल्ली भी खूब उड़ा दी जाती थी। अन्तिक ग्राम से गुजरते हुए चतुर्विध संघ की एक कुम्भकार को छोड़कर सभी ने मज़ाक बनाई थी।[९७४] कुछ ब्राह्मण अत्यन्त क्रोधी और स्वयं को उत्कृष्ट मानने वाले होते थे। वे हाथ में कमण्डलु, सिर पर बड़ी चोटी, लम्बी चौड़ी दाढ़ी और कन्धे पर यज्ञोपवीत धारण करते थे। उनके उंछवृत्ति से जीविकायापन करने की भी चर्चा हुई है।[९७५] क्षत्रिय राजा होते थे तथा सैनिक होते थे। धन कमाने की इच्छा से वणिकों की पोत द्वारा देशान्तर की यात्रा का उल्लेख हुआ है।[९७६] वणिक् नख-श्मश्रु और जटा रखते थे।[९७७] समाज में दासवृत्ति भी विद्यमान थी।[९७८] दासों को जिनमन्दिरों में भी नियुक्त किया जा सकता था।[९७९] सैरिक (हलवाहक) का काम भी ये करते थे।[९८०] म्लेच्छ लोग बैल का

---

९६८. वही, ३।२५६-९५८
९६९. वही, ४।११६-१२०
९७०. वही, ५।२१९-२२०
९७१. वही, ५।२१९
९७२. वही, ५।३९
९७३. वही, ५।३९-४०
९७४. वही, ५।२८६-२८७
९७५. वही, ३५।११-१५
९७६. वही, ५।९६-९९
९७७. वही, ५।१०६
९७८. वही, ५।१२२
९७९. वही, ५।१२३
९८०. वही, ५।१२५।

मांस भी खाते थे।[९८१] म्लेच्छ लोग अत्यन्तवर्बर और दारुणकर्मा होते थे। स्त्रियों पर अत्याचार करने में वे परम पटु थे।[९८२] समाज में अनेक जातियाँ थीं।

विवाह के विषय में, पद्मपुराण हमें बताता है कि विवाह के लिए वर के उत्तम अभिजन, सम्पन्नता एवं सौरूप्य को देखा जाता था।[९८३] वित्तवान् विनयोपेत, कान्त तथा सर्वकलान्वित वर प्रशस्य समझा जाता था।[९८४] यदि स्वयं कन्या ही किसी वर को पसन्द कर लेती थी तो उसके बीच में रोड़ा अटकाना ठीक नहीं समझा जाता था।[९८५] विवाह की वेदी के पास चित्र रचना होती थी। अमरप्रभ के विवाह में विवाह-वेदी के पास अनेक चित्र बनाये गये थे।[९८६] मामा-फूफी के लड़के-लड़कियों में परस्पर विवाह की प्रथा का भी उल्लेख है।[९८७] विवाह में दान-दहेज खूब दिया जाता था।[९८८]

जहाँ तक यौन-नैतिकता का प्रश्न है--समाज में वासना बड़ी प्रचण्ड-सी प्रतीत होती है। सम्भोग करने के लिए नर-नारी अधिक बन्धनों को स्वीकार नहीं करते थे। वेश्या-सेवन, द्यूत और सुरापान समाज में प्रचलित थे।[९८९] स्त्रियों का हरण आम बात थी।[९९०] नैतिक दृष्टि से परपुरुष और परनारी का परिहार ही श्लाघ्य था।[९९१] दूसरे की स्त्री के स्तनों का स्पर्श अत्यन्त खतरनाक समझा जाता था।[९९२] अज्ञात रूप से गर्भ-धारण करने पर स्त्री को परिवार के सदस्य घर में नहीं रखना चाहते थे। ऐसी स्त्री के निर्वासित होने के उदाहरण मिलते हैं।[९९३] अंजना के सास-श्वसुर ने उसे अज्ञात रूप से गर्भवती जानकर घर से बाहर निकाल दिया था।[९९४] इसी से यह भी व्यक्त होता है कि घर में सास-श्वसुर की उपस्थिति में वहू के साथ उसका पति सम्भोग करने के लिए स्वतंत्र नहीं था। वह चोरी से अवसर पाकर उसके साथ सम्भोग कर लेता था और इस सम्भोग को प्रकाशित करने में लज्जा का अनुभव करता होगा। इसी गोपन का यह परिणाम होता था कि वधू को कलंकित मानकर निराकृत कर दिया जाता था। ऐसी विवश वधुएँ पिता के घर की राह लेती थीं किन्तु समाज के भय से अपना कुलाभिमान के कारण उनके पिता भी प्रायः उन्हें दुत्कार देते थे। अंजना को इसी प्रकार दुत्कार दिया गया था। राजघरानों में धार्मिक सन्यासियों के गुप्त

---

९८१. वही, ५।११९
९८२. वही, ७।२९१-३०३
९८३. वही, ६।११
९८४. वही, ६।४१
९८५. वही, ६।७०, ६६।९१-७४
९८६. वही, ६।१६३-११६
९८७. वही, ८।३७३, ६५।३१
९८८. वही, ३८।९-१०
९८९. वही, ५।९०-१०१
९९०. वही, ८७।२७२
९९१. वपी, ५३।१४६-१४७
९९२. वही, ४५।१७
९९३. वही, ४८।४५

यौन-सम्बन्ध के भी उदाहरण मिलते हैं।[९९५] मित्र की पत्नी में आसक्ति के भी उल्लेख हैं।[९९६] एक ही कन्या के एकाधिक प्रेमियों के कलह के भी उदाहरण कम नहीं हैं।[९९७] परपुरुषों से छिप कर मिलना भी प्रचलित था।[९९८] तपोवन की नारियाँ भी कामावेग में आ जाती थीं।[९९९] स्त्रियों के कारण कामुक बड़े से वड़ा साहस कर सकते थे।[१०००] कन्याओं का हरण होता तो खूब था किन्तु माना जाता था यह अपराध ही।[१००१]

समाज में **नारी का स्थान** उदात्त और निकृष्ट दोनों ही प्रकार का मान्य था। कुछ लोग उसे ऊँचा स्थान देते थे और दूसरे उसे नरक का द्वार मानते थे।[१००२]

पद्मपुराण से **धर्म एवं धार्मिक सम्प्रदायों** का भी परिचय मिल जाता है।[१००३] ब्राह्मण, जैन एवं बुद्ध मत पद्मपुराणकालीन प्रधान धर्म थे।[१००४] ब्राह्मण-जैन-विरोध पर्याप्त मात्रा में था।[१००५] ब्राह्मण यज्ञ पर वल देते थे और जैनी उसका विरोध करते थे।[१००६] जनमतानुयायी जिनबिम्बनमस्कार, विविधव्रतों का धारण तथा फाल्गुन शुक्लपक्ष एवं आषाढ़ शुक्लपक्ष में आष्टाह्निक उत्सव आदि का समारोह करते थे।

पद्मपुराण में ये **पौराणिक उल्लेख** आये हैं—हरि का वृषाघात, पिनाकी का दक्ष-वर्ग-ताप, इन्द्र का गोत्र-भेद, भरत की कथा, सगर की कथा आदि।[१००७] इनसे यह सिद्ध होता है कि ये कथाएँ समाज में प्रसिद्ध थीं।

'पद्मपुराण में **जैन पर्वों एवं उत्सवों** का भी उल्लेख हुआ है। आषाढ़ शुक्ल अष्टमी से आष्टाह्निक महापर्व एवं फाल्गुन मास के शुक्लपक्ष की अष्टमी से लेकर पौर्णमासी तक नन्दीश्वर आष्टाह्निक महोत्सव का उल्लेख हुआ है। इन पर्वों को जैन समाज में वड़ी भक्ति से मनाया जाता था।[१००८] इन उत्सवों पर कोई मण्डल वनाने के लिए बड़े आदर से पाँच रंग के चूर्ण पीसता था, कोई माला गूँथता था,

९९५. वही, ४१।७२-७६
९९६. वही, ३९।८८-९४
९९७. वही ३९।१५३-१७४
९९८. वही, ३२।३-१२
९९९. वही, ३३।१५-१७
१०००. वही, ३३।१४८-१४९
१००१. वही, ३०।३५-४५
१००२. वही, ९६।६१-६४
१००३. पद्मपुराण के आदर्श धर्म पर अष्टम अध्याय में विस्तृत विचार किया जा चुका है।
१००४. पद्म०, ५।२८६ २।६४
१००५. दे० प्रस्तुत शोधप्रबन्ध के षष्ठ अध्याय के अन्तर्गत 'विचारतत्त्व'।
१००६. दे० 'पद्मपुराण' का ११ वाँ पर्व तथा ४।८७
१००७. दे० 'पद्मपुराण' २।६१-६४, ५।२६९, ५।१४७-२९५
१००८. वही, २९।१-६, ६८।१-२२

कोई जल को सुगंधित करता था, कोई सींचता था, कोई नाना प्रकार के उत्कृष्ट सुगंधित पदार्थ पीसता था, कोई अत्यन्त सुन्दर वस्त्रों से जिन-मन्दिर के द्वार की शोभा करता था और कोई नाना धातुओं के रस से दीवालों को अलंकृत करता था। जिनेन्द्र-विम्ब का अभिषेक बड़ी धूमधाम से किया जाता था।

समाज में सामिष और निरामिष दोनों प्रकार का **भोजन** प्रचलित था किन्तु निरामिष को जैनी दृष्टिकोण से प्रशस्य माना जाता था। एकपात्र में भोजन करना परम मित्रता का उपलक्षक था।[१००९]

स्त्री-पुरुषों की **वेशभूषा** के भी पर्याप्त संकेत 'पद्मपुराण' में मिलते हैं। उत्तरीय और अधोवस्त्र पुरुषों के प्रधान वस्त्र थे।[१०१०] स्त्रियाँ कंचुकी धारण करती थीं।[१०११] उच्चवर्ग के पुरुष और स्त्री दोनों ही आभूषण धारण करते थे। पुरुषों की वेशभूषा में शुक्लवस्त्र का वड़ा महत्त्व था। रावण ने स्नान करने के अनन्तर शुक्लवस्त्र धारण किये थे। मौलि पर भी वस्त्र बाँधा जाता था।[१०१२] वस्त्रों के अतिरिक्त वक्षःस्थल पर हार, शरीर पर अंगराग का अनुलेपन, कानों में कुण्डल, शिर पर माणिक्य-शकल तथा अन्यान्य अंगों पर अन्यान्य अलंकार धारण किये जाते थे।[१०१३] सामन्त केयूर, प्रवरांशुक, मौलिमालावतंस तथा कटक धारण करते थे।[१०१४] राजकुमारों के कानों को सूची से वींधकर उनमें कुण्डल पहनाये जाते थे।[१०१५] चूड़ा पर मणि धारण की जाती थी।[१०१६] चन्दन से अर्धचन्द्राकार ललाटिका वनायी जाती थी।[१०१७] बाहुमूलों पर केयूर पहनाये जाते थे।[१०१८] स्त्रियों के मस्तक पर नीलोत्पलदाम,[१०१९] भालान्त पर तमालदल,[१०२०] कानों में रत्नकनककुण्डल,[१०२१] शरीर पर सुगंधित चूर्ण,[१०२२] पैरों में नूपुर,[१०२३] कुचों पर हार,[१०२४] धारण किये जाने का उल्लेख है। जल के समान स्वच्छ और पारदर्शक वस्त्रों का भी उल्लेख है।[१०२५]

समाज में **प्रस्थानकालिक मंगलों** के विषय में भी विश्वास था। व्यक्ति के प्रदेश जाते समय कुलवृद्धाएँ उसका मंगलाचार करती थीं।[१०२६] अपने इष्टदेव को

१००९. वही, १९।१४२
१०१०. वही, ४५।६७
१०११. वही, २।३८
१०१२. वही, ७।२६२
१०१३. वही, ७३।४, ४५।६७, ४४।५६
१०१४. वही, २।२-४
१०१५. वही, ३।१८८
१०१६. वही, ३।१८९
१०१७. वही, ३।१९०
१०१८. वही, ३।९०
१०१९. वही, ३।१००
१०२०. वही, ३।१०१
१०२१. वही, ३।१०२
१०२२. वही, ३।१०४
१०२३. वही, ३।११०
१०२४. वही, ३।१०८, ८।१४२-४३
१०२५. वही, ३६।३५
१०२६. वही, १६।७९

प्रणाम करके व्यक्ति परदेश के लिए चलता था।[१०२७] आशीर्वाद देते हुए माता-पिता उसका मस्तक चूमते थे। यियासु व्यक्ति सभी वान्धवों से अनुमति लेता था, बड़ों का अभिवादन करता था, प्रणत लोगों से प्रेम पूर्वक संभाषण करता था।[१०२८] पहले दाहिने पैर को उठाना अच्छा समझा जाता था।[१०२९] जाने वाले व्यक्ति के मंगल के लिए सपल्लवमुख पूर्णकुम्भ सामने रखा जाता था। दक्षिण-भुजा का फड़कना कार्यसिद्धि का द्योतक।[१०३०] पवनंजय के रावण के पास प्रस्थान करते समय इन सभी की चर्चा हुई है।

शकुन-अपशकुनों के विषय में भी समाज में विश्वास था। प्रयाणकालिक शुभ शकुन ये माने जाते थे—निर्धूम अग्नि की ज्वाला का दक्षिणावर्त से प्रज्वलित होना, मयूर का रम्य स्वर से वोलना, अलंकृत नारी का साक्षात्कार, सुगन्ध फैलाने वाली वायु का वहना, निर्ग्रंथ मुनिराज का सामने से आना, छत्र दिखना, घोड़ों की गंभीर हिनहिनाहट, प्रिय घण्टानाद, दधिपूर्ण कलश, वायीं ओर नवीन गोवर को वार-वार विखेरते हुए तथा पंखों को फैलाते हुए कौए का मधुर शब्द करना, भेरी-शंखों का शब्द होना, 'सिद्ध हो,' 'जय हो,' 'समृद्धिमान हो' तथा 'निर्विघ्न प्रस्थान करो'—आदि मंगलशब्दों का होना।[१०३१]

प्रयाणकालिक अपशकुन ये माने जाते थे—सूखे वृक्ष के अग्रभाग पर बैठकर एक पैर संकुचित कर कौए का पंख फड़फड़ाना एवं व्याकुल मन से सूखा काठ चोंच में दवाकर क्रूर शब्द करना,[१०३२] दाहिने हाथ पर रोमांच धारण कर शृगाली का घोर शब्द करना,[१०३३] सूर्यविम्व के परिवेष में कवन्ध का दिखाई देना।[१०३४] पर्वत-कम्पी निर्घातों का पतन,[१०३५] मुक्तकेशी वनिताओं का नभस्तल में दिखाई देना,[१०३६] दाहिनी ओर गधे का मुँह ऊपर उठाकर वोलना तथा पृथ्वी को खुरों से खोदना,[१०३७] महाभयंकर शब्द करते भालुओं का मण्डल वाँधकर दक्षिण दिशा में दिखाई देना[१०३८] पंखों से गाढ़ अंधकार करते एवं विकृत स्वर करते गृद्धों का आकाश में उड़ना,[१०३९] अनेक भौम तथा वैहायस पक्षियों (शकुनों) का क्रन्दन करना,[१०४०] पीछे की ओर क्षुत (छींक) होना,[१०४१] महानाग के द्वारा मार्ग काट दिया जाना,[१०४२] वातूल से

१०२७. वही, १६।९९
१०२८. वही, १६।८०-८१
१०२९. वही, १६।८२
१०३०. वही, १६।८२-८३
१०३१. वही, ५४।४८-५३
१०३२. वही, ७।४३-४४
१०३३. वही, ७।४५
१०३४. वही, ७।४६
१०३५. वही, ७।४७
१०३६. वही, ७।४७
१०३७. वही, ७।४८
१०३८. वही, ७७।६९
१०३९. वही, ५७।७०
१०४०. वही, ५७।७१
१०४१. वही, ७३।१९
१०४२. वही, ७६।१८

प्रेरित होकर छत्र का भग्न हो जाना,[१०४३] उत्तरीय वस्त्र का नीचे गिर जाना,[१०४४] कौए का दक्षिण दिशा में रटना[१०४५] और सामने महाशोकसन्तप्त बाल फकेरें हुए नारी का परिदेवन तथा रुदन करना।[१०४६]

समाज में टोने आदि का भी प्रचलन था। बच्चों के सिर पर रक्षार्थ सरसों के दाने डाले जाते थे, गोरोचना का लेप होता था और व्याघ्रनख का भी उपयोग होता था।[१०४७]

इसके अतिरिक्त सामाजिक रहन-सहन सम्बन्धी ये सूचनाएँ मिलती हैं:—प्रतिज्ञा करने के लिए 'चूडाविमोक्षण' कर दिया जाता था।[१०४८] स्वप्नोंके विषय में विश्वास था। रात्रि के चरम याम में देखे स्वप्न अमोघ माने जाते थे।[१०४९] कन्याएँ गुरुजनों के घर शिक्षा ग्रहण करती थीं और इसी के फलस्वरूप यौनचेतना के जागृत होने से विद्याग्रहण में हानि होती थी।[१०५०] युवावस्था में सर्वसाधनसम्पन्न सुन्दरी स्त्री का तपश्चरण अच्छा नहीं समझा जाता था, जीवन का अन्तिम पक्ष ही इसके लिए उपयुक्त समझा जाता था।[१०५१] सदाचारी तथा सात्त्विक गुरु के प्रभाव से व्यक्ति दीक्षा धारण कर लेते थे। गृहत्याग वैराग्य का प्रमाण था।[१०५२] भाई और बहिन का स्नेह परम श्लाघ्य माना जाता था।[१०५३] समाज के एक कोने में गरीबी भी थी। गरीबी और अमीरी को पाप-पुण्य का प्रभाव कहकर सन्तोष कर लिया जाता था।[१०५४] अतिथि-सत्कार की भावना प्रायः समाज में प्राप्त थी।[१०५५] बहू जेठ-जेठानी के सामने लज्जा करती थी तथा अपने को वस्त्रावृत रखती थी।[१०५६] देवर और भाभी में मज़ाक चलती थी। यह भाई के सामने भी चल सकती थी।[१०५७] यौन अनैतिकता मुनियों में भी सम्भव थी।[५८] धनी लोग निर्धनों की अवज्ञा करते थे।[१०५९] द्वीपान्तर में मरण अच्छा नहीं माना जाता था।[१०६०] अनेक बहिनों का एक वर से विवाह सम्भव था।[१०६१] शुभ अवसरों पर अश्रुपात अपशकुन समझा जाता था।[६२] मिष्टान्न-पक्वान्न उत्तम भोजन थे।[१०६३] भूमि में तलगृह (तहखाने) होते थे जहाँ रत्न और मणिभाण्ड छिपाये जा सकते थे।[१०६४] धन बाह्य प्राण माना जाता

१०४३. वही, ७३।१९
१०४४. वही, ७३।१९
१०४५. वही, ७३।१९, ९७।७५
१०४६. वही, ७९।७६
१०४७. वही, १००।२२-२७
१०४८. वही, ।६।५४७
१०४९. वही, ७।१७९-१९७
१०५०. वही, २६।५-१८
१०५१. वही, २६।२६
१०५२. वही, २६।४२
१०५३. वही, ३०।१३८-१३९
१०५४. वही, ३०।६६-७६
१०५५. वही, ३३।१९९-२००
१०५६. वही, ३६।५५-५६
१०५७. वही, ३९।२३
१०५८. वही, ४१।१३५-१३६
१०५९. वही, ४७।६१
१०६०. वही, ४८।७९
१०६१. वही, ५१।४८-४९
१०६२. वही, ५७।३४
१०६३. वही, ६२।४३
१०६४. वही, ६५।१७-१८

था।[१०६५] पति के मरण पर नारियाँ चूड़ियाँ तोड़ लेती थीं।[१०६६] मुनि किसी भी राजा की उपेक्षा कर सकते थे।[१०६७] समाज में रोग-दुःख फैलने पर व्यक्ति अपने ग्राम नगर को छोड़कर भाग जाते थे।[१०६८] उरोघात, महादाहज्वर, लालापरिस्राव, श्वयथु, स्फोटक, अरुचि, छर्दि और सर्वशूल फैलने वाले रोग थे।[१०६९] भयभीत, ब्राह्मण, मुनि, निहत्थे व्यक्ति, स्त्री, बालक, पशु और दूत अवध्य समझे जाते थे।[१०७०] राजा के अधिकार में बड़े-बड़े सेठ होते थे जो गाँवों और शहरों के मालिक होते थे और मन्दिर आदि का निर्माण कराते थे।[१०७१] मंत्र आदि में विश्वास था, डाकिनी मन्त्रभीत मानी जाती थी।[१०७२] चन्दन-पुष्प-फल आदि सत्कार के साधन थे।[१०७३] प्रसन्नता का समाचार देने वालों का माला-पान-सुगन्ध से समादर होता था।[१०७४] प्रसन्नता के अवसर पर दान दिया जाता था।[१०७५] खाद्य-पदार्थों में लड्डू, मांडे, पूरियाँ, शालि (धान) का भात, दाल, घृत, पुए, घनबन्ध (घेवर), नाना प्रकार के व्यंजन, दूध, दही, अनेक प्रकार के पानक, खाँड के लड्डू और शष्कुली (कचौरी), आदि थे।[१०७६] स्त्रियाँ पुरुष-वेष में भी घूमती थीं।[१०७७] भुजा ऊपर उठाकर छाती पीटना और चिल्लाना हृदय के अत्यन्त दुःख का सूचक था।[१०७८] भूत वायु आदि की बीमारी में भी विश्वास था।[१०७९]

पद्मपुराण में **आर्थिक जीवन और व्यवसाय** के भी संकेत मिलते हैं। धन कमाने की इच्छा से वणिकों की पोतों से जलयात्रा की कई जगह चर्चा आई है।[१०८०] गौओं का व्यापार किया जाता था।[१०८१] कुछ ब्राह्मण गणितशास्त्री (सांख्यिक) होते थे।[१०८२] कुम्भकार मिट्टी के पात्र बनाकर अपनी जीविका चलाते थे।[१०८३] पुस्तकर्म (मिट्टी के खिलौने आदि बनाना) भी एक प्रसिद्ध व्यवसाय था।[१०८४] भस्त्रा-निर्माण करना भी जीविकोपार्जन का साधन था। भस्त्रा (धौंकनी या मशक) गीदड़ आदि की खाल से बनायी जाती थी।[१०८५] व्यापार के लिए सार्थ बाँधकर यात्रा भी की जाती थी।[१०८६] 'अतो यथात्र सूत्रार्थं कश्चित्संचूर्णयेन्मणीन्'

१०६५. वही, ७०।८३
१०६६. वही, ७८।६
१०६७. वही, ७८।६५-६६
१०६८. वही, ८०।१५९
१०६९. वही, ६४।३५
१०७०. वही, ६६।९०
१०७१. वही, ६७।११
१०७२. वही, ७४।५१
१०७३. वही, ८०।८५
१०७४. वही, ८१।१००
१०७५. वही, ८१।१०८-१०९
१०७६. वही, ८७।५, २४।१३-१४
१०७७. वही, पर्व ३४
१०७८. वही, १०९।१२०
१०७९. वही, ११३।२-३
१०८०. वही, ५।९६-९९, ४८।६९, ४८।४४
१०८१. वही, ५।११७
१०८२. वही, ५।११४
१०८३. वही, ५।२८७
१०८४. वही, ७।२८३
१०८५. वही, ४८।४६
१०८६. वही, १४।२२६

से यह भी प्रतीत होता है कि उस समय मणि पीसकर पक्का माँझा तैयार किया जाता था।[१०८७]

'पद्मपुराण' के काल तक भवन, मन्दिर और मूर्तियों के निर्माण की कला पूर्ण उत्कर्ष को प्राप्त हो चुकी थी।

नगरों के वर्णनों में ऊँचे-ऊँचे मकानों का उल्लेख है।[१०८८] भवनों की भित्तियों पर सालभंजिकाएँ (पुतलियाँ) उकेरी ज.ती थीं।[१०८९] राजमहलों के द्वार पर विविध प्रकार के वेल-वूटें (भक्तिकर्म) बने रहते थे।[१०९०] ऊँचे-ऊँचे तोरण होते थे।[१०९१] अनेक कक्ष होते थे। सोपान होते थे।[१०९२] कुछ महलों में स्फटिक और शीशे का वहुत प्रयोग होता था।[१०९३] प्रग्रीवक (वराँडे) और कपोतपालिका भी होती थीं।[१०९४] द्वारपाल भी वने होते थे।[१०९५] नौमंजिले महलों का भी उल्लेख है।[१०९६] नानाकुट्टिमभूभाग, चारुनिर्व्यूहसंगत, सर्वोपकरणान्वित, स्नानादिविधि-सम्पत्तियोग्यनिर्मलभूमि एवं कल्पप्रासादसन्निभ महलों के वर्णन से तत्कालीन महल-निर्माण-कला की उन्नति द्योतित होती है।[१०९७]

जिन-मन्दिरों की पर्याप्त चर्चा है।[१०९८] मन्दिरों के गवाक्षों में मोतियों की झालरें लटकती थीं और उनके खम्भे रत्नजटित एवं स्वर्ण-निर्मित होते थे।[१०९९] मन्दिरों में रत्न जड़े रहते थे, अनेक प्रकार का मणि-भक्ति-कर्म (मणियों के बेल-बूटों का काम) रहता था, हेमपीठ होते थे, मनोहारी तोरणों पर मालाएँ लटकती रहती थीं, भूमियों पर विस्तृत वेदिकाएँ वनी होती थीं, वैदूर्यमणि-निर्मित दीवारों पर सिंह-हाथी आदि के चित्र वने होते थे और संगीत करने वाली स्त्रियों के लिए कुक्षियाँ होती थीं। इनकी ऊँचाई वहुत होती थी तथा इनमें भव्य जिन-प्रतिमाएँ स्थापित रहती थीं।[११००] कुछ मन्दिरों के तीन द्वार होते थे।[११०१] गोपुर, प्राकार, तोरण, वलभियाँ, हर्म्य, शालाएँ तथा परिखाएँ उन्हें सौन्दर्य और सुरक्षा प्रदान

१०८७. वही, १४।२२६
१०८८. वही, ७।३३७
१०८९ वही, १६।८५
१०९०. वही, ३८।८३
१०९१. वही, ३८।८३
१०९२. वही, ७१।२७
१०९३. वही, ७१।२४-३८
१०९४. वही, ६।१२४-१२५
१०९५. वही, ७१।३५
१०९६. वही, १००।३९
१०९७. वही, ११०।६४-६५
१०९८. वही, ७।३३८, २८।८८-९६, ३१।२२४-२३०, ४०।२७-३२, ६७।११-२०, ८०।७-१०, ८०।७०-७५, ११२।२५-४८
१०९९. 'जैन-स्थापत्य में स्तम्भों के निर्माण की विशेपता रही है।'—डा० रामजी उपाध्याय : प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका, पृ० १०६३।
११००. पद्म० २३।१२-१९
११०१. वही, ३१।२२४

करती थीं।[११०२] मन्दिरों पर पताकाएँ फहराती थीं तथा विविध घण्टादि के शब्द होते थे।[११०३] छोटी-छोटी किंकिणियाँ, पट्टलम्बूष (फन्नूस), प्रकीर्णक (चमर), बुद्बुदादर्श (गोल शीशे) आदि मन्दिरों में होते थे।[११०४]

मूर्ति-निर्माण बड़ी उच्च कोटि का था। जिनेन्द्र-प्रतिमाओं के वर्णन से ज्ञात होता है कि धातुओं को मिलाकर पंचवर्ण की मूर्तियाँ बनती थीं।[११०५]

पद्मपुराण में **कलाओं का भी पर्याप्त उल्लेख** मिलता है।[११०६] पद्मपुराण के अनुसार नृत्त के तीन भेद होते हैं--अंगहाराश्रय, अभिनयाश्रय तथा व्यायामिक, फिर इनके और भी प्रभेद होते है। इसका ज्ञान 'नृत्तकला' है।[११०७] संगीत कण्ठ, सिर और उर:स्थल से अभिव्यक्त होता है तथा षड्ज ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद---इस सात स्वरों में विभक्त रहता है। वह द्रुत-मध्य-विलम्बित नामक लयों से सहित होता है, अस्र और चतुरस्र तालकी इन दो योनिमों को धारण करता है एवं स्थायी-संचारी-आरोही-अवरोही-नामक चार वर्णों के कारण चार प्रकार का माना गया हैं।[११०८] संगीत में प्रातिपदिक, तिङन्त, उपसर्ग और निपातों से संस्कार को प्राप्त हुई संस्कृत, प्राकृत और शौरसेनी भाषा प्रयुक्त होती है।[११०९] संगीत की आठ या दस जातियाँ एवं तेरह अलंकार मान्य हैं। आठ जातियाँ ये हैं--धैवती, आर्षभी, षड्ज-षड्जा, उदीच्या, निषादिनी, गान्धारी, षड्जकैकशी और षड्जमध्यमा।[१११०] दश जातियाँ ये हैं---गान्धारोदीच्या, मध्यमपंचमी, गान्धारपंचमी, रक्तगान्धारी, मध्यमा, आन्ध्री, मध्यमोदीच्या, कर्मारवी, नन्दिनी और कैशिकी।[११११] तेरह अलंकार ये हैं--प्रसन्नादि, प्रसन्नान्त, मध्यप्रसाद और प्रसन्नाद्यवसान ये चार स्थायी पद के अलंकार हैं।[१११२] निर्वृत्त, प्रस्थित, बिन्दु, प्रेंखोलित, तार और प्रसन्नमन्द्र--ये छः संचारी पद के अलंकार हैं।[१११३] आरोही पद का प्रसन्नान्त नामक एक ही अलंकार है।[१११४] अवरोही पद के प्रसन्नान्त एवं कुहर नामक दो अलंकार हैं। इन सभी लक्षणों से अन्वित संगीत का ज्ञान 'संगीतकला' कहलाती है।[१११५] वाद्य के इन चार भेदों का उल्लेख है--तन्त्री से उत्पन्न तत, मृदंग से उत्पन्न अनवद्य, वंशी से उत्पन्न सुषिर

११०२. वही, ४०। २७-२९, ११२।४६
११०३. वही, ४०।२९-३९
११०४. वही, १११।४५-४६
११०५. वही, ४०।३२
११०६. वही, २४वाँ पर्व
११०७. वही, २४।६
११०८. वही, २४।६-१०
११०९. वही, २४।११
१११०. वही, २४।१२
११११. वही, २४।१३-१४
१११२. वही, २४।१६
१११३. वही, २४।१७
१११४. वही, २४।१८।
१११५. वही, २४।१९

एवं ताल से उत्पन्न घन। फिर इस वाद्य के अनेक अवान्तर भेद हो सकते हैं।[1116] इसके ज्ञान का नाम ही 'वाद्यकला' है। नृत्त, गीत और वाद्य का एकीकरण नाट्य कहा जाता था जिसमें शृंगार, हास्य, करुण, वीर, अद्भुत, भयानक, रौद्र, वीभत्स और शान्त नामक नौ रस होते थे। नाट्य का ज्ञान 'नाट्यकला' है।[1117]

लिपियों का ज्ञान भी एक कला है। जो लिपि अपने देश में सामान्यतः चलती थी उसे 'अनुवृत्त' कहा गया है, लोग अपने-अपने संकेतानुसार जिसकी कल्पना कर लेते थे उसे 'विकृत' कहा गया है, प्रत्यंग आदि वर्णों में जिसका प्रयोग होता था उसे 'सामयिक' कहा गया है एवं वर्णों के वदले पुष्पादि द्रव्य रखकर जो लिपि का ज्ञान किया जाता था उसे नैमित्तिक' कहा गया है। इस लिपि के प्राच्य, मध्यम, यौधेय और समाद्र आदि देशों की अपेक्षा अनेक अवान्तर भेद स्वीकार किये गये हैं।[1118]

'पद्मपुराण' के अनुसार 'उक्तिकौशल' नामक भी एक कला स्वीकार की गयी है।[1119] इसके स्थान आदि अनेक भेदों का उल्लेख है यथा स्थान, स्वर, संस्कार, विन्यास, काकु, समुदाय, विराम, सामान्याभिहित, समानार्थता, भाषा और जातियाँ।[1120] उरःस्थल, कण्ठ और मूर्द्धा के भेद से 'स्थान' तीन प्रकार का है। 'स्वर' षड्जादि के भेद से सात प्रकार का है। लक्षण और उद्देश अथवा लक्षण और अभिधा की अपेक्षा 'संस्कार' दो प्रकार का है। पदवाक्य और महावाक्य आदि के विभाग सहित कथन 'विन्यास' कहलाता है। 'काकु' के दो भेद हैं—सापेक्ष और निरपेक्ष। गद्य, पद्य, और मिश्र (चम्पू) की अपेक्षा 'समुदाय' तीन प्रकार का है। संक्षिप्तता को 'विराम कहते हैं। एकार्थक शब्दों का प्रयोग 'सामान्याभिहित' कहा गया है। एक शब्द के द्वारा बहुत अर्थ का प्रतिपादन करना 'समानार्थता' है। आर्य, लक्षण और म्लेच्छ के नियम से 'भाषा' तीन प्रकार की कही गयी है। पत्रव्यवहार-रूप लेख तथा व्यक्तवाक्-लोकवाक्-मार्गव्यवहारादि-रूप मातृकाएँ जातियाँ हैं। उक्तिकौशल के इन भेदों के और भी भेद हो सकते हैं।[1121]

चित्र के ज्ञान को 'चित्रकला' कहा गया है। चित्र दो प्रकार का माना गया है—शुष्कचित्र और आर्द्रचित्र। शुष्कचित्र के भी दो भेद हैं—नानाशुष्क और वर्जित। चन्दनादि के द्रव से उत्पन्न होने वाला आर्द्रचित्र नाना प्रकार का है। कृत्रिम और अकृत्रिम रंगों के द्वारा पृथ्वी, जल तथा वस्त्र आदि के ऊपर इसकी

१११६. वही, २४.२०-२१
१११७. वही, २४।२२-२३
१११८. वही, २४।२४-२६
१११९. वही, २४।२७
११२०. वही, २४।२७-२८
११२१. वही, २४।२९-३५

रचना होती है। यह अनेक रंगों के सम्बन्ध से संयुक्त होता है।[११२२]

'पुस्तकर्म' एक दुर्लभ कला है। क्षय, उपचय और संक्रम के भेद से पुस्तकर्म तीन प्रकार का कहा गया है। लकड़ी आदि को छील-छालकर (तक्षण करके) खिलौने आदि बनाना क्षयजन्य पुस्तकर्म है, ऊपर से मिट्टी आदि लगाकर खिलौने आदि बनाना उपचयजन्य पुस्तकर्म है एवं प्रतिबिम्ब अर्थात् साँचे आदि गड़ाकर खिलौने आदि बनाना संक्रमजन्य पुस्तकर्म है।[१०२३] यह पुस्तकर्म यन्त्र, निर्यन्त्र, सच्छिद्र तथा निश्छिद्र आदि भेदों वाला है अर्थात् कोई खिलौना यन्त्रचालित होता है तो कोई बिना यंत्र के ही एवं कोई छिद्रसहित होता है तो कोई छिद्ररहित।[१०२४] दशरथ का पुतला समुद्रहृदय मन्त्री ने बनवाया था। इसे 'लेप्यं वपुः' कहा गया है।[१०२५] इसके भीतर लाक्षादि का रस भर कर रुधिर की रचना हुई थी और स्वाभाविक शरीर जैसी कोमलता भी इसमें उत्पादित की गयी थी।[१०२६] इसे 'लेप्यकार' ने बनाया था।[१०२७]

'पत्रच्छेद्य' की कला भी महत्त्वपूर्ण कही गयी है। 'पद्मपुराण' के अनुसार उसके तीन भेद हैं—बुष्किम, छिन्न और अच्छिन्न। सुई अथवा दन्त आदि के द्वारा जो बनाया जाता है उसे 'बुष्किम' कहते हैं। जो कर्तरी (कैंची) से काटकर बनाया जाता है तथा जो अन्य अवयवों के सम्बन्ध से युक्त होता है उसे 'छिन्न' कहते हैं। जो कैंची आदि से काट कर बनाया जाता है तथा अन्य अवयवों के सम्बन्ध से रहित होता है उसे 'अच्छिन्न' कहते हैं। यह पत्रच्छेद्यक्रिया पत्र, वस्त्र तथा सुवर्णादि के ऊपर की जाती है तथा स्थिर और चंचल दोनों प्रकार की

११२२. वही, २४।३६-३७। ११२३. वही, २४।३८-३९। ११२४ वही, २४।४०। ११२५. वही, २४।४१। ११२६. वही २४।४२।

११२७. रविषेण के समकालीन बाण के 'हर्षचरित' में भी पुस्तकर्म का उल्लेख आया है—पुस्तकर्मणां पार्थिवविग्रहाः। 'बाण की मित्रमण्डली में कुमारदत्त पुस्तकर्म में उस्ताद था। पुस्त का शब्दार्थ लेप्य था और ज्ञात होता है कि पुस्तकृत् ही लेप्यकार भी कहा जाता था, जैसा राज्यश्री के विवाह के अवसर पर मिट्टी की मछली, कछुए, मगर, फल, वृक्ष आदि बनाने के लिये 'लेप्यकार' बुलाये गये थे (लेप्यकारकदम्बक्रियमाणमृण्मयमीनकूर्ममकरनारिकेल-कदलीपूगवृक्षकम्)। गुप्त-युग में मृण्मय कला के द्वारा ही सौंदर्य की अनुभूति समाज के सभी स्तरों में इतनी व्यापक बनाई जा सकी थी। मिट्टी के खिलौने घर-घर में भर गये थे और फूल-पत्तों की सजवाली ईंटों से ही भीतों की चुनाई होने लगी थी। गुप्त-युग की यह सामग्री इतनी अधिक मिली है कि उसे मृण्मय प्रतिमाओं का युग ही कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। अतएव पुस्तक-व्यापार (पुस्त एव पुस्तक व्यापारकर्म) या पुस्तककार्य संभ्रान्त कुलपुत्रों की शिक्षा का आवश्यक अंग समझा जाता हो इसमें कोई आश्चर्य नहीं।' डा० वासुदेवशरण अग्रवाल कादम्बरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ८६।

होती है।[११२८]

आर्द्र, शुष्क, तदुन्मुक्त और मिश्र के भेद से 'माल्यनिर्माण' की कला चार प्रकार की कही गयी है। इनमें से गीले अर्थात् ताजे पुष्पादि से जो माला बनायी जाती है उसे आर्द्र कहते हैं, सूखे पत्रादि से जो बनाई जाती है उसे शुष्क कहते हैं। चावलों के सिक्थक (सीथ अथवा जवा) आदि से जो बनायी जाती है उसे 'तदुज्झित' कहते हैं और जो उक्त तीनों चीजों के मेल से बनायी जाती है उसे 'मिश्र' कहते हैं।[११२९] यह माल्यकर्म रणप्रबोधन, व्यूहसंयोग आदि भेदों से सहित होता है।[११३०]

पद्मपुराण के अनुसार योनिद्रव्य, अधिष्ठान, रस, वीर्य, कल्पना, परिकर्म, गुणदोषविज्ञान तथा कौशल--ये गन्धयोजना अर्थात् 'सुगन्धितपदार्थ-निर्माण-कला' के अंग हैं। जिनसे सुगन्धित पदार्थों का निर्माण होता है, ऐसे तगर आदि 'योनिद्रव्य' हैं। जो धूपवत्ती आदि का आश्रय है उसे 'अधिष्ठान' कहते हैं। कषाय, मधुर, तिक्त, कटु, अम्ल,--पाँच प्रकार का 'रस' कहा गया है जिसका सुगन्धित द्रव्य में विशेषतः निश्चय करना पड़ता है। पदार्थों की जो शीतता अथवा उष्णता है वह दो प्रकार का 'वीर्य' है। अनुकूल तथा प्रतिकूल पदार्थों का मिलाना कल्पना है। तैल आदि पदार्थों का शोधना तथा धोना आदि 'परिकर्म' कहलाता है। गुण अथवा दोष को जान लेना 'गुणदोष-विज्ञान' है। परकीय तथा स्वकीय वस्तु की विशिष्टता जानना कौशल है। इस गन्धयोजना की कला के स्वतन्त्र और अनुगत भेद होते हैं।[११३१]

स्वादिष्ट पदार्थ तैयार करने की कला का नाम 'आस्वाद्यविज्ञान' है। इसमें भक्ष्य, भोज्य, पेय, लेह्य और चूष्य--इन भोजन सम्बन्धी पदार्थों के निर्माण का ज्ञान आता है। इनमें से जो स्वाद के लिए खाया जाता है उसे 'भक्ष्य' कहते हैं, इसके कृत्रिम तथा अनुकृत्रिम दो भेद हैं। जो क्षुधा की निर्वृति के लिए खाया जाता है उसे 'भोज्य' कहते हैं. इसके भी दो भेद हैं --मुख्य और साधक। ओदन-रोटी आदि मुख्य भोज्य हैं और यवागू (लपसी) दाल-शाक अदि साधक भोज्य हैं। 'पेय' के तीन भेद हैं--शीतयोग (शर्बत), जल और मद्य। 'लेह्य' के भी तीन भेद हैं--राग, खाण्डव और लेह्य। 'चूष्य' के दो भेद हैं--कृत्रिम और अकृत्रिम। इन सब का ज्ञानस्वरूप 'आस्वाद्यविज्ञान' पाचन, छेदन, उष्णत्वकरण तथा शीतत्व-

---

११२८. बाण ने संभवतः 'पत्रभंग' शब्द का इसी अर्थ में प्रयोग किया है यथा--पत्रभंग-मकरिका', पत्रभंगपुत्रिका, उत्किरता पत्रभंगान् आदि। डा० अग्रवाल ने पत्रभंग का अर्थ 'पत्रलता का अलंकरण' किया है।--वही, पृष्ठ ३९१।

११२९. पद्म०, २४।४४-४५। ११३०. वही, २४।४६। ११३१. वही, २४।४७-५२।

करणदि भेदों से युक्त है ।[११३२]

वज्र (हीरा), मौक्तिक, वैडूर्य, सुवर्ण, रजतायुध तथा वस्त्र-शंख आदि रत्नों का सलक्षण ज्ञान भी एक कला है ।[११३३]

'पद्मपुराण' के अनुसार वस्त्र पर धागे से कढ़ाई का काम करना (तन्तु-सन्तानयोग) तथा वस्त्र को अनेक रंगों में रँगना (बहुवर्णक-रागावान) भी एक कला है ।[११३४] इनके अतिरिक्त और भी अनेक कलाएँ उल्लखित हैं, यथा—लोहा, दन्त, लाख, क्षार, पत्थर तथा सूत आदि से बनने वाले नाना उपकरणों का बनाना ।[११३५] मेय-देश-तुला-काल-मान का ज्ञान भी एक कला है। 'प्रस्थ आदि' जिस के अनेक भेद हैं उसे मेय कहते हैं, वितस्ति आदि देशमान हैं, पल आदि तुलामान हैं और समय (घड़ी, घण्टा) आदि कालमान हैं। यह मान, आरोह, परीणाह, तिर्यग्गौरव और क्रिया से उत्पन्न होता है ।[११३६] मूर्तिकर्म अर्थात् बेल-बूटा खींचना,[११३७] निधिज्ञान अर्थात् गड़े हुए धन का ज्ञान होना,[११३८] रूपज्ञान,[११३९] वणिग्विधि अर्थात् व्यापारकला,[११४०] जीव-विज्ञान,[११४१], मनुष्य-हाथी-गो-अश्व आदि की चिकित्सा का निदानादि के साथ ज्ञान,[११४२] मायाकृत, पीड़ा या इन्द्रजालकृत एवं मन्त्रौषधादिकृत विमोहन का ज्ञान,[११४३] सांख्य आदि मतों का, उनमें वर्णित चारित्र तथा नाना प्रकार के पदार्थों के साथ ज्ञान[११४४] आदि ।

११३२. वही, २४।५३-५६ ११३३. वही, २४।५७
११३४. वही, २४।५८ ११३५. वही, २४।५९
११३६. वही, २४।६०-६२ ११३७. वही, २४।६३
११३८. वही, २४।६३ ११३९. वही, २४।६३
११४०. वही, २४।६५ ११४१. वही, २४।६३
११४२. वही, २४।६४ ११४३. वही, २४।६५
११४४. वही, २४।६६

"समयं च समीक्ष्यादि पाखण्डपरिकल्पितम् । चारित्रेण पदार्थैश्च विवेद विविधैर्युतम् ॥" कहकर रविषेण ने केकया की जैनमत के अतिरिक्त ब्राह्मण दर्शनों एवं मतों की पारगामिता द्योतित की है। सातवीं शताब्दी की यह प्रवृत्ति थी कि अपने दर्शन से अतिरिक्त दर्शनों का भी अध्ययन किया जाता था। बाण ने भी 'हर्षचरित' में 'शमितसमस्तशाखान्तरसंशीति' और 'उद्घाटितसमग्रग्रन्थार्थग्रन्थय:' शब्दों से इस प्रवृत्ति का परिचय दिया है। इस विषय पर डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का वक्तव्य अवलोकनीय है—'बाण ने तत्कालीन ज्ञान साधन की दो विशेषताओं की ओर भी यहाँ इशारा किया है। अपने दर्शन के अतिरिक्त अन्य दर्शनों में भी जो शंकाएँ उठाई जाती थीं उनका समाधान भी वे (बाण की बिरादरी के ब्राह्मण) जानते थे : शमितसमस्तशाखान्तरसंशीति । गुप्तकाल से बाण के समय तक के युग में बौद्ध, ब्राह्मण तथा जैन दार्शनिक अनेक दृष्टिकोणों से तत्त्वचिन्तन करते रहते थे। उस समय के दार्शनिक मन्थन की यह शैली थी कि वे विद्वान् एक-दूसरे से उद्भावित नयी-नयी युक्तियों और कोटियों से अपने

'पद्मपुराण' के अनुसार चेष्टा, उपकरण, वाणी तथा कला-व्यत्यसन भेद से क्रीडा चार प्रकार की है। शरीर से उत्पन्न होने वाली क्रीडा 'चेष्टा' है, कन्दुक आदि की क्रीडा 'उपकरण' है, नाना प्रकार के सुभाषित कहना 'वाणी-क्रीडा' है और जुआ (दुरोदर) आदि खेलना 'कलाव्यत्यसन' है।[११४५]

'पद्मपुराण' में 'लोक का ज्ञान' भी कला के रूप में स्वीकृत है। आश्रित और आश्रय भेद से लोक दो प्रकार है। जीव और अजीव तो आश्रित हैं और पृथ्वी आदि उनके आश्रय हैं। इसी लोक में जीव की नाना पयार्यों में उत्पत्ति हुई है और इसी में उसकी नश्वरता है—यह सब जानना लोकज्ञता है। इस लोकज्ञता का प्राप्त होना अत्यन्त कठिन है। पूर्वापर पर्वत, पृथ्वी द्वीप, देश आदि भेदों में यह लोक स्वभाव से ही अवस्थित है।[११४६]

'संवाहन-कला' दो प्रकार की है—कर्मसंश्रया और शय्योपचारिका। त्वचा, मांस, अस्थि और मन—इन चार को सुख पहुँचाने के कारण कर्मसंश्रया के चा भेद हैं अर्थात् किसी संवाहन से केवल त्वचा को सुख मिलता है, किसी से त्वचा और मांस को, किसी से त्वचा, मांस और हड्डी को एवं किसी से त्वचा, मांस, हड्डियों और मन को। इसके अतिरिक्त इस कला के संस्पृष्ट गृहीत, भुक्तित, चलित, आहत, भंगित, विद्ध. पीडित और भिन्न पीडित—ये भेद भी हैं। फिर

आपको परिचित रखते और अपने ग्रन्थों में उनका विचार और समाधान करते थे। प्रमुख आचार्य अन्य मतों में प्रवृद्ध रुचि रखते थे, उपेक्षा का भाव न था। इस प्रकार की जागरूकता के वातावरण में ही वसुबन्धु, धर्मकीर्ति, सिद्धसेन दिवाकर, उद्योतकर, कुमारिल और शंकर जैसे अनेक प्रचण्ड मस्तिष्कों ने एक-दूसरे से टकरा-टकराकर दार्शनिक क्षेत्र में अभूतपूर्व तेज उत्पन्न किया। इस पृष्ठभूमि में बाण का 'शमितसमस्तशाखान्तरसंशीति' विशेषण साभिप्राय है और ज्ञान-साधन की तत्कालीन प्रवृत्ति का परिचय देता है। इस प्रसंग में दूसरी बात यह कही गयी है कि वे विद्वान् समग्र ग्रन्थों में जो अर्थ की ग्रन्थियाँ थी, उनको उद्घाटित करते थे: 'उद्घाटित-समग्रग्रन्थार्थग्रन्थयः।' इसमें भी तत्कालीन विद्यासाधन की झलक है। समग्र ग्रन्थों से तात्पर्य भिन्न-भिन्न दर्शनों, जैसे—न्यायवैशेषिक, सांख्ययोग, वेदान्त, मीमांसा, पाशुपत-बौद्ध, आर्हत आदि के ग्रन्थों से है। उस समय के पठन-पाठन में ऐसी प्रथा थी कि लोग केवल अपने ही दार्शनिक ग्रन्थों के अध्ययन से सन्तुष्ट न रहकर दूसरे सम्प्रदायों के ग्रन्थों का भी अध्ययन करते थे और उसमें जो अर्थ की कठिनाइयाँ थी, उन्हें स्पष्ट करते थे। इसी प्रणाली के कारण नालन्दा के बौद्ध विश्वविद्यालय में वेद-शास्त्र आदि ब्राह्मणों के ग्रन्थों का पठन-पाठन भी खूब चलता था जैसा कि ह्यु आन-चुआंग् ने लिखा है। अध्ययन, अध्यापन और ग्रन्थ-प्रणयन, दोनों क्षेत्रों में ही सकल शास्त्रों में रुचि उस युग के विद्वानों की विशेषता थी। स्वयं बाण ने दिवाकरमित्र के आश्रम का वर्णन करते हुए इस प्रवृत्ति का आँखों देखा सच्चा चित्र खींचा है।'

—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, 'हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन', पृ० २५।२६।

११४५. पद्म०, २४।६७-६९ ११४६. वही, २४।७०-७२

इसके मृदु, मध्य और प्रकृष्ट के भेद से तीन भेद और भी होते हैं। जिस संवाहन से केवल त्वचा को सुख होता है वह मृदु अथवा सुकुमार कहा जाता है। जो त्वचा और मांस को सुख पहुँचाता है वह मध्यम कहा जाता है एवं जो त्वचा, मांस तथा हड्डी को सुख देता है वह प्रकृष्ट कहलाता है। संवाहन के साथ जब कोमल संगीत भी होता है तब वह मनः सुख-संवाहन कहलाता है। इस संवाहन कला के ये दोष होते हैं—शरीर के रोगों का उल्टा उद्वर्तन करना, जिस स्थान में मांस नहीं है वहाँ अधिक दबाना, केशाकर्षण, भ्रष्टप्राप्त, अमार्गप्रयात, अतिभुग्नक, अदेशाहत, अत्यर्थ और अवसुप्त प्रतीचक। जो इन दोषों से निर्मुक्त है,योग्यदेश में प्रयुक्त है और अभिप्राय को जानकर किया गया है, ऐसा संवाहन अत्यन्त शोभास्पद होता है। जो संवाहन-क्रिया अनेक कारण अर्थात् आसनों से की जाती है वह चित्त को सुख देने वाली शय्योपचारिका नाम की क्रिया जाननी चाहिए। यह संवाहन-कला अंग-प्रत्यगों से सम्बन्ध रखने वाली है।[११४७]

इसके अतिरिक्त शरीर-वेष-संस्कार-कौशल, स्नान करना, सिर के बाल गूँथना तथा उन्हें सुगंधित करना भी कलाओं में परिगणित है।[११४८]

यन्त्र—विज्ञान के भी पद्मपुराण में संकेत मिलते हैं। एक स्थान पर किले में लगे ऐसे यन्त्रोंका वर्णन है जो कि गगनांगण में विहार करते विमानस्थ प्राणियों को खींच लेते थे।[११४९] यदि आजकल के लोग इसे कोरी कल्पना ही समझें तो भी कम से कम इतना तो मानना चाहिए कि राडार और एण्टी एयरक्राफट गनों जैसे यन्त्रों की कल्पना उस युग में हो चुकी थी। विमानों का पर्याप्त उल्लेख हुआ है।[१०५०] युद्ध के समय महाघोर यन्त्रों के प्रसारण की भी चर्चा हुई है।[११५१] यन्त्र नगर की रक्षा के साधन समझे जाते थे।[११५२] वैज्ञानिक यन्त्रों के सहारे बहुत बड़ी सेना को रोका जा सकता था।[११५३] जलयन्त्रों से पानी छोड़ा और रोका जा सकता था।

'पद्मपुराण' में भौगोलिक उल्लेख भी पर्याप्त मात्रा में हुए हैं। नदियों, पर्वतों नगरों, ग्रामों, राष्ट्रों, द्वीपों तथा वन आदि के अनेक वर्णन और संकेत 'पद्मपुराण' में आये हैं। यद्यपि नगर आदि के बहुत से नाम रविषेण के कल्पना—वैभव का ही प्रदर्शन करते हैं तथापि बहुतसे नगर आदि के नाम वास्तविक भी हैं। यहाँ हम इनकी

११४७. वही, २४।७३-८१
११४८. वही, २४।८२
११४९. वही, ६।५४१
११५०. वही, ४७।७८ आदि
११५१. वही, ४६।२१५, २३०
११५२. वही, ४८।२४५
११५३. वही, ५२।२-५

एक सूची प्रस्तुत कर रहे हैं[११५४]——

नदी-समुद्र : कर्णकुण्डल (५३), कर्णरवा (४०, ४१), क्रौंचरवा (४३), गंगा (२, ४६ १०१), नर्मदा (१०, ३१), पुण्यभागा (८९), यमुना (५५), रेवा (३५), लवणसमुद्र (८२), वैतरणी (८), शर्वरी (२२), हंसावली (१३),।

पर्वत : अष्टापद (८), अंजनगिरि (३७), उदय (३), कुशाग्र (१), कैलास (१, ६, २०, ८४), किष्कु (६), किष्किन्धागिरि (६, ८८), कर्ण (६), कलिन्द (२७), गन्धमादन (१३), गिरिनार (२०), जलवीचि (१९), त्रिकूट (५, ६, ४३), सुमेरु (३३), दक्षिण श्रेणी (८), दन्ती (१५), दण्डक (४२), दुर्गगिरि (८५), धरणीमौलि (६), नारद (११), नन्दी (२७), निकुंज (२७), नगोत्तर, बलाहक (८, ३०), भूत (१), मधु, (१, ६), मेरु (४, २६, ३१) मानुषोत्तर (६), मेघरव (८), मणिकान्त (९), महेन्द्र (१५), मलयाचल (८), मन्दर (८२), रथावर्त (१३), रामगिरि (४०), विपुल (१, २७), विजयार्द्ध (१, ६, २७), विन्ध्य (१०), वंशधर (३९, ४०), वंशगिरि (४०), वंशस्थविल (६१), सुमेरु (१, ३, ६, ७२, ११२), सन्ध्यावर्त (८), सम्मेद (८, ९, २०), संस्थली (८), संध्याभ्र (१८), श्रीशैल (४९), हिमालय (२, १०२),

वन : चारणप्रिय (४६) जनानन्द (४६), तिलक (९१), दण्डक (४०, ४२, ५६), देवारण्य (४६), नन्दन (६, २३), निकुंज (१०९), निर्जल (१८), निवोध (४६), प्रमद (६, ४६), परियात्रा (३२), पाण्डुक (९, ११२), पृथ्वी कर्णतटाटवी (६), प्रकीर्णक (४६), भद्रशालिवन (६), भीमवन (८), मन्दारुण (८), मन्दारण्य (३१), महावन (१७, ४१), महेन्द्रोदय वन (८५), मेखला (८), विन्ध्याटवी (३४), श्वापद (६३, ६४), सौमनसवन (६, ४२), सुखसेव्य (४६), समुच्चय (४६), सहस्राभ (१०९)।

नगर, ग्राम, राष्ट्र, देश, द्वीप और राज्यों के नाम[११५५] : अरुण (१), अमल (६), असुर (७), अलका (५८), अम्बष्ठ (३८), अंग (३८), अर्धवर्वर (२७), अलक्षपुर (२०), अश्वपुर (५५), अमृतपुर (५५), अक्षपुर (७७), अपराजित (२०), अम्भोद (५), अयोध्या (३, २०, २१, २२, २५, ३७ आदि), अलंकारपुर (६, ७, १९, ४५ आदि), असुरसंगीत (८), अलंकारोदय (८, ९,

---

११५४. कोष्ठक में पर्वसंख्या है। कोष्ठांकित संख्या के अतिरिक्त भी उपर्युक्त नामों का उल्लेख हुआ है।

११५५. इस सूची में पद्मपुराण में समागत स्वर्गों के नाम भी आ गये हैं जो पद्मपुराण का पौराणिक अध्ययन करने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

४३), अरिंजयपुर (१३), अरिष्टपुर (२०, २९), अन्तिक (५), अर्धस्वर्गोत्कट (६), अतिशाखमृगद्वीप (६), आवर्त (५, ६), आवली (५), आदित्यपुर (६, १५), आलोक (११, ८५), आरण (२०), आनत (२०), आन्ध्र (१०१), ईशावती (२०), उत्तरकुरु (३, १०८), उत्कट (५), ऊर्ध्वग्रैवेयक (२०), उज्जयिनी (३३), उशीनर (१०१), ऐरावृत्त (३), कर्णकुण्डल (६, १९, ४१, ११२), कनकाभ (६), कनकपुर (१५), कमलसंकुल (२२), कम्वर (४१), कलिंग (३७, १०१), कंपनपुर (५५), कक्ष (१०१), कांचन (५, ६, ११०), कान्त (६), काम्पिल्यनगर (८), कापिष्ठ (२०), काकन्दी (२०, १०८), कालंजर (५९), काश्मीर (१०१), काल (१०१), काशीपुर (१०८), किन्नरगीत (५, १९), किष्किन्धापुर (१, ४, ५, १९, ४७), किष्कुपुर (६, ७, १९, ४६), किन्नर (७), किंकुनगर (८), किष्कुप्रमोद (९), किन्नरगीतपुर (५५), कुमुदावली (५), कुम्भपुर (८), कुशाग्रनगर (२०, २१, ९८), कुण्डपुर (२०, २८), कुरुक्षेत्र (३१), कुसुमपुर (४८), कुशस्थल (५९). कूर्म्मपुर (४८), केलीकिल (५५), केरल (१०१), कौवेर (१०१), कोसल (१०१), कौतुकमंगल (७, २४), कौशाम्वी (२०, २१ ३४, ७८), कौमुदी (३९), क्रौंचपुर (४८), क्षेम (६, १०६), क्षेमा (२०), क्षेमांजलिपुर (३८), गन्धर्वगीत (५), गवीधुपद (२८), गन्धवती (४१), गगनतिलक (५५), गगनवल्लभपुर (५५), गजपुर (६३), गन्धर्वगीतपुर (५५), गान्वारी (३१), गान्धार (९४), ग्रैवेयक (२०), गोपुर (३३), गोशील (१०१), घोष (२१), चक्रवाल (५), चक्रपुर (२०, २६, ५५, ९४), चन्द्रपुर (५, ६), चम्पानगरी (८, २०, ९८), चन्द्रादित्य (८५), चारु (१०१), छत्राकारपुर (२०), ज्योतिपुर (१०, ९४), ज्योतिप्रभ (८), ज्योतिर्दण्डपुर (५५), जम्बूद्वीप (५, १७, ४३), जलधिध्वान (६), जाम्बूनद (४८), तट (५), ताम्रचूड़पुर (१३२), तिलकपुर (९४), तोम (५), तोयावली (६), त्रिपुर (२, ५५), त्रिजट (१०१), त्रिशिर (१०१), दरी (१०१), दधिमुख (५१, ५५), दशांगपुर (३३), दशारण्यपुर (३३), दर्भस्थल (२२), दारु (३०) द्वारिका (१०९), द्वापुरी (२०), दुर्ग्रह (५), दुर्लंघ्यपुर (१२), देवकुरु (३, ५३, १२३), देवोपगीत (४८, ८८), देवगीतपुर (६६), धन्यपुर (२०), नन्दन (३७), नभस्तिलक (६), नन्दीश्वर द्वीप (६), नन्द्यावर्तपुर (३७), नभोभानु (६), नाग (८५), नागपुर (२०), नित्यालोक (९), नैपाल (१०१), नैषिक (५५), नृत्यगीतपुर (५५), पद्मक (५), पद्मिनी (३९), पराजयपुर (५५), परिक्षोदरपुर (५५), पंचसंगम (७),

पाण्डुक (१२), पांचाल (३७), पुण्डरीक (१६, ६३), पुष्पोत्तर (२०), पुण्डरीकिणी (२०, २३), पुष्पान्तक (१, ७), पुष्कलावती (५, ३७), पृथुस्थान (४८), पृथ्वीपुर (५, २०), पोदनपुर (४, २०, २६, ८६), पौण्ड्र (३७), प्रतिष्ठपुर (६३, ६४), प्राणत (५, २०), प्रीतिकूर्मपुर (६), वंग (३७, १०१), वहुरव (६४), वहुनादपुर (५५), भरत (३, ७), भद्रिका (२०, ६८), भीरु (१०१), भूतरव (१८), मथुरा (१, २०, ८६), मगध (२, २८, ३७, ४३), मनोह्लाद (५, ६), मनोहर (५, ३०, ५५), मन्दरकुंज (६), मन्दर (१७), महेन्द्रनगर (१७), महापुरी (२०), महाशुक्र (२०), महाशैलपुर (५५), महेन्द्रोदय (६६), मलय (६४), मलयानन्दपुर (५५), महाविदेह (१३), मध्यमलोक (२८), मध्यमग्रैवेयक (२०), मयूरमाल (२७), माहिष्मती (६, २२), माहेन्द्र (२०), मालव (१०१), मार्तण्डाभपुर (५५), मिथिला (२०, २१, २३, २८, ३७), मुनिभद्र (३७), मृगांकनगर (१७), मृत्तिकावती (४८), मृणालकुण्डल (१०६), मेघपुर (६, ७), मेखल (१०१), यवन (१०१), यक्षपुर (७, ६४), यक्षगीत (७), यक्षस्थान (३६), योध (५), योधन (६), रम्यक (३), रजोवली (५), रथनूपुर (१, ६, ७, १६, २८, ८८, ६४), रत्नपुर (६, १३, ५५, ६३), रत्नद्वीप (५, ६, ५५), रत्नसंचय (५, १३), रत्नस्थलपुर (१२३), रन्ध्रपुर (२८), रामपुरी (१), राजगृह (२, २०, २५, ८६) राजपुर (११), राक्षस द्वीप (४३), रिपुंजयपुर (५५), रोधन (६), लंका (५, ६, ७, १०, २०, ४३), लक्ष्मीगीतपुर (५५), लान्तक (२०), वत्सनगरी (२०), वर्बर (१०१), वसंततिलक (३६), वज्र-पंजर (६), वाह्लिक (१०१), वाराणसी (२०, ४१, ६८), विजय (२०), विजयनगर (३७), विजयावती (१२३), विदेह (३, ५, २३), विघट (५, ६), विश्रवस (७), विशाखापद (१३), विनीता (२०, ८५), विदग्ध (२६, ३०), विशालपुर (५५), वीतशोकज्ञ (२०), वेणुतट (४८), वेलन्धर (५४), वेध (१०१), वैजयन्त (२०), वैजयन्तपुर (३६), वंशस्थपुर (४०), वंशस्थश्रुति (३६), वंशस्थविलपुर (४०), शकट (५), शतार (५), शर्वर (१०१), शक (१०१), शतद्वार (१२), शशिपुर (३१), शशिस्थानपुर (५५), शतमन्यु (१२३), शशांक (८५), शशिच्छाय (६४), शाल्मली (१०८), शिवमन्दिरपुर (५५), शूरसेन (१०१), शोभापुर (५५), स्फुटतट (६), स्वयंप्रभ (७, ८), सर (६), समुद्र (५), सन्ध्या (५५), सन्ध्याकार सहस्रार (२०), सनत्कुमार (२०), सर्वारिपुर (३०), सर्वार्थसिद्धि (२०), साकेत (२०, ८३), साधुभद्र (३७), सांकाश्यपुर (२८), सिन्धुनद (८),

सिंहपुर (२०, ३१, ५५, ६४), सिद्धार्थ (३६), सद्‌ऋतु (५), सुवेल (५, ६), सुसीमा (२०), सुमाद्रिका (२०), सुमहानगर (२०), सुरपुर (२८), सुभद्र (३७), सुवीर (३७), सूर्योदय (८, ५५), सूर्यपुर (२०), सूर्याभपुर (५५) सुखपुर (५५), सौधर्म (२०), हरि (३, ५, ६), हरिक्षेम (१२३), हरिपुर (२०, २१, ५६), हनुरुह द्वीप (१, १७), हस्तिनापुर(४, २०, २१, ३१, ८६), हिडिम्ब (१०१), हैहय(५५), हेमपुर (६, १५, ५६), हैमवत (३) हिरण्यवृत (३), हंसद्वीप (५, ६), श्रावस्ती (६, २०, ६२), श्रीगृह (६४), श्रीगुप्तपुर (५५), श्रीपुर (४६, ८८), श्रीमन्तपुर (५५), श्रीमनोहरपुर (५५), श्रीविजयपुर (६४), श्रेयस्कर (६४)।

इन नगर-जनपद-ग्राम राष्ट्रों में बहुतों का अस्तित्व इतिहास-सिद्ध है—यथा——माहिष्मती, मथुरा आदि।[११५६]

११५६. उपर्युक्त नदियों, पर्वतों और नगरादि के परिचय के लिए देखें——बलदेव उपाध्याय : 'पुराण-विमर्श' और डा० राजबली पाण्डेय : पुराण-विषयानुक्रमणी, प्रथम भाग।

दशम अध्याय

पद्मपुराण का जैन-रामकाव्य-परम्परा में स्थान

जैन रामकथा-परम्परा की चर्चा पहले की जा चुकी है। उसमें जैनाचार्य रविषेण के 'पद्मचरित' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। साहित्यिक सौंदर्य, धर्मप्रचार, दार्शनिक पृष्ठभूमि एवं सांस्कृतिक परिचय आदि सभी दृष्टियों से इसे महनीय ग्रन्थ माना जा सकता है। यह एक सफल पौराणिक-चरित-महाकाव्य है।

पद्मपुराण को देखकर इसके रचयिता के अगाध-पाण्डित्य, उर्वर मस्तिष्क और मर्मस्पर्शी चिन्तन के प्रति बरवस आश्चर्यान्वित हो जाना पड़ता है। भाषा पर कवि का अद्भुत अधिकार है। वेगवती धारा की भाँति अजस्र गति से वह पाठक को अपने साथ बहाए ले चलती है। उसमें पौराणिक आख्यान-रूपी आवर्त हैं, वक्रोक्ति-रूपी तरंग हैं, दीर्घसमास-रूपी नक्र हैं और सबसे बढ़कर हैं भावरूपी चटुल शफरों का नर्तन। शब्द और अर्थ की इतनी सुन्दर योजना भाग्यशाली कवियों की कृतियों में मी सम्भव है।

भाषा के साथ उसको गति देने वाला छन्दोविधान भी कम रमणीय नहीं है। विविध छन्दों को कवि ने चुना है और सफलता पूर्वक उनका प्रयोग किया है।

अलंकारों के प्रयोग में तो कवि सिद्ध-हस्त ही हैं। श्लेष, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक समासोक्ति, विरोधाभास आदि अलंकार 'अपृथग्यत्ननिर्वर्त्य,' रूप में इस महनीय कृति में विराजमान हैं। 'अयोनि' और 'अन्यच्छायायोनि' उत्प्रेक्षाएँ, सांग-रूपक और उपमाएँ शताधिक संख्या में सहृदयों का मन मोह लेती हैं। भाव यह है कि कलापक्ष के अन्तर्गत आने वाले सभी तत्त्वों का पूर्ण पारिपाक इस कृति में दिखलाई देता है।

पद्मपुराण की रस-भाव-योजना भी बड़ी हृद्य है। अंगी होते हुए भी शान्त-रस शृंगार, वीर, रौद्र तथा अन्य रसों से पुष्ट होता हुआ सहृदयों के हृदयों को आवर्जित करता है। सम्वादों की गतिशीलता, प्रत्युत्पन्नमतिता, मार्मिकता, विषयसम्बद्धता, सुरुचिपूर्णता आदि विशेषताएँ इस ग्रन्थ को और भी रोचक बना देती हैं। प्रकृति-वर्णन बड़ी मनोरमता के साथ इस ग्रन्थ में हुआ है। यों प्रकृति का

वर्णन उदीपन रूप में ही अधिक है परन्तु जहाँ कहीं कवि ने तल्लीन होकर वर्णन किया है वहाँ उसका आलम्बन रूप भी बड़ी मनोहरता से व्यक्त हुआ है।

पद्मपुराण के कवि की वर्णना-शक्ति बड़ी अद्भुत है। अप्रतिहत गति से उसकी प्रतिभा सभी वर्णनीय विषयों को वास्तविक रूप में प्रकाशित करती चली गयी है। एक बात को अनेक ढंग से कहने का जितना बड़ा कौशल इस कवि को प्राप्त है उतना बहुत कम कवियों में देखने को मिलता है। ढाई सौ से अधिक वर्णन पद्मपुराण के सौन्दर्य को और भी कलान्वित किये हुए हैं।

पद्मपुराण का जैन धर्म के तत्त्वों के निरूपण एवं जैनधर्म के प्रचार के दृष्टि-कोण से भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। दिगम्बर जैन सम्प्रदाय का यह धर्मग्रंथ है। भगवत्कुन्दकुन्द, उमास्वाति यतिवृषभ आदि जितने भी रविषेण के पूर्ववर्ती आचार्य हुए हैं उन सभी के ग्रन्थों का उपयोग करते हुए कृति ने जैनधर्म के सिद्धान्तों को विविध प्रसंगों में प्रस्तुत किया है।

पद्मपुराण में जैन-धर्म का दार्शनिक पक्ष भी उजागर हुआ है। इस ग्रन्थ की दार्शनिक पृष्ठभूमि पर एक स्वतन्त्र ग्रन्थ अपेक्षित है। एकादश पर्व के शास्त्रार्थ को समझने के लिए समग्र जैन-दर्शन का मनन अपेक्षित हो जाता है।

पद्मपुराण में हमें बौद्धिक दृष्टिकोण सर्वत्र दिखाई पड़ता है। सभी असंभव या अतिमानुष घटनाओं की बौद्धिक व्याख्या इसमें प्रस्तुत की गयी है। रावण के कण्ठहार में उसके मुख का प्रतिबिम्ब पड़ने से उसका दशाननत्व, लांगूल नामक हनूमान् का शस्त्र होना एवं राक्षस-वानरों का राक्षस एवं बन्दर न होकर विद्या-धरवंशी राजा होना आदि कवि के तर्कसंगत व्याख्या-दृष्टिकोण का परिचय प्रस्तुत करते हैं।

पद्मपुराण का तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से भी बहुत महत्त्व है। जैन एवं जैनेतर ग्रन्थों के सिद्धान्तों के प्रतिपादन में कवि ने किस प्रकार अन्यान्य ग्रन्थ-कारों को अपनी भाषा में प्रस्तुत किया है यह तुलना का एक रोचक एवं महत्त्व-पूर्ण विषय है।[११५७]

सुभाषितों और सूक्तियों का तो यह पुराण मानो भण्डार ही है। कवि का ज्ञान कितना व्यापक था, उसका अनुभव कितना विशाल था और उस अनुभव को अभिव्यक्त करने का उसका सामर्थ्य कितना अलोकसामान्य था यह योग्य है। परिशिष्ट (अ) में हम रविषेण की सूक्तियों की एक सूची देंगे।

'पद्मपुराण' का सर्वाधिक महत्त्व उसकीसांस्कृतिक पृष्ठभूमि में सन्निहित है।

११५७. देखिए प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय मे 'रविषेण का लोकशास्त्र काव्या-द्य वेक्षण।'

तत्कालीन समाज, रीति-नीति, आचार-विचार, परम्पराओं और दृष्टिकोण को समझने के लिए यह पुराण जिस विपुल सांस्कृतिक अध्ययन की सामग्री को प्रस्तुत करता है वह इसकी महत्त्वपूर्ण देन है। इस सामग्री काउपयोग करने की आवश्यकता है। जिस प्रकार बाण की कादम्वरी और हर्षचरित सांस्कृतिक अध्ययन की दृष्टि से अत्ययन की दृष्टि से अध्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं उसी प्रकार रविषेण का 'पद्मपुराण' भी।

'पद्मपुराण' के अन्धकारपक्ष को भी प्रकाशित कर देना अनुचित न होगा। जहाँ धार्मिक उपदेशों एवं साम्प्रदायिक प्रचार की अति हो गयी है वहाँ सहृदय ऊवने लगता है। ऐसे स्थलों को साहित्यिक दृष्टि से अच्छा नहीं कहा जा सकता। अस्तु।

संक्षेप में पद्मपुराण का जैन-रामकथा-साहित्य में वही स्थान है जो ब्राह्मण-संस्कृत-साहित्य में वाल्मीकि-रामायण का और हिन्दी-वैंष्णव-रामकथा-साहित्य में तुलसीकृत 'रामचरित मानस' क

एकादश अध्याय

पद्मपुराण और रामचरितमानस

आचार्य रविषेणकृत पद्मपुराण या पद्मचरित और गोस्वामी तुलसीदासकृत रामचरितमानस **'महाकाव्य के पौराणिक चरितकाव्य'** भेद के उदाहरण हैं। पद्मपुराण और उसके कर्त्ता के विषय में विगत दस अध्यायों में लिखा जा चुका है। प्रस्तुत अध्याय में तुलसी के रामचरितमानस के साथ पद्मपुराण की विविध दृष्टियों से तुलना करने का प्रयत्न होगा। तुलसीदास के वैयक्तिक परिचय—जिसमें उनकी जन्म तिथि, जन्मस्थान, माता-पिता, जाति-पाँति, बाल्यकाल, गुरु, वैवाहिक जीवन तथा वैराग्य और देह-त्याग आदि का विवेचन हो—हमारी दृष्टि से प्रस्तुत तुलना में अनपेक्षित हैं। तुलसी की रचनाओं का परिचयात्मक विवरण देना भी सुधी पाठकों का उपहास करना है। नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज रिपोर्ट (१९०३, १९०४, १९०६, १९०७, १९०८, १९०९, १९१०, १९-११, १९१७, १९१८, १९२०, १९२१ तथा १९२२) तथा कुछ और प्रमाणों से तुलसी की अनेक रचनाओं का उल्लेख मिलने पर भी उनके प्रमाणिक ग्रन्थ १२ ही माने जाते हैं जिनका नामग्राह इस प्रकार किया जा सकता है–(क) **प्रारम्भिक रचनाएँ** (सं० १६१६-२५) १. रामललानहछू, २. रामाज्ञा प्रश्न, (ख) **मध्य-कालीन रचनाएँ** (सं० १६२६-१६४५) ३. जानकीमंगल, ४. रामचरितमानस, ५. पार्वतीमंगल, (ग) **उत्तरकालीन रचनाएँ** (सं० १६४६-६०) ६. गीतावली, ७. विनयपत्रिका, ८. कृष्णगीतावली (घ) **अन्तिम और अपूर्ण रचनाएँ** (१६६१-८०) ९. बरवै, १०. सतसई दोहावली, ११. कवितावली एवं १२. बाहुक। इन सभी रचनाओं में **'रामचरितमानस'** बहुचर्चित एवं महत्त्वपूर्ण है जो तुलसी की काव्य-प्रतिभा और लोकनायकता का चिरस्थायी कीर्तिस्तम्भ हैं।

तुलसीदास के पूर्व संस्कृत तथा अन्य भारतीय भाषाओं में पर्याप्त राम-साहित्य लिखा जा चुका था। वाल्मीकि ने जिस राम-कथा का प्रणयन किया था उसमें कुछ परिवर्तन-परिवर्धन करके अनेक कवियों ने संस्कृत तथा अन्य भाषाओं

में काव्य, नाटक, चम्पू तथा गद्यकाव्य आदि की रचना की। इन रचनाओं का परिचय डा० कामिल बुल्के ने अपने शोध ग्रन्थ 'रामकथा' में दिया है। इसके अतिरिक्त बौद्धों और जैनों ने भी रामकथा-सम्बन्धी कृतियाँ भारतीय साहित्य को समर्पित की हैं। जैन-रामकाव्य-परम्परा का परिचय प्रस्तुत ग्रन्थ के द्वितीय अध्याय में दे दिया गया है।[1158] बौद्धों ने ईस्वी सन् के कई शताब्दियों पूर्व राम को **बोधिसत्त्व** मानकर **'दशरथ जातकम्'**, **'अनामकं जातकम्'**, तथा **'दशरथकथानकम्'** आदि की रचना की। किन्तु तुलसी पर बौद्ध एवं जैन रामकाव्य-परम्परा का प्रभाव नहीं के बराबर पड़ा। वाल्मीकि की परम्परा ने ही उन्हें प्रधानतया प्रभावित किया है। इस परम्परा में कालिदास कृत **रघुवंश** प्रवरसेन द्वारा महाराष्ट्री प्राकृत में लिखित **'रावणवह'** अथवा **''सेतुबन्ध'**, भट्टि द्वारा रचित **'रावणवध'** अथवा **'भट्टिकाव्य'**, कुमारदासकृत **'जानकीहरण'** अभिनन्द कृत **'रामचरित'**, क्षेमेन्द्रकृत **'रामायणमंजरी'** साकल्यमल्ल द्वारा रचित **'उदारराघव'** आदि **महाकाव्य**, भासकृत **'प्रतिमानाटक'** और **'अभिषेकनाटक'**, भवभूतिकृत **'महावीरचरित'** और **'उत्तररामचरित'**, दिङ्नागकृत **'कुन्दमाला'**, मुरारिकृत **'अनर्घराघव'**, राजशेखरकृत **'बालरामायण'**, मधुसूदन अथवा दामोदर मिश्र से सम्बद्ध **'महानाटक'**, मायुराजकृत **'उदात्तराघव'**, शक्तिभद्र कृत **'आश्चर्यचूड़ामणि'**, जयदेवकृत **'प्रसन्नराघव'**, हस्तिमल्लकृत **'मैथिली-कल्याण'**, सोमेश्वरकृत **'उल्लास राघव'**, सुभट्टकृत **'दूतांगद'**, एवं भास्करभट्टरचित **'उन्मत्तराघव'** आदि **नाटक**, सन्ध्याकरनन्दिकृत **'रामचरित'**, धनंजयकृत **'राघव पाण्डवीय'**, माधवभट्टकृत **'राघवपाण्डवीय'** तथा हरदत्त सूरिकृत **'राघवनैषधीय'** आदि **श्लेषकाव्य**, सूर्यदेवकृत **'रामकृष्णविलोमकाव्य'** एवं इसके अनन्तर रचे गये दो **'यादवराघवीय'** आदि **विलोमकाव्य**, कृष्णमोहनकृत **'रामलीलामृत'**, तथा वेंकटेशकृत **'चित्रबन्धरामायण'** आदि **चित्रकाव्य**, वेंकटेश कृत **'हंससन्देश'** अथवा **'हंसदूत'**, रुद्रवाचस्पतिकृत **'भ्रमरदूत'**, वासुदेवकृत **'भ्रमरसन्देश'**, आदि **दूतकाव्य** तथा गीतगोविन्द के अनुकरण पर रचित **'गीतराघव'**, **'जानकीगीता'** एवं **'संगीत-रघुनन्दन'** आदि **शृंगारिक खण्डकाव्य** एवं इनके अतिरिक्त और अनेक रचनाएँ आती हैं जो साहित्यिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कही जा सकती हैं। द्रविड़ भाषाओं में भी तुलसी से पूर्व रामकथा सम्बन्धी काव्य रचे जा चुके थे जिनमें कम्बनकृत **'तमिलरामायण'**, (तमिल) **'रंगनाथरामायण'**, **'भास्कररामायण'**, (तेलुगु), **'रामचरित'** (मलयालम), आदि प्रमुख हैं। आधु-

११५८. देखिये प्रस्तुत ग्रन्थ, पृ० ५३-५८।

निक आर्य भाषाओं में भी तुलसी से पूर्व कुछ राम काव्यों की रचना हो चुकी थी जिनमें कृत्तिवास की **'रामायण'**, (बंगला) माधवकन्दलीकृत **वाल्मीकि रामायण का पद्यानुवाद** (असमिया) एवं भालण का **'सीतास्वयंवर'** अथवा **'राम-विवाह'**, एकनाथ कृत **'भावार्थरामायण'**, (मराठी) आदि महत्त्वपूर्ण हैं। विदेशों में भी तुलसी से पूर्व राम-कथा से सम्वद्ध कुछ कृतियाँ रची जा चुकी थीं।

भाव यह है कि आदिकवि वाल्मीकि की रामायण का प्रभाव न केवल संस्कृत की रचनाओं पर अपितु संस्कृतेतर भारतीय भाषाओं की रचनाओं पर भी पड़ा एवं अनेक ग्रन्थ-रत्नों की रचना होती रही जो तुलसी से पूर्व भी हुई एवं तुलसी के वाद भी। तुलसी के वाद के हिन्दी रामकाव्य का परिचय देना हमारे लिए प्रासंगिक नहीं है। हिन्दी में तुलसी से पूर्व रामकाव्य अधिक समृद्ध नहीं है। चन्दवरदाई कृत **'पृथ्वीराजरासो'** के दूसरे **'समय'** में दशावतार-कथा के अन्तर्गत रामकथा विषयक लगभग सौ छन्द, सम्वत् १३४२ में भूपति द्वारा लिखित **'रामचरितरामायण'**, सम्वत् १३७५ के लगभग स्वामी रामानन्द द्वारा रचित **'रामार्चनपद्धति'**, सम्वत् १५३५ में उत्पन्न सूरदास द्वारा रचित **'सूरसागर'** के नवम स्कन्ध में आये रामकथा-विषयक लगभग १५० पद आदि इस हिन्दी रामसाहित्य के अन्तर्गत आते हैं।

तुलसी ने यथासम्भव उपलब्ध राम-साहित्य का अध्ययन-मनन करके उसमें अपनी प्रतिभा का योगदान करते हुए रामचरितमानस की रचना की। रामचरितमानस की दशाधिक प्राचीन प्रतियों की चर्चा लेखकों ने की है।

इन प्राचीन प्रतियों में लिखावट भेट और पाठभेद वरावर मिलते हैं। गोस्वामी जी ने अपनी मृत्यु से ४९ वर्ष पूर्व 'मानस' की रचना कर डाली थी। सम्भव है कि उन्होंने अपने जीवनकाल में ही इस ग्रन्थ में कुछ परिवर्तन या संशोधन किये हों। यद्यपि इस सम्वन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता फिर भी मानस की ऐसी प्रतियाँ भी उपलब्ध हैं जिनके विषय में हमें मौलिकता का विश्वास करना चाहिए। उन प्रतियों में नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा सम्पादित प्रति, रामदास गौड़ द्वारा सम्पादित प्रति, पं० विजयानन्द त्रिपाठी और डा० माताप्रसाद गुप्त द्वारा सम्पादित प्रतियाँ अधिक विश्वसनीय कही जा सकती हैं। गीता प्रेस, गोरखपुर ने भी मानस की लाखों प्रतियाँ मुद्रित की हैं। हमने गीता प्रेस के पाठ को ही अध्ययन का आधार बनाया है।

इससे पूर्व कि रविषेण और तुलसी के काल की परिस्थितियों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाय और 'पद्मपुराण' और 'रामचरितमानस' विषयवस्तु, पात्र तथा चरित्र-चित्रण, भावसम्पदा, कला-कौशल, धर्म और संस्कृति की दृष्टि से

तुलनात्मक समीक्षा प्रस्तुत की जाय, रामचरितमानस का संक्षिप्त परिचय देना प्रासंगिक समझा जा रहा है।

रामचरितमानस : संक्षिप्त विवेचन

रामकाव्य-परम्परा में तुलसी के रामचरितमानस का स्थान अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण है। 'मानस' की गम्भीरता के अनुसार ही गोस्वामी जी ने ग्रन्थ के प्रारम्भ में उसकी विशद भूमिका बाँधी है। इस रचना के उपक्रम में सती-मोह है और उप-संहार में गरुड़-मोह है। पार्वती और गरुड़ की शंकाओं का समाधान ही एक प्रकार से इस ग्रन्थ का प्रतिपाद्य है। शिव और काकभुशुण्डि—दोनों ही क्रमशः पार्वती और गरुड़ के समक्ष नरावतार में राम की ब्रह्मता का प्रतिपादन करते हैं और दोनों ही ज्ञान के आचार्य होकर भी भक्ति का प्रतिपादन करते हैं।

कथा कहने से पूर्व कवि ने अनेक प्रकार की वन्दनाओं का क्रम बाँधा है। वाणी-विनायक, भवानी-शंकर, कवीश्वर-कपीश्वर और सीता-राम की वन्दना के बाद गणेश, विष्णु, शिव और गुरु की वन्दना है। फिर ब्राह्मणों, वैष्णवों तथा खलों की भी वन्दना की है। इसके पश्चात् देव, दनुज, नर, नाग, खग, प्रेत, पितर, गन्धर्व, किन्नर और रजनीचरों की वन्दना है। साथ ही ८४ लाख योनियों के जीवों की भी वन्दना की है। इस विस्तृत वन्दना का कारण बताते हुए कवि कहता है—'निज बुधि बल भरोस मोहिं नाहीं। तातें विनय करहुँ सब पाहीं॥'[११५९] इसी प्रसंग में कवि ने राम-चरित का विशदता और अपनी बुद्धि की क्षुद्रता की ओर भी संकेत किया है। फिर रामकाव्य के कवियों को प्रणाम किया है। साथ ही वाल्मीकि, देव, ब्रह्मा, विबुध विप्र, बुध, ग्रह, शारदा, सुरसरिता, महेश-भवानी, अवधपुरी के नर-नारी, कौशल्या, दशरथ, परिजनसहित विदेह, राम-भरत, लक्ष्मण-शत्रुघ्न, हनुमान् जी तथा बन्दर-समाज आदि सभी को प्रणाम किया है। फिर राम-नाम की महिमा का वर्णन है।

राम-कथा के अनेक वक्ता-श्रोताओं में गोस्वामी जी ने अपने पूर्व के तीन वक्ता-श्रोताओं का उल्लेख किया है—शिव-पार्वती, काकभुशुण्डि-गरुड़, याज्ञवल्क्य-भरद्वाज। ये ही वक्ता-श्रोता पूर्व में रहे हैं। चौथे वक्ता गोस्वामी जी स्वयं हैं और श्रोता सन्त लोग। रामावतार के प्रसंग के लिए ही उन्होंने जय-विजय कथा तथा नारद-शाप की कथा प्रस्तुत की है। प्रतापभानु-प्रसंग भी रामावतार का एक हेतु ही है। दानवों के अत्याचार और देवों की उत्पत्ति के साथ ही कवि राम

११५९. मानस, बालकाण्ड

जन्म पर आ जाता है।

मानस का कथासार : 'रामचरितमानस' में वर्णित **रामकथा का अत्यन्त संक्षिप्त सार** इस प्रकार है—"अयोध्यापति महाराज दशरथ की तीन रानियाँ थीं किन्तु किसी भी रानी से कोई सन्तान न थी। वृद्धावस्था में कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी-रानियों से राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न नामक चार पुत्र हुए। राम ज्येष्ठ पुत्र थे। उनका विवाह विदेहराज जनक की पुत्री सीता से हुआ था। कुछ समय पश्चात् राजा दशरथ ने अयोध्या के राजसिंहासन पर राम को अभिषिक्त करना चाहा परन्तु ठीक समय पर कैकेयी ने वरदान माँगकर विघ्न कर दिया। राम वन को चले गये। सीता और लक्ष्मण भी उनके साथ ही अयोध्या छोड़कर चल पड़े। कैकेयी राम के स्थान पर भरत का अभिषेक करना चाहती थी परन्तु भरत ने ही यह बात स्वीकार नहीं की। कुछ समय बाद राम द्वारा समझाये जाने पर भरत ने राज्य-कार्य सँभाल लिया। दुर्भाग्यवश लंका का राजा रावण वन से सीता को चुराकर ले गया। राम-लक्ष्मण उसकी खोज करने निकले। इसी बीच सुग्रीव और हनुमान आदि से उनका परिचय हुआ। इन्हीं की सहायता लेकर राम ने लंका पर चढ़ाई कर दी। अन्त में राम ने राक्षसों का संहार करके सीता को प्राप्त किया। अन्त में अयोध्या लौटकर राम सिंहासन पर अभिषेक हुए और प्रजा की रक्षा करते हुए शासन कार्य करने लगे।

सात सोपान . कवि ने उपर्युक्त कथा को **सात सोपानों** द्वारा प्रस्तुत किया हैं। मानस-रूपक का वर्णन करते हुए कवि ने **'सप्त प्रबंध सुभग सोपाना'** कहा है। **'आदिरामायण'** में **'सोपान'** न होकर **'काण्ड'** ही हैं। सम्भव है प्रारम्भ में ये 'काण्ड' भी न रहे हों एवं बाद में राम के अयन (पर्यटन) के स्थानों को आधार मानकर इनकी कल्पना की गयी हो। पहले तो स्थानपरक ये पाँच ही 'काण्ड' बने—अयोध्या-काण्ड, अरण्य-काण्ड, किष्किन्धाकाण्ड और लंकाकाण्ड। बाद में सम्पूर्ण चरित को ही काण्डान्तर्गत विभक्त करने के हेतु 'बालकाण्ड' नामक दो काण्ड और जोड़ दिये गये। आजकल तो ये सात काण्ड सर्वमान्य बन गये हैं। नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा सम्पादित रामचरितमानस में प्रथम दो सोपानों का कोई नाम नहीं लिखा गया हैं; तृतीय सोपान का नाम **'विमल-वैराग्य-सम्पादन'**, चतुर्थ का **'विशुद्ध-संतोष-सम्पादन'**, पाँचवें का **'ज्ञान-सम्पादन'**, छठे का **'विमल-विज्ञान-सम्पादन'** और सातवें का **'अविरल-हरिभक्ति-सम्पादन'** नाम लिखा गया है। श्री रामदास गौड़ द्वारा सम्पादित प्रति में प्रथम सोपान को **विमल-संतोष-सम्पादन'** और द्वितीय को **'विमल-विज्ञान-वैराग्य-सम्पादन'** नाम दिये गये हैं। इन्हीं सात सोपानों में कवि ने रामकथा का सम्पूर्ण रूप प्रस्तुत किया है। इन

सोपानों में आध्यात्मिक दृष्टि से कथाक्रम के साथ भगवान् राम के चरणों तक पहुँचने का एक क्रम भी वरावर चलता दिखाई देता है।

कथारोहण: प्रथम सोपान में, कवि ने विविध विनतियों के बाद याज्ञवक्य-भरद्वाज-संवाद से राम-जन्म की ओर संकेत कराया है। रावण के जन्म के साथ ही उसके लंकाधिपति होने का वर्णन किया है। यथासमय राज कुमारों के नाम-करण, चूड़ाकरण, उपनयन और विद्यारंभ आदि संस्कारों का वर्णन किया है। फिर विश्वामित्र आगमन, ताड़का-वध, धनुष-यज्ञ और चारों भाइयों के विवाह का वर्णन किया है। अन्त में उनके अयोध्या लौटकर आनन्दपूर्वक रहने के वर्णन के साथ ही प्रथम सोपान की समाप्ति होती है।

द्वितीय सोपान का आरंभ राम के राज्याभिषेक की धूमधाम से होता है। कैकेयी के वर माँगने पर राम के राज्याभिषेक में विघ्न होता है। राम वनगमन अत्यन्त मार्मिक रूप से चित्रित किया गया है। इसके पश्चात् भरत का ननिहाल से आगमन होता है। वे सिंहासन को अस्वीकृत कर राम से चित्रकूट में मिलने जाते हैं। राम वापिस आने को तैयार नहीं होते। तब भरत नन्दिग्राम में राम के एक प्रतिनिधि के रूप में राजकार्य का संचालन करते हैं तथा अपना मन राम के चरणों में अर्पित किये रहते हैं।

तृतीय सोपान में—राम शरभंग के आश्रम में जाते हैं। विराध का वध होता है। ऋषि-अस्थियों को देखकर राम 'निसिचर हीन करौं महि'—आदि प्रतिज्ञा करते हैं। पर्णकुटी-निर्माण, जटायु-मिलन, शूर्पनखा की आसक्ति, एवं विरूपी-करण, खरदूषण-वध, रावण द्वारा राम से विरोध का निश्चय, सीताहरण, मारीच-वध, जटायु-संस्कार आदि इसी सोपान के अन्तर्गत आते हैं। राम के पम्पा सरोवर पहुँचने पर वह सोपान समाप्त हो जाता है।

चतुर्थ सोपान में, पम्पा सरोवर से राम ऋष्यमूक पर्वत पर पहुँच जाते हैं। हनुमान के माध्यम से सुग्रीव से उनकी मित्रता होती है। वालि-सुग्रीव का युद्ध, वालि-वध, सुग्रीव का राज्याभिषेक, प्रवर्षणगिरि पर वर्षाकाल में निवास, शरदा-गम पर हनुमान आदि द्वारा सीतान्वेषण-प्रस्थान, सम्पाति द्वारा सीता के लंका में होने की सूचना आदि वर्णनों के साथ आगे बढ़ता हुआ यह सोपान जाम्बवान् द्वारा प्रेरणा प्राप्त करके लंका जाने को प्रस्तुत हनुमान को जाम्ववान के परामर्श के साथ समाप्त हो जाता है।

पंचम सोपान में, हनुमान सुरसा का आशी: प्राप्त करते और सिन्धुवासिनी निशिचरी (सिंहिका) का वध करते हुए लंका में प्रविष्ट होते हैं। उनकी विभीषण से भेंट होती हैं। उसी की बतायी हुई युक्ति से उन्हें सीता का दर्शन होता है।

हनुमान द्वारा वृक्ष पर बैठकर रावण की धमकियाँ देखना, त्रिजटा द्वारा सीता का आश्वासन, हनुमान द्वारा मुद्रिका गिराना, राम का सन्देश देना, वन उजाड़ना, अक्षकुमार का वध करना, बन्दी होना, रावण द्वारा पूँछ में आग लगवा देना, हनुमान द्वारा लंका-दहन एवंसीता की चूड़ामणि लेकर राम को सन्देश देना, राम की लंका पर चढ़ाई, विभीषण-राम-मिलन, राम द्वारा विभीषण को 'लंकेश' कह-कर उसका अभिषेक करना, समुद्र द्वारा मार्ग-दान आदि विस्तृत एवं मार्मिक प्रसंगों के वर्णन के साथ यह सोपान समाप्त हो जाता है।

षष्ठ सोपान में, राम सेतु से अपनी सेना उस पार लंका में उतार देते हैं। रावण को क्षणिक भय होता है। मन्दोदरी और प्रहस्त आदि उसे समझाते हैं। राम सुवेल-शिखर पर शिविर लगा देते हैं। रावण के छत्र और मन्दोदरी के ताटंकों को वे अपने बाण से वहीं बैठे-बैठे गिरा देते हैं। फिर अंगद का दौत्य, रावण-अपमान, राम-रावण-सेनाओं में युद्ध, लक्ष्मण-मूर्च्छा, सुषेण वैद्य द्वारा उपचार, कुम्भकर्ण-वध, मेघनाद-वध, रावण-वध, सीता-मिलन, अमृत-वर्षा और मृत वानर-भालुओं का जीवित होना, विभीषण का राज-तिलक होना, पुष्पक विमान द्वारा राम-लक्ष्मण और सीता का अयोध्या लौटना, हनुमान के द्वारा भरत को उनके आगमन की सूचना आदि के साथ यह सोपान समाप्त हो जाता है।

सप्तम और अन्तिम सोपान में, अयोध्या की जनता राम-लक्ष्मण और सीता आदि का स्वागत करती है। राम का राज्याभिषेक होता है। कुछ दिनों के पश्चात् राम अन्य सेवकों को विदा करके हनुमान को अपने पास रहने देते हैं। फिर राम-राज्य का वर्णन है। इसके पश्चात् कवि ने शिव के द्वारा पार्वती को, काक भुशुण्डि और गरुड़ का प्रसंग कहलाया है। इसी प्रसंग में कलि-धर्म-निरूपण, ज्ञान भक्ति का अन्तर और समन्वय एवं बाद में सभी संवादों का उपसंहार है। गरुड़ ने काक-भुशुण्डि को और पार्वती ने शिव को अपने राम-सम्बन्धी सन्देहनाश की सूचना दी है। फिर कवि के मानसिक विश्राम का उल्लेख है। अन्त में कवि ने राम से अज्ञान-शान्ति की प्रार्थना की है और संस्कृत के दो श्लोकों में रामचरितमानस में भक्तिपूर्वक अवगाहन करने का फल बताया है। इस प्रकार रामचरित की पूर्ति पर सप्तम सोपान समाप्त हो जाता है।

मानस का आधार : रामकथा का आधार लेकर केवल भारत में ही नहीं, अपितु विश्व-भर में विपुल साहित्य की सृष्टि हुई है, परन्तु सम्पूर्ण राम-साहित्य में गोस्वामी तुलसीदास के 'रामचरितमानस' का स्थान सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। इस ग्रंथ में वर्णित विषय के प्रधान रूप से दो ही ग्रन्थ आधार माने जाते हैं:—'वाल्मीकिरामायण' और 'अध्यात्मरामायण'। कवि ने ग्रन्थारम्भ में ही अपने

ग्रंथ के आधार की सूचना निम्नलिखित श्लोक के द्वारा दे दी है:—

"नानापुराणनिगमागमसम्मतं य—
द्रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।
स्वांतः सुखाय तुलसी रघुनाथगाथा—
भाषानिवन्धमतिमंजुलमातनोति।।"[१२६०]

यहाँ 'क्वचिदन्यतोऽपि' ध्यान देने योग्य है। नाना-पुराण, निगम, आगम, रामायण आदि तो इसके आधार हैं हीं, साथ ही कुछ और भी—अनेक काव्यादि-इसके आधार रूप में अवस्थित हैं। 'मानस' के कुछ प्रकरणों को सामने रखकर यह आधार देखा जा सकता है, यथा :—

'शिव ने अपने मानस में रामकथा को रचकर रख छोड़ा और समय पाकर पार्वती को सुनाया—यह कथा **'महारामायण'** और **'रामायणमाला'**, के समान हैं। शील निधि राजा के यहाँ स्वयम्वर की कथा **'रामायणचम्पू'** के समान, नारद-मोह-वर्णन **'शिवमहापुराण'** के सृष्टि-खण्ड (अध्याय ३-४) के समान, रावण-कुम्भकर्ण-अवतार' **'भागवतमहापुराण'**, **'शिवमहापुराण'**, और **'आनन्दरामायण'** के समान उल्लिखित है। प्रतापभानु, अरिमर्दन और धर्मरुचि के रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण होने की कथा **'अगस्त्यरामायण'** और **'मंजुलरामायण'** के अनुसार वर्णित है। मनु-शतरूपा की तपस्या, पूर्णब्रह्म से पुत्र रूप में अवतरित होने का वरदान **'संवृतरामायण'** के अनुसार, पुत्रेष्टि यज्ञ, देवताओं की विष्णु से अवतार की प्रार्थना, पायस प्राप्तकर रानियों को वितरण, देवताओं का वानर आदि योनियों में जन्म, राम का अपनी माता को विराट् रूप दिखलाना तथा उनकी बाल-लीला का कुछ वर्णन, विश्वामित्र-आगमन तथा राम-लक्ष्मण की यज्ञ रक्षा के लिए याचना का वर्णन, **'अध्यात्मरामायण'** के अनुसार गोस्वामी जी ने किया है। अहल्योद्धार वर्णन, **'नृसिंहपुराण,' स्कन्दपुराण,' 'पद्मपुराण'**, **'आनन्दरामायण'** और **'रघुवंश'** के अनुसार, गिरिजा-पूजन, सीताराम के पारस्परिक आकर्षण का वर्णन, जानकी विवाह और जानकीहरण **'स्वयंभू रामायण'** के अनुसार, परशुराम-प्रकरण **'महावीरचरित'**, **'बालरामायण'**, **'प्रसन्नराघव'** और महानाटक के अनुसार वर्णित हैं। रामराज्याभिषेक की तैयारी, वसिष्ठराम-वार्तालाप, राज्याभिषेक के विघ्न आदि और राम-वन-गमन **'अध्यात्मरामायण'** के अनुसार, कैकेयी का दोष सरस्वती के के ऊपर होने का वर्णन, **'आनन्दरामायण'** के अनुसार, रामवनगमन के प्रसंग में केवट-संवाद **'चान्द्ररामायण'**, **'अध्यात्मरामायण'** और **'आनन्दरामायण'** के अनुसार, राम के चरण धोने का वर्णन **'सूरसागर'** के अनुसार, प्रयाग-माहात्म्य, भर-

१२६०. मानस, बालकाण्ड, मंगलाचरण, ७।

द्वाज-पहुनाई **'सुब्रह्मरामायण'** के अनुसार, ग्रामवधूटियों का स्नेह-कथन और उनका पश्चात्ताप-वर्णन **'सौपद्यरामायण'** के अनुसार, वाल्मीकि-मिलन और चित्रकूट-निवास-वर्णन **'रामायणमणिरत्न'** और **'अध्यात्मरामायण'** के अनुसार, सुमंत्र के अयोध्या लौटने का वर्णन उनका विलाप एवं दशरथ-मरण, **अध्यात्मरामायण'** के अनुसार, भरत-शपथ, भरत-विलाप, राम को लौटाने की तत्परता, निषाद-रोष, निषाद-भरत-संवाद और लक्ष्मण-रोष, आदि कथाएँ **'दुरन्तरामायण'** के अनुसार हैं। भरत-चित्रकूट-यात्रा' **'अध्यात्मरायायण'** के अनुसार, जनक-चित्रकूट-आगमन **'श्रवणरामायण'** के अनुसार, जयन्त की कथा **'देवरामायण'** के अनुसार, अत्रि-राम-मिलन, अनसूया-सीता-संवाद एवं नारी-धर्म-निरूपण, **'रामायणमणिरत्न'** के अनुसार, विराधवध, शरभंग का शरीरत्याग, सुतीक्ष्ण का प्रेम एवं राम-अगस्त्य-मिलन, **अध्यात्मरामायण'** के अनुसार, दण्डकारण्य पवित्र करते हुए राम के पंचवटी आगमन और निवास की कथा **'वाल्मीकिरामायण'** के अनुसार, गृध्रराज जटायु की मित्रता, लक्ष्मण को उपदेश, शूपनखा को दण्ड, खरदूषण-वध, शूर्पनखा का रावण के पास आगमन, राम का मर्म समझना, रावण-मारीच-सम्वाद, सीता का अग्नि-प्रवेश, मायामयी सीता की रचना, रावण द्वारा सीता-हरण और मारीच-वध, **'अध्यात्मरामायण'** के अनुसार हैं। सीता-विलाप, जटायु-सहायता, उसकी मुक्ति का वर्णन, कबन्ध-वध, रामशवरी-भेंट, नवधा-भक्ति-वर्णन, **'मृदुलरामायण'** के अनुसार, शवरी की मुक्ति और पम्पासर-गमन की कथा **'अध्यात्मरामायण'** के अनुसार, राम-नारद-संवाद, **'सौपद्यरामायण'** के अनुसार, राम-हनुमान-मिलन, सुग्रीव-मैत्री, वालि-वध, सुग्रीव-राज्याभिषेक, राम-लक्ष्मण का प्रवर्षण-निवास, सुग्रीव द्वारा वानरों को सीता की खोज के लिये भेजा जाना, विवर-प्रवेश और सम्पाति-मिलन, **'अध्यात्मरामायण'** के अनुसार, समुद्र-तीर पर अंगद-विलाप एवं वानरों का सम्भाषण, **'दुरन्तरामायण'** के अनुसार, समुद्र-सन्तरण, लंका-प्रवेश, सीता-धैर्य-प्रदान, वन उजाड़ना, लंका-विध्वंस एवं वहाँ से वापस लौटकर सीता-संदेश का राम से कथन, **'अध्यात्मरायायण'** के अनुसार, सेना सहित राम का समुद्र के किनारे आगमन, सेतु-बन्धन, विभीषण-मिलन, और उसका अभिषेक **'अध्यात्मरामायण'** के अनुसार, मन्दोदरी का समझाना, **'सुवर्चसरामायण'** के अनुसार अंगद का दूतकार्य **'वाल्मीकिरामायण'** के अनुसार, राक्षस-वानर-संग्राम, कुम्भकर्ण-वध मेघनाद-लक्ष्मण-युद्ध, लक्ष्मण का शक्ति-निहत होना, हनुमान द्वारा संजीवनी लाना, उपचार से लक्ष्मण का स्वस्थ होना, **'अध्यात्मरामायण'** और **'सुवर्चसरामायण'**, के अनुसार, मेघनाद-वध, रावण-यज्ञ-विध्वंस, राम-रावण-युद्ध, रावण के नाभि-प्रदेश में अमृत, रावण-वध, विभीषण का राज्याभिषेक,

सीता की अग्नि-परीक्षा, **'अध्यात्मरामायण'** के अनुसार, वेद-शिव-इन्द्र-ब्रह्मा द्वारा राम की स्तुति, **'रामायणमणिरत्न'** के अनुसार, पुष्पकारूढ़ राम का लक्ष्मण-सीता सहित, प्रमुख वानरों के साथ अयोध्यागमन, राज्याभिषेक, अनेक प्रकार नृपनीति का वर्णन, **'अध्यात्मरामायण'** के अनुसार, काकभुशुण्डि-कथा, **'भुशुण्डि-चरित'**, **'भुशुण्डिरामायण'** और **'सत्योपाख्यान'** के अनुसार एवं शिव के मराल वेश में नीलगिरि पर रामकथाश्रवण का वृतान्त **'रामायणमहामाला'** के अनुसार वर्णित हैं।'

कथावस्तु योजना में कवि-कौशल : उपर्युक्त विवेचन से गोस्वामीजी की मधुकरी वृत्ति और गम्भीर अध्ययन का एक साथ परिचय मिलता है। घटनाओं क्रमवद्ध सजाने और उन्हे मौलिक रूप प्रदान करने की गोस्वामी जी में अद्भुत क्षमता दिखाई देती हैं।' **'अध्यात्मरामायण'** और **'आदिरामायण'** आदि ग्रन्थों से कथासूत्र लेकर भी उन्होंने यथासमय उसमें परिवर्तन किया है और इस प्रकार कथाक्रम में एक आकर्षक विशेषता आ जाती है। कुछ घटनाओं के हेर-फेर से आने वाली नवीनता का संकेत इस प्रकार किया जा सकता है:—

(१) कवि ने रामसीता का साक्षात्कार विवाह से पूर्व पुष्पवाटिका में ही कराया हैं। यह उन्होंने 'प्रसन्नराघव' के अनुसार ही किया है। इससे कवि को पूर्वानुराग चित्रण करने का पर्याप्त अवसर मिल गया हैं। इस मिलन में गोस्वामी जी ने मर्यादा का कितना ध्यान रखा है कि मिलन एकान्त में न दिखाकर सखियों के साथ रखा हैं। राम के साथ लक्ष्मण भी हैं। इसका भी कवि ने ध्यान रखा हैं। यहाँ प्रेम अंकुरित हुआ है, छलका नहीं हैं।

(२) धनुर्भंग की घटना भी कवि ने राजसभा में ही दिखाई हैं। इससे नाटकीयता का वातावरण उत्पन्न करने में पर्याप्त सहायता मिली है। वन्दीजनों द्वारा जनक की प्रतिज्ञा की घोषणा, राजाओं की असफलता, जनक की निराशा, लक्ष्मण का आवेश और धनुर्भंग से पूर्व उनके द्वारा शेष तथा कच्छप को सावधान करने में नाटकीय आनन्द आ जाता है। इससे कवि को वातावरण की सृष्टि और उसका वर्णन करने का अवकाश मिल सका हैं।

(३) परशुराम को धनुर्भंग के पश्चात् राजसभा में ही बुलाया है, लौटती वार बीच मार्ग में नहीं। इससे राम-परशुराम-संवाद और विशेषरूपेण लक्ष्मण-परशुराम-संवाद को अवकाश मिल गया हैं। इस घटना से कवि ने एक ओर तो मनोविज्ञान के चित्रण का अवसर ढूँढ निकाला है। दूसरी ओर लक्ष्मण और परशुराम के संवाद द्वारा एक दर्पपूर्ण ऋषि को विजित दिखाकर उपस्थित राजाओं को लक्ष्मण-राम के प्रति विशिष्ट भावना वनाने के लिए विवश भी किया है।

(४) भरत के राम से मिलने के लिए चित्रकूट जाते हुए निषादराज के भिड़ जाने की तैयारी का वर्णन तो तुलसीदास का एकदम मौलिक प्रकरण है। अवसर की अनुकूलता तथा मनोविज्ञान--दोनों ही इस घटना की स्वाभाविकता का प्रमाण देते हैं। इस घटना का निर्वाह अत्यन्त कुशलता से किया गया है।

(५) राम के चित्रकूट में निवास के समय कवि ने वहाँ जनक को भी पहुँचाया है। भला राम और सीता वनवास का कष्ट भोगें और पिता जनक पर इसका कुछ भी प्रभाव न हो--यह कैसे सम्भव था ? कवि ने इसका अवसर निकाल कर जनक को चित्रकूट के सारे कार्यक्रम में उपस्थित दिखाया है। इससे जनक के मन में पुत्री सीता के चरित्र की एक सन्तोषजनक तस्वीर खिंचती है। यह गृहस्थ-जीवन का एक मार्मिक चित्र है।

(६) पम्पासर पर नारद को राम के समीप पहुँचाकर कवि ने ग्रन्थारम्भ में वर्णित नारद-मोह की कड़ी को जोड़ दिया है। यह कवि की प्रवन्ध-कुशलता ही है।

(७) लंका जाने पर हनुमान से विभीषण की भेंट का वर्णन करना भी विभीषण की रामभक्ति के परिचय के लिए अत्यन्त आवश्यक था। कवि ने भविष्य की योजनाओं का श्रीगणेश हनुमान्-विभीषण-मिलन के द्वारा कर दिखाया है।

(८) हनुमान के समक्ष सीता-त्रिजटा-संवाद कराकर कवि ने सीता की प्रेम-विह्वलता का सुन्दर परिचय कराया है। हनुमान को इस परिस्थिति का पूर्ण परिचय देने के लिए यह वुद्धिमत्तापूर्ण आयोजन कहा जा सकता है।

(९) मनोवैज्ञानिक आधार पर कवि ने युद्ध से पूर्व सुवेल-शिखर, चन्द्रोदय, रावण के अखाड़े आदि के मनमोहक चित्र उपस्थित किये हैं। ये विरोधी भावनाएँ भी हमारी कल्पना को आनन्द प्रदान किया करती हैं। साथ ही इनसे परिस्थितियों में गम्भीरता भी आ जाती है।

(१०) शिष्ट-परम्परा के अनुसार तथा राजनीति के नियमों के अनुसार अंगद को युद्ध से पूर्व दूत बनाकर रावण के पास भेजा गया है। यह भी एक महत्त्वपूर्ण आयोजन है। परन्तु अंगद के व्यवहार में कुछ मर्यादा का उल्लंघन दिखाई देता है। सम्भवतः इसका कारण कवि के मन की यह भावना है कि रावण राम का शत्रु था। फिर भी राज-दरवार की मर्यादा का ध्यान रखना आवश्यक था (जैसा कि केशव ने रखा है।)।

(११) कवि ने लक्ष्मण को रावण के प्रहार से मूर्च्छित न कराकर मेघनाद की शक्ति से मूर्च्छित दिखाया है। इस प्रकार कवि ने शक्ति और वीरता का एक प्रकार से बँटवारा दिखाया है। केवल रावण ही वीर नहीं था, मेघनाद और

कुम्भकर्ण आदि भी महाबली थे। साथ ही राम से रावण और लक्ष्मण से मेघनाद की वैर-भावना दिखाने के प्रकरण में आकर्षण आता है।

(१२) रावण द्वारा प्रेरित शक्ति—जिसे उसने विभीषण को मारने के लिये छोड़ा था—लक्ष्मण की छाती पर नहीं राम की छाती पर जाकर लगती है। उसे राम ने अपने भक्त की रक्षा के लिए अपने वक्ष पर झेला है। इससे कथा-नायक राम का चरित्र और भी ऊँचा उठ जाता है। उनकी शरणागतवत्सलता प्रकट हो जाती है।

(१३) राम को नागपाश में बन्दी दिखाकर कवि ने उत्तरकाण्ड के काकभुशुण्डि-गरुड़-संवाद के लिए कारण बना लिया है। उसी के सहारे ज्ञानभक्ति-विवेचन जैसे महत्त्वपूर्ण प्रकरण सामने आये हैं।

(१४) सीता-वनवास और लवकुश-जन्म आदि की कथा को कवि ने जानबूझकर छोड़ दिया है। इससे काव्य सुखान्त बन सका है। भारतीय परम्परा का कवि ने खूब पालन किया है। अन्य ग्रन्थों में यह कथांश बराबर आता है परन्तु तुलसीदासजी ने उनके साथ कथा का उपसंहार करना उचित नहीं समझा है।

कवि की मौलिकता : कई नये मोड़ देकर और कुछ नवीन प्रसंगों की उद्भावना करके तुलसी ने युग-युगान्तर से चली आती रामकथा को अत्यन्त आकर्षक, मनोवैज्ञानिक एवं प्रभावपूर्ण बना दिया है। 'रामचरितमानस' के कथानक को सुव्यवस्थित, मर्यादित, गरिमापूर्ण और साहित्यिक रूप प्रदान करना गोस्वामी जी का प्रशंसनीय कार्य है। कुछ प्रसंग तो उन्होंने कथा को सर्वांगपूर्ण बनाने के लिए ही जोड़े हैं। दो-चार प्रसंगों का यहाँ उल्लेख किया जाता है—

(१) राम-लक्ष्मण के सीता-स्वयंवर के अवसर पर मिथिला जाने के समय वहाँ की स्त्रियाँ उनके रूप-सौन्दर्य को लेकर परस्पर खूब बातें करती हैं। यह स्त्रियों के स्वभावानुसार ही है। आजकल भी किसी वर को देखने के लिए स्त्रियाँ एकत्र हो जाती हैं। इस वार्तालाप के द्वारा भावी सीता-पति के लिए कवि ने एक अवसर की भी सृष्टि की है।

(२) वनगमन के समय ग्रामवधूटियों का समागम और सीता के साथ उनका वार्तालाप गोस्वामी जी की नयी उद्भावना है। इससे स्त्रियों के सहज स्वभाव और मर्यादित शृंगार के चित्रण को अवकाश मिला है। साथ ही मार्मिकता भी आती है। भोली स्त्रियाँ अयोध्या की राजवधू की दशा को देखकर पानी-पानी हो जाती है।

(३) प्रारंभ की विस्तृत वन्दना, मानस-रूपक और बालकाण्ड का अधिकांश भाग कवि की मौलिकता का ही परिचायक है। वन्दनाओं से एक साथ सांस्कृतिक

वातावरण और विनय-शीलता का प्रभाव प्रकट होते हैं।

(४) चार प्रसिद्ध संवादों की अवतारणा भी मौलिक ही है। इससे प्रबन्ध-सौष्ठव सम्पन्न होता है। साथ ही कवि की महाकाव्य लिखने की क्षमता का परिचय भी मिलता है।

(५) उत्तरकाण्ड का ज्ञान-भक्ति-विवेचन कवि की नयी देन ही कही जा सकती है। यह तत्कालीन धार्मिक परिस्थिति के फलस्वरूप लिखा गया है।

(६) अनेक स्थलों पर कथानक को गोस्वामीजी ने एकदम मौलिक रूप में उपस्थित कर दिखाया है। उनकी कलात्मकता सचमुच प्रशंसनीय है। उन्होंने कथा के आधारभूत नये सिद्धान्त समक्ष रखे हैं। व्यापक रूप से सारे काव्य को राम-भक्ति में डुबोकर रख दिया है। यह भी नवीनता ही है।

(७) सभी चरित्र पूर्ववर्ती रामकथा के चरित्रों से विलक्षण वना दिये हैं।

(८) अयोध्याकाण्ड तो मौलिकता का प्रमुख उदाहरण माना जा सकता है। इसके पूर्वार्द्ध के प्रसंगों में तुलसी की मौलिकता स्पष्ट है। भरत का आदर्श चरित्र तो एकदम गोस्वामी जी की लेखनी की ही देन है। उसकी भ्रातृवत्सलता अनुपम है। श्रीराम के प्रति वे अनन्य भक्ति-भावना से परिप्लुत हैं और अपनी माता तक को खरी-खरी सुनाते हैं।

'रामायण' और 'मानस' के कुछ प्रसंग: राम के चरित पर सर्व प्रथम लिखा गया काव्य आदिकवि वाल्मीकि का **'रामायण'** ही है। उसीके पीछे राम काव्यों की परम्परा चलती है। गोस्वामीजी ने जहाँ अनेक स्थलों पर रामकथा को ज्यों का त्यों रहने दिया है वहाँ अधिकांश स्थल ऐसे हैं जिनमें नवीनता के लिये आवश्यक परिवर्तन कर दिये हैं। इसका कारण यह है कि आदि कवि वाल्मीकि को तो केवल चरित-काव्य लिखना था, उनके नायक भी साधारण मनुष्य थे परन्तु गोस्वामी जी को तो रामभक्ति की स्थापना के लिये ग्रन्थ रचना करनी थी। इसी कारण उनके नायक परब्रह्म राम हैं। वे तो **'बिधि हरि संभु नचावनहारे'** हैं। इसके अतिरिक्त दोनों कवियों ने रामजन्म के प्रकरण का भी अपने ढंग से ही वर्णन किया है। राम लक्ष्मण को लिवा जाने के लिए जब विश्वामित्र दशरथ के पास आते हैं तो वाल्मीकि के विश्वामित्र क्रोधित हो उठते हैं परन्तु तुलसी के विश्वामित्र यहाँ हर्षित होते हैं। रामायण में, आश्रम की ओर राम-लक्ष्मण के साथ जाते हुए कवि उन्हें अनेक कथा सुनाते हैं परन्तु तुलसी के 'मानस' में उस समय केवल गंगा की ही कथा का उल्लेख आता है। वाल्मीकि ने विश्वामित्र और राम-लक्ष्मण के जनक-पुरी-प्रवेश का वर्णन नहीं के बरावर ही किया है वे सीधे स्वम्वर में पहुँचा दिये गये हैं। गोस्वामीजी ने मनोवैज्ञानिक एवं मर्यादित ढंग से सभी मंत्रियों, पुरोहित और

श्रेष्ठ लोगों के सहित जनक द्वारा उनकी अगवानी कराई है। वाल्मीकि ने मन्थरा का विशद एवं सुन्दर वर्णन किया है; वहाँ मानस की भाँति केवल **'गई गिरा मति फेरि'** कहकर ही प्रसंग समाप्त नहीं किया गया है। कैकेयी की धाय होने के कारण ही मन्थरा का भरत के राज्याभिषेक के प्रति पक्षपात दिखाया गया है। वह अधिक मनोवैज्ञानिक है। तुलसीकृत मानस के अरण्यकाण्ड की कितनी ही कथाएँ वाल्मीकिरामायण के अयोध्याकाण्ड में आ जाती हैं। कुछ कथाएँ वाल्मीकि में हैं किन्तु तुलसी में नहीं और कुछ तुलसी में है पर वाल्मीकि में नहीं। कुलपति तपस्वियों के राक्षस-भय से आश्रम त्याग की कथा 'मानस' में नहीं हैं, इधर इन्द्र पुत्र की कथा रामायण में नहीं है। वाल्मीकि ने अत्रि द्वारा राम की पूजा का प्रसंग भी नहीं दिया है। हाँ, अनसूया द्वारा सीता को उपदेश दोनों ही कवियों ने दिलाया हैं। शरभंग की कथा वाल्मीकि ने विस्तार से दी है जब कि तुलसी ने इस प्रसंग को अत्यन्त संक्षेप में ही कहकर समाप्त कर दिया है। वाल्मीकि में ऋषिगण राम को अस्थियों का ढेर दिखाते हैं। परन्तु तुलसी अपने राम को स्वयं ही अस्थि-कूट देखकर 'निसिचर हीन करौं' आदि प्रतिज्ञा करने का अवसर देते हैं। राम सुतीक्ष्ण-मिलन की कथा मानस में जहाँ अत्यन्त भावपूर्ण है वहाँ रामायण में उसका उल्लेख भी नहीं है। मारीच-रावण-संलाप रामायण में विस्तृत है किन्तु मानस में इसका संकेतमात्र ही किया गया है। वाल्मीकि ने सीता द्वारा लक्ष्मण को अपशब्द कहलाये हैं परन्तु तुलसी ने केवल **'मरम बचन सीता तब बोला'** कहकर ही इसका संकेत कर दिया है। इस प्रकार कथा के प्रायः सभी प्रसंगों पर दोनों कवियों के विचार और शैली अलग-अलग दिखाई देते हैं। पात्रों के चरित्रों में भी पर्याप्त अन्तर दिखाई देता है। राम का चरित्र तो स्पष्टतया अन्तरयुक्त है ही रामायण में लक्ष्मण अत्यन्त तेजस्वी, उग्र स्वभाव, भ्रातृ-सेवक और अनुपम योद्धा हैं, मानस में वे उक्त गुणों के अतिरिक्त विचारशील-भक्त और दार्शनिक रूप में भी उपस्थित होते हैं। भरत के चरित्र को तो मानसकार ने तराशकर एकदम चमकीला हीरा ही बना दिया है। वाल्मीकि के भरत भाई राम के चरित्र पर सन्देह करते हैं परन्तु तुलसी के भरत ऐसा स्वप्न में भी नहीं सोच सकते। वाल्मीकि के दशरथ स्पष्टतः कामी हैं परन्तु तुलसी के दशरथ पुत्र-वत्सल पिता हैं। रानियों के चरित्रों में भी इसी प्रकार अन्तर मिलता है। स्पष्ट है कि वाल्मीकि के कथानक से तुलसी का कथानक कहीं अधिक प्रभावशाली है।

मानस के प्रतीक : कुछ विद्वानों ने मानस की कथा और पात्रों को प्रतीक मानकर इसके अन्य अर्थ भी प्रस्तुत किये हैं। डा० बलदेव प्रसाद मिश्र ने अपने **'भारतीय संस्कृति'** नामक ग्रन्थ में सीता को समृद्धि और राम तथा रावण को

क्रमशः रमणीयता और भयानकता का प्रतीक माना है। समृद्धि तो रमणीयता के साथ ही कल्याणकारिणी हो सकती है। उसका भयानक प्रकृति से सम्बन्ध क्षणिक हो सकता है, स्थायी नहीं। इस प्रकार सीताहरण की कथा को उन्होंने संस्कृति और सभ्यता के संघर्ष का इतीक माना है।

इसके अतिरिक्त यह कथा अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि का भी प्रतीक है क्योंकि कथा दो मुनियों के संकेतों पर केन्द्रित है। एक तो विश्वामित्र के और एक अगस्त्य के। विश्वामित्र यदि अभ्युदय के प्रतीक हैं तो अगस्त्य निःश्रेयस के क्योंकि इन्हीं के आदर्शों से राम ने क्रमशः सीता को प्राप्त किया और विश्वकल्याण के लिए राक्षसों का संहार किया है।

ताडका, मन्थरा और शूर्पणखा के चारों ओर घूमने के कारण यह कथा एक प्रकार से क्रोध (ताडका), लोभ (मन्थरा) और काम (शूर्पणखा) आदि की ही कथा है। गीता में कहा भी गया है—

'त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधश्च लोभश्च तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्॥'

इस प्रकार कथा स्पष्ट रूप से क्रोध, लोभ और काम पर विजय प्राप्त करने की साधना की प्रतीक वन जाती है।

पौराणिक-चरित-महाकाव्यत्व : 'रामचरितमानस' हिन्दी का अत्यन्त गरिमापूर्ण अनुपम, **पौराणिक-चरित-महाकाव्य** है। प्रथम अध्याय में उक्त महाकाव्य चरितकाव्य एवं पौराणिक काव्य के समस्त उदात्त लक्षणों का इसमें दर्शन दिया जा सकता है।

आचार्य दण्डी के काव्यलक्षण का हम पीछे उल्लेख कर चुके हैं।[११६१] वहीं हमने यह भी बताया है कि साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ प्रायः उनके मत के ही अनुयायी हैं। उन्होंने कुछ और नवीन बातों का उल्लेख कर दिया है, यथा—**'सर्गा अष्टाधिका इह'** आदि। यदि सर्गों की संख्या वाली बात को उपेक्षित कर दिया जाय तो मानस हिन्दी का ही नहीं भारतीय साहित्य का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य ठहरता है। यह सर्गवद्ध रचना है, इसके प्रारम्भ में लम्वा मंगलाचरण है, इतिहास प्रसिद्ध रामकथा का उसमें अपने दृष्टिकोण से प्रतिपादन है, चतुर्वर्ग की प्राप्ति-विशेषतः मोक्ष के सावन भक्ति की सिद्धि उससे होती है, इसके नायक मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् राम परम उदात्त हैं, नगर आदि के अमुचित कथानकोपयोगी वर्णन है, इसमें अलंकारों का सुन्दर गुम्फन है, विस्तृत कथानक हैं, सर्गान्त में छन्द बदले हुए हैं।

११६१. दे० प्रस्तुत ग्रन्थ पृ० ४७

जहाँ तक आधुनिक आलोचकों द्वारा मान्य महाकाव्य के लक्षणों का प्रश्न है[११६२] वे भी समुचित रूप में 'मानस' में घटित होते हैं। उसका उद्देश्य महान् हैं, एक आदर्श राम-राज्य की स्थापना उसका लक्ष्य है; उसकी प्रेरणा अधर्म पर धर्म की विजय है; उसकी कलापूर्णता असन्दिग्ध है जिसका हम आगे संकेत देंगे। उसका गुरुत्व, गाम्भीर्य और महत्त्व अनेक मनीषियों द्वारा मौलिमालाओं से लालित है। युग-जीवन का समग्र चित्रण उसके 'कलिधर्म-निरूपण' आदि में प्राप्त होता हैं। उसका कथानक सुसम्वद्ध, व्यायत एवं संजीवनी शक्ति से परिपूर्ण है। यह काव्य आज भी भारत को चेतन वनाने वाला है। इसके नायक महत्त्वपूर्ण तथा आदर्श हैं, अन्य पात्र भी महाकाव्योचित गरिमा से परिपूर्ण हैं। इसकी शैली बेजोड़ तथा रसव्यंजना मार्मिक है।

यह महाकाव्य के **'पौराणिक चरितकाव्य'** भेद का प्रतिनिधित्व करता है। मानस के अतिरिक्त हिन्दी में दूसरा पौराणिक चरितमहाकाव्य नहीं दिखाई देता। प्रथम अध्यायोक्त लक्षणों के अनुसार पौराणिक काव्य के लक्षण मानस में पूर्णतया मिलते हैं। इसमें काव्यात्मकता और धार्मिकता का सामंजस्य है। जहाँ एक ओर वैष्णवभक्ति का प्रचार है (यथा **'नाथ भगति अति सुखदायनी' 'भक्ति प्रयच्छ रघुपुंगव! निर्भरां मे** आदि) वहाँ दूसरी ओर काव्यप्रतिभा का प्रदर्शन भी। **'वर्णानामर्थसङ्घानां रसानां छन्दसामपि। मंगलानां च कर्तारौ वन्दे वाणी-विनायकौ।'** —कहने वाले भक्त कवि की काव्य-प्रतिभा असंदिग्ध मानी जानी चाहिए। इसमें चार वक्ता-श्रोताओं की सुसंवद्ध योजना है। शिव-पार्वती, काकभुशुंडि-गरुड, याज्ञवल्क्य-भरद्वाज तथा तुलसी-सन्तगण इसके चार वक्ता-श्रोता हैं। इसका प्रधान रस शान्त (या भक्ति) है, शेष रस अंग हैं। इसकी आधिकारिक कथा में अवतार मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम का चरित्र निवद्ध है, साथ ही समयानुसार अनेक उपाख्यान भी संक्षिप्त रूप में निवद्ध हैं यथा—सुतीक्ष्णादि के उपाख्यान। समुद्र-लंघनादि अलौकिक, अतिप्राकृत और अतिमानवीय शक्तियों, कार्यों तथा घटनाओं का समावेश है क्योंकि राम तो **'विधि हरि संभु नचावनहारे'** हैं। हनुमान के शब्दों में उनकी सर्वसाधकता का कथन इस प्रकार किया गया है:—

"ता कहँ प्रभु कछु अगम नहिं जा पर तुम अनुकूल।
प्रभु प्रताह बड़वानलहिं जारि सकै खलु तूल॥" (सुन्दरकाण्ड)

अपने धर्म की प्रशंसा उत्तरकाण्ड तथा अन्य स्थलों पर भी देखी जा सकती है। सूक्तियों का भी प्राचुर्य है। काव्य का माहात्म्य-कथन है। वंशोत्पत्ति, वंशावलि और

११६२. दे० हिन्दी-साहित्य-कोश, भाग–१, पृ० ६२७

स्तुति आदि की योजना है। संक्षेपत: यह सफल पौराणिक चरित-महाकाव्य है।

रामचरितमानस का महत्त्व : 'रामचरितमानस' जहाँ तुलसी की सबसे बड़ी रचना[११६३] एवं हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है[११६४] वहाँ समूची राम-काव्य-परम्परा में अप्रतिम संजीवनदायक एक सुदृढ़ ग्रन्थ है। यही कारण है कि उसके अनेक अनुवाद और अनेक टीकाएँ अब तक हो चुकी हैं और देश-विदेश में उस पर अनेक आलोचनाएँ लिखी गयी एवं लिखी जा रही हैं।[११६५] उसका महत्त्व अनेक दृष्टियों से है। वह उच्चकोटि का काव्यग्रन्थ है, आदर्श संस्कृति का संदेशदाता है, दार्शनिक मनन-चिन्तन का स्रोत है, मर्यादा का परम प्रतीक है, लोकमंगल की भावना का आगार है, मर्यादा और समन्वय का अभूतपूर्व निदर्शन है तथा भारतीय धर्मप्राण जनता का कण्ठहार है।

'रामचरितमानस' तुलसी की मधुकरी वृत्ति का परिणाम है। वह '**छहो शास्त्र सब ग्रन्थन को रस**' है। तुलसीदास ने नाना स्रोतों से कथा के जीवन-कणों को एकत्र करके उन्हें अपने अगाध व्यक्तित्व के सागर में मिलाकर एकरस कर दिया। जीवन-कण अपनी लघु सीमा अथवा निश्चित परिधि का अतिक्रमण करके सागर

११६३. रामनरेश त्रिपाठी : तुलसी और उनका काव्य, पृ० १०६।

११६४. डा० शंभुनाथसिंह : हिन्दी-महाकाव्य का स्वरूप-विकास।

११६५. डा० रामनरेश त्रिपाठी ने 'तुलसी और उनका काव्य' के पृ० १६१ से १६४ तक 'रामचरितमानस' के इन अनुवादों का उल्लेख किया है :—संस्कृत अनुवाद (बलभद्रप्रसाद शुक्ल द्वारा सम्पादित, सं० १९६८, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ), गोविन्दसावतेली-कृत गोविन्द-रामायण एवं खरियार के राजा वीर विक्रमसिंह, बाबू रामप्रसाद वोहिदार और पंडित स्वप्नेश्वर दास के द्वारा किये गये उड़िया अनुवाद, श्री मदनमोहन चौधरी द्वारा 'त्रिपदी' छन्द में किया गया एवं श्री सतीशचन्द्र दास गुप्त द्वारा किया गया बंगला अनुवाद, पं० छोटालाल चन्द्रशंकर शास्त्री का गुजराती अनुवाद एवं एफ० एस० ग्राउज का अंग्रेजी अनुवाद। अनेक टीकाओं के परिचय के लिए देखिए, वही पृ० १६४।१६९। इन टीकाओं का नामोल्लेख मात्र किया जा रहा है—ज्ञानी संतसिंह (पंजावी, श्री दरवार साहब, अमृतसर) की टीका मानस-भाव-प्रकाश, वैजनाथजी कूर्मवंशी की टीका, पं० शिवलाल पाठक की टीका, श्रीदेवतीर्थ (काष्ठजिह्वा) स्वामी की टीका, श्रीमन्महाराज द्विजराज काशीराज ईश्वरीप्रसादनारायणसिंह बहादुर, जी० सी० आई० की टीका, परमहंस प्रशंसमान हंसवंशावतंस श्रीजानकीरमणचरण-सरोरुहराजहंस श्रीसीतारामाय हरिहरप्रसादजी की टीका, मुन्शी शुकदेवलाल (मैनपुर निवासी की टीका, महन्त श्रीरामचरणदासजी (अयोध्या-निवासी) की टीका, पं० रामेश्वर भट्ट की टीका, श्रीरामप्रसादशरण (कनक-भवन, अयोध्या) की टीका, पं० विनायकराव (जबलपुर) की टीका, स्व० बाबू श्यामसुन्दरदास, बी० ए० की टीका, पं० महावीरप्रसाद मालवीय की टीका, श्रीजनकसुताशरण शीतलासहाय सावन्त की टीका। इनके अतिरिक्त मोतीलाल बनारसीदास के यहाँ से विजयानन्द त्रिपाठी की टीका भी निकली है।

की असीम गरिमा में पर्यवसित हो गये। नाना पुष्पों से गृहीत रस मधुमक्खी के प्रभाव से मधु बन गया।[११६६] डा० राजपति दीक्षित के शब्दों में 'तुलसी ने अपनी भक्ति को उत्तरोत्तर दृढ़ करने तथा रामचरित का मर्म समझने के लिए अधिक से अधिक प्राचीन राम-साहित्य-रूप रत्नाकर का भावपूर्वक शोध किया और अपनी सद्ग्राहिता के अनुसार मनोवांछित सारभूत रचनोपकरण-रत्नों को ग्रहण किया और उन्हें अपने दिव्य प्रकाश और मौलिकता की शान पर चढ़ाकर विशेष सुसंस्कृत रूप देकर अपने नूतन राम-साहित्य में सन्निविष्ट किया।[११६७] 'मानस' तुलसी के गम्भीर अध्ययन का परिणाम है। 'वाल्मीकि-रामायण', 'अध्यात्मरामायण', 'श्रीमद्भागवत', 'प्रसन्नराघव' और 'हनुमन्नाटक' के अतिरिक्त संस्कृत के दो सौ से अधिक ग्रन्थों के श्लोकों को भी चुन-चुनकर उन्होंने उनका रूपान्तर करके 'मानस' में रख दिया है।[११६८] ऐसे स्थानों पर तो तुलसीदास के मस्तिष्क की महिमा देखते ही वनती है, मानो संस्कृत के दो-ढाई सौ ग्रन्थों के लाखों श्लोकों पर उनका एकच्छत्र सम्राट् की तरह अधिकार था और वे जिसे जहाँ चाहते थे, उसे वहीं बुला लेते थे।[११६९]

'मानस' का काव्य-शिल्प भी उच्चकोटि का है। क्या कथानक, क्या चरित्र, क्या रस-भाव और क्या कलापक्ष, सभी में एक विचित्र संतुलन और मौलिक संयोजन है। 'रामचरितमानस' बृहदाकार रचना ही नहीं, वह सुचिन्तित एवं सुनियोजित रचना भी है।...मन्दिर-निर्माण-कला में जिस प्रकार तोरण-द्वार, अर्द्धमण्डप, मण्डप, अन्तराल और गर्भगृह की योजना होती है और गर्भगृह के देवपीठ के ठीक ऊपर आमलक पर कलश की स्थापना रहती है, उसी प्रकार का सुयोजित वास्तु-वैभव में मानस में मिलेगा।[११७०] 'मानस' में तुलसी की सन्दर्भण-कला चरमकोटि की है। डा० राजपति दीक्षित के शब्दों में—"वे (तुलसी) ऐसे शिरमौर कविरूप

११६६. श्रीधरसिंह : मानस का कथाशिल्प, पृ० २२७।

११६७. डा० राजपति दीक्षित : तुलसीदास और उनका युग, पृ० ३४६।

११६८. कुछ उदाहरण 'तुलसी और उनका काव्य' के पृ० १२४-१४९ पर श्रीरामनरेश त्रिपाठी ने दिये हैं। पृ० १४९ पर ग्रन्थों कें कुछ नाम भी दिये हैं यथा—अग्निपुराण, अद्भुत रामायण, अभिज्ञानशाकुन्तल, आनन्द-वृन्दावन, कथा-सरित्सागर, कामन्दकीय-नीतिसार, किरातार्जुनीय, गीतगोविन्द, चाणक्य-नीति, नलचम्पू, नाटक-पंचरत्न, नैषध, पाराशर-स्मृति, पुरुष-सूक्त, वाराह-पुराण, वसिष्ठ-संहिता, ब्रह्मांडपुराण, बालरामायण, विदग्धमुखमण्डन, मत्स्यपुराण महानिर्वाणतत्त्व, महावीरचरित, महिम्नस्तोत्र, याज्ञवल्क्यस्मृति, रुद्रयामल, वामनपुराण, शिव-पुराण, शिशुपालवध, स्कन्दपुराण, श्रुतबोध, हरिवंशपुराण, हारीतस्मृति आदि।

११६९. रामनरेश त्रिपाठी : तुलसी और उनका काव्य, पृ० १२४।

११७०. डा० रामरतन भटनागर : मध्ययुगीन वैष्णव संस्कृति और तुलसीदास, पृ० १२९।

पटहार हैं जिन्होंने अपने कौशल से विविध कथास्वरूप मौक्तिकों का ऐसा अनूठा संग्रन्थन किया है किया है कि उनके अपूर्व संयोग से अनर्घ 'मानस' रूप हार निर्मित हो गया।[११७१] मानस के उपक्रम में नवीनता और प्रौढ़ि है जिसके कारण राम-साहित्य में इसका अत्यन्त मौलिक योगदान है। इसके उपक्रम के विषय में डा० राजपति दीक्षित के शब्द द्रष्टव्य हैं—'यद्यपि प्राचीन रामायणों का प्रभाव 'मानस' पर किसी न किसी प्रकार अवश्य पड़ा है तथापि 'मानस' के उपक्रम की विशेषता किसी रामायण या अन्य आर्ष ग्रन्थ में नहीं मिलती। इसकी प्रमुख नवीनता इस बात में है कि इसमें महाकाव्योचित उपक्रम के विधान के साथ भक्ति-तत्त्वों का ऐसा कलात्मक संग्रन्थन किया गया है कि उपक्रम की समाप्ति के पश्चात् पाठक अनायास ही अपने समक्ष महाकाव्य एवं भक्ति दोनों का एक ही द्वार उद्-घाटित देखता है।'[११७२] इसके अतिरिक्त वर्ण-अर्थ-रस-छन्द आदि का सौष्ठव तो दर्शनीय है ही।

'रामचरितमानस' के सदृश आदर्श भारतीय संस्कृति का संदेश देने वाला और कोई ग्रन्थ राम-काव्य-परम्परा में नहीं दिखाई देता। मैक्फी के अनुसार 'हिन्दुओं के धार्मिक सिद्धान्तों और उनकी संस्कृति का सर्वोच्च सुन्दर चित्र जैसा रामायण में मिलता है वैसा शायद अन्यत्र किसी ग्रन्थ में न होगा।' प्रत्येक चरित्र आदर्श प्रस्तुत करता दिखाई देता है। एक अव्यवस्थित और कुनीतिपूर्ण समाज में उत्पन्न होकर तुलसी ने उसे सुव्यवस्थित और सुनीतिपूर्ण बनाने के लिये मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्र के चरित्र का गुणगान किया एवं रामराज्य की कल्पना करके समाज के समक्ष एक उदात्त आदर्श प्रस्तुत किया। यदि कोई व्यक्ति भारतीय संस्कृति के आदर्श रूप का एक ही स्थान पर अध्ययन करना चाहता है तो उसे 'मानस' का मनन कर लेना चाहिए।

'मानस' का महत्त्व इस दृष्टि से भी है कि यह लोक-हृदय का काव्य है। इसमें लोक की भाषा है, लोक की संस्कृति है और लोक-मंगल की भावना है। डा० रामनरेश त्रिपाठी के शब्दों में—'रामचरितमानस आदि से अन्त तक माधुर्य से ओतप्रोत है। हर एक प्रकार की सुरुचि रखने वालों के लिए उसमें यथेष्ट सामग्री है। एक लम्बे मार्ग में कोई ऐसा स्थान नहीं है जहाँ पथिक को दूर तक शान्ति की छाया न मिले, प्यास से व्याकुल होना पड़े। रास्ते भर मधुर सोते प्रवाहित हैं, सद्विचारों की शीतल छाया वर्तमान है। 'मानस' को बार-बार पढ़ने से भी जी नहीं ऊबता। जिस प्रकार हम चन्द्रमा को लाखों बरसों से देखते आ

११७१. तुलसीदास और उनका युग, पृ० ३४७

११७२. वही, पृ० ३४७-३४८।

रहे हैं, पर जब उसे देखते हैं तभी वह नवीन लगता है और कभी वासी नहीं लगता इसी प्रकार 'मानस' को चाहे जितनी वार पढ़िए, उससे जी नहीं उचटता। उसका कारण यह है कि तुलसीदास ने जो कुछ लिखा है, उसमें हमारे नित्य-नैमित्तिक जीवन का प्रतिविम्ब है। इससे हम उसे अपना समझ कर पढ़ते हैं और वार-वार उसका रस लेकर भी तृप्त नहीं होते।[११७३] उत्तर प्रदेश और बिहार में 'मानस' इतना लोकप्रिय काव्य है कि उसकी वहुत-सी चौपाइयाँ और दोहे कहावतों में स्थान पा चुके हैं शिक्षित और अशिक्षित नागरिक और ग्रामीण सभी श्रेणियों के लोग बिना किसी प्रयास के उनका प्रयोग साधारण वोलचाल में किया करते हैं।[११७४] इस प्रकार की लोक-हृदय रञ्जिनी कुछ सूक्तियाँ प्रस्तुत हैं :

'परहित सरिस धरम नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।,'
'जहाँ सुमति तहँ सम्पति नाना। जहाँ कुमति तहँ विपति निदाना।।,'
'विनु संतोष न काम नसाहीं। काम अछत सुख सपनेहुँ नाहीं।।,'
'निज सुख बिन मन होइ कि थीरा। परस कि होई विहीन समीरा।।,'
'परद्रोही कि होई निहसंका। कामी पुनि कि रहइ अकलंका।।,'
'वायस पालिय अति अनुरागा। होइ निरामिष कबहुँ कि कागा।।,"
'साधु चरित सुभ सरिस कपासू। निरस विसद गुनमय फल जासू।।,'
'को न कुसंगति पाइ नसाई। रहइ न नीच मते चतुराई।।,'
'वरु भल बास नरक कर ताता। दुष्ट संग जनि देहिं बिधाता।।,"
'राकापति षोडश उवहिं, तारागन समुदाय।
सकल गिरिन्ह दव लाइये, रवि बिन राति न जाय।।' आदि

'रामचरितमानस' का महत्त्व उसके लोकविश्रुत समन्वय की दृष्टि से भी वहुत है। पारस्परिक वैमनस्य के युग में लड़खड़ाते हुए हिन्दू-जीवन को समन्वय भावना के द्वारा स्थायित्व प्रदान करने के हेतु तुलसी ने जो प्रयत्न किया है वह वस्तुत: अविस्मरणीय है। उनकी इस समन्वय-बुद्धि के विषय में डा० हजारी-प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं:—'तुलसीदास के काव्य की सफलता का एक और रहस्य उनकी अपूर्व समन्वय-शक्ति में है। उन्हें लोक और शास्त्र दोनों का बहुत व्यापक ज्ञान प्राप्त था। उनके काव्य-ग्रन्थों में जहाँ लोक-विधियों के सूक्ष्म अध्ययन का प्रमाण मिलता है, वहीं शास्त्रों के गम्भीर अध्ययन का भी परिचय मिलता है लोक और शास्त्र के इस व्यापक ज्ञान ने उन्हें अभूतपूर्व सफलता दी। उसमें केवल लोक और शास्त्र का समन्वय ही नहीं है, वैराग्य और गार्हस्थ्य का, भक्ति

११७३. तुलसी और उनका काव्य, पृ० १४९।
११७४. तुलसी और उनका काव्य, पृ० १५८।

और ज्ञान का, भाषा और संस्कृत का, निर्गुण और सगुण का, पुराण और काव्य का, भावावेग और अनासक्त चिन्तन का, ब्राह्मण और चाण्डाल का, पण्डित और अपण्डित का समन्वय 'रामचरितमानस' के आदि से अन्त तक दो छोरों पर जाने वाली परा-कोटियों को मिलाने का प्रयत्न है।[११७५] हिन्दी-साहित्य कोश में मानस का महत्त्व निर्धारण करते हुए अन्वर्थ ही लिखा गया है:—" 'रामचरितमानस' की अद्वितीय लोकप्रियता तथा चिरस्थायी प्रभाव को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि उत्तर भारत के सांस्कृतिक तथा धार्मिक इतिहास में विक्रम संवत् की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना 'रामचरितमानस' की रचना ही है। इतना तो निश्चित है कि किसी भी देश में ऐसा कोई भी काव्यग्रन्थ नहीं मिलता जो 'रामचरितमानस' की भाँति शताब्दियों तक जनता का जीवन अनुप्राणित करने में समर्थ हुआ हो। इस सामर्थ्य का रहस्य यह है कि तुलसीदास की प्रतिभा ने 'रामचरितमानस' में काव्य-सौन्दर्य, भक्ति तथा लोक-संग्रह का अपूर्व समन्वय किया है। मानव-हृदय को मोहित करने की शक्ति रामकथामात्र में पहले से ही विद्यमान थी, तुलसीदास ने इस कथानक को इस कौशल से प्रस्तुत किया है कि कथा-प्रवाह, मार्मिक स्थलों की पहचान, मर्यादित शृंगार, पात्रानुकूल भाषा एवं चरित्र-चित्रण की दृष्टि से 'रामचरितमानस' हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ काव्य ग्रन्थ माना जा सकता है। इसके अतिरिक्त इसमें दास्यभक्ति का दिव्य रूप प्रतिपादित किया गया है। उपास्य राम का शील, संकोच और सहृदयता मनुष्यमात्र को आकर्षित करने में समर्थ है, किन्तु तुलसी ऐश्वर्यबोध इस प्रकार बनाये रखते हैं कि भक्तों में श्रद्धा का भाव प्रधान ही रह जाता है। साथ-साथ लोक-संग्रह का ध्यान रखकर तुलसी समस्त मानव जीवन का आदर्श प्रस्तुत करते हुए पारिवारिक तथा सामाजिक कर्त्तव्यों का इतना प्रभावशाली चित्रण प्रस्तुत करते हैं कि 'रामचरितमानस' उत्तर भारत का नैतिक मेरुदण्ड सिद्ध हुआ है।"[११७६]

पद्मपुराण और रामचरितमानस

पद्मपुराण और रामचरितमानस——दोनों ही अनादि काल से प्रवाहित होने वाली रामकथा-मन्दाकिनी के दो सुन्दर तीर्थों के रूप में हमारे सम्मुख प्रस्तुत होते हैं। यदि एक जैन धर्मावलम्बियों के लिए आदरणीय धर्म-ग्रन्थ है तो दूसरा प्रत्येक

११७५. डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी : "सफलता का रहस्य"। राधाकृष्ण-मूल्यांकन-ग्रन्थ-माला में, डा० उदयभानुसिंह द्वारा सम्पादित 'तुलसीदास' के पृष्ठ २१७ पर।

११७६. हिन्दी-साहित्य-कोश, भाग १, पृ० ९७५।

भक्तिमार्गी के लिए माननीय भक्ति-ग्रन्थ; यदि एक जैन धर्म का सर्वाधिक महत्व-पूर्ण संस्कृत काव्य-ग्रन्थ है तो दूसरा हिन्दू-धर्म का सर्वप्रधान हिन्दी-काव्य-ग्रन्थ। दोनों अपने युग की परिस्थितियों की उपज हैं। रविषेण ने पद्मपुराण की रचना जिन परिस्थितियों में की थी उनका उल्लेख प्रस्तुत ग्रन्थ के तृतीय अध्याय में किया जा चुका है। यहाँ तुलसी के समय की परिस्थितियों का उल्लेख करके दोनों की परिस्थितियों का तुलनात्मक विवेचन किया जा रहा है।

तुलसीकालीन राजनीतिक परिस्थिति अच्छी नहीं थी। गोस्वामी तुलसी-दास जी का प्रादुर्भाव-काल १५वीं श० ई० का अन्त अथवा १६वीं श० ई० का प्रारम्भ था। भारतीय इतिहास के अनुसार उस समय पठानों (लोदीवंश) के पैर लड़खड़ा चुके थे और मुगलों का भारतीय शासन-क्षेत्र में पदार्पण हो चुका था। मुगल साम्राज्य के बीजारोपण के समय दिल्ली का साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो चुका था; बड़े-बड़े सूबों में पृथक्-पृथक् राजा थे; छोटे-छोटे जिले—यहाँ तक कि प्रत्येक शहर या किले का स्वामित्व किसी बड़े सरदार या घराने के हाथों में था। उनके ऊपर कोई अधिकारी नहीं था। यह छोटे-छोटे राजाओं, मुल्क-अतवैफ़ या कार्य-कारी अधिकारियों (फंक्शन किंग्ज़) का समय था।[११७७] १५२६ ई० में बाबर ने इब्राहीम लोदी को परास्त किया।[११७८] और पर्याप्त संघर्ष के फलस्वरूप १५३० ई० तक दिल्ली पर शासन किया। उसके बाद हुमायूँ का और सन् १५५६ से १६०५ तक अकबर का राज्यकाल रहा। हुमायूँ को राजपूतों से कड़ा लोहा लेना पड़ा, फिर भी उसे शान्ति न मिली। वस्तुतः मुगल-साम्राज्य का स्वर्णयुग अकबर का शासन-काल ही था। अकबर को ही मुगल-साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक एवं संघटनकर्त्ता कहा जा सकता है। उसके विषय में भी यह नहीं भूलना चाहिए कि उसे भी हिन्दुस्तान को अपने आधिपत्य में लाने के लिए बीस वर्ष तक भीषण संघर्ष करना पड़ा। फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि उसकी मृत्यु के समय तक उसका प्रयास सब प्रकार से पूर्ण हो चुका था।[११७९] उसका अधिकांश जीवन पठानों, राजपूतों, मरहटों, दक्षिण के तेलगू और कन्नड़ नायकों, गोंडों तथा बंगालियों से युद्ध करते हुए व्यतीत हुआ। किन्तु अकबर का प्रयास अधिकांश सफल रहा। कितने ही राजाओं ने उसका आधिपत्य स्वीकार कर लिया था। सन् १५६२ में ही आमेर के राजा बिहारीमल ने नवीन सम्राट् के दरबार में पधारकर अत्यन्त हर्ष प्रकट करते हुए अपनी भेंट उपस्थित की

११७७. डा० स्टेनली लेनपूल : मिडीवल इण्डिया अण्डर मुहमडेन रूल', पृ० १८९।
११७८. स्मिथ : अकबर—दी ग्रेट मुगल, पृ० ११।
११७९. स्टेनली लेनपूल : पृ० २३८।

थी। सम्राट् ने उनका कन्यारत्न सहर्ष ग्रहण किया।[११८०] इसके पूर्व भी अकबर रुक्मा तथा सलीमा से विवाह कर चुका था। ये दोनों भी राजपूत ललनाएँ थीं।[११८१] अकबर का हरम और भी कितनी ही हिन्दू नारियों से भरा था।[११८२] अकबर के ही नहीं, जहाँगीर के हरम में भी राजा उदयसिंह, बीकानेर के राजा, राय रायसिंह, राजा मानसिंह के ज्येष्ठ पुत्र, जगतसिंह और रामचन्द्र बुन्देला आदि की बेटियाँ पहुँच गयी थीं।[११८३] इससे स्पष्ट है कि हिन्दुओं की विवशता उस समय परिस्थितियों के कैसे चक्र में पड़ी हुई थी। राजाओं में अपवाद-स्वरूप महाराणा प्रताप जैसे देश-धर्म पर मर मिटने वाले विरल ही थे।

राजाओं का क्षत्रियत्व विलुप्त होने लगा था एवं हिन्दू-राजाओं तथा प्रजा का पतन होने लगा था। अनुकरण और व्यक्तिगत सुख-विलास को ही सब कुछ मान लेने वाले अथवा शक्तिहीन होकर पराधीनता स्वीकार कर लेने वाले हिन्दू शासकों में आत्माभिमान के स्थान पर विलासिता ने घर कर लिया था। प्राचीन हिन्दू राजाओं की प्रजावत्सलता उनके आचार-विचार, उनकी धर्मनिष्ठा आदि के उदात्त सिद्धान्त लुप्त हो चले थे।

राजकीय परिवर्तनों के इस काल में अधिकार-लिप्सा तथा प्राप्त शक्ति के दुरुपयोग के फलस्वरूप न कोई नियम रह गया था, न मान-मर्यादा का कोई मूल्य ही था। शासन को प्राप्त करने के लिए परस्पर लड़ाई-झगड़े उस युग की विशेषता थी। क्या राजा, क्या प्रजा—सभी का जीवन स्थिरता और सुरक्षा से हीन था। उस समय कुछ भी स्थायी न था।[११८४] ऐसी अधिकार लिप्सा और मार-काट की स्थिति में जन-कल्याण की बात भला किसे सूझती? स्वयं मुगलों का शासन सैनिक-शासन के रूप में चल रहा था। वह प्रजा के प्रति किसी प्रकार का नैतिक उत्तरदायित्व स्वीकार नहीं करता था। शासन का लक्ष्य संकीर्ण और भौतिक था। स्मिथ और मूरलैण्ड जैसे इतिहासकारों ने यह स्वीकार किया है कि पठानों और जहाँगीर के काल में लोगों को कठोर दण्ड दिया जाता था और उनका सिर उतार लेना, उन्हें फाँसी चढ़ा देना या उनकी खाल खिचवाकर उन्हें मरवा देना प्रायः साधारण बात हो गयी थी।

डा० भगीरथ मिश्र के शब्दों में तत्कालीन 'राजनीतिक परिस्थिति की

११८०. वही, पृ० २५१।
११८१. वही, पृ० २५१।
११८२. राजपति दीक्षित : तुलसीदास और उनका युग, पृ० २।
११८३. प्रो० वेनीप्रसाद : 'हिस्ट्री ऑव् जहाँगीर', पृ० ३०।
११८४. मूरलैण्ड : 'जहाँगीर्स इण्डिया', पृ० ५६।

विशेषताओं का संक्षिप्त निर्देश इस प्रकार से किया जा सकता है—

(१) राजकीय परिवर्तन बड़ी शीघ्रता से चल रहे थे।

(२) इस राज्य परिवर्तन में अधिकांश अधिकारलिप्सा और शक्ति ही प्रेरक थी। कोई नियम मर्यादा या आदर्श विद्यमान न थे। भतीजा चचा का, पिता पुत्र का और भाई भाई का वध कर या बन्दी कर राज्य पर अपना अधिकार जमा लेता था।

(३) राजा और शासक प्रायः अशिक्षित, अहम्मन्य विलासी और क्रूर थे। शासन को अपने अधिकार में रखने की और वे अधिक सचेत थे, जन-कल्याण की ओर नहीं।

(४) अकबर के पूर्ववर्ती राजाओं के अस्त-व्यस्त और अव्यवस्थित शासनकाल में कोई भी सामाजिक और सांस्कृतिक उन्नति न हुई थी।[११८५]

उपर्युक्त बातों का तुलसी के 'मानस' पर गहरा प्रभाव पड़ा। उनके मन में प्रतिक्रियास्वरूप भारतीय रघुवंशी राजाओं—जो अत्यन्त प्रजावत्सल, त्यागी, वीर और गुणसम्पन्न थे—का आदर्श शासन जागृत हुआ। अतः इन परस्पर लड़ते-झगड़ते और अपने सगे-सम्बन्धियों का रक्त बहाते राजाओं के सम्मुख उन्होंने राम के परिवार का आदर्श रखा, जहाँ पिता की आज्ञा-वश एक राज्य का अधिकारी पुत्र वनवास ग्रहण करता है और उसी का दूसरा भाई वंश-मर्यादा और भ्रातृप्रेम का पालन करता हुआ राज्य को ठुकरा देता है और बड़े भाई के आने तक केवल उसे धरोहर रूप में रखता है। इस आदर्श को सामने रखकर उन्होंने अपने युग में रामराज्य की स्थापना करनी चाही। रामराज्य की उच्च धारणा रखने वाले तुलसी को तत्कालीन राजाओं की अशिक्षा और क्रूरता कितनी खटकती थी, यह उनके खीझ भरे शब्दों से प्रकट है—

"नृप पाप परायण धर्म नहीं। करि दण्ड बिडम्ब प्रजा नित ही॥"

अथवा

"गोंड, गँवार नृपाल कलि, यवन महा महिपाल।
साम न दाम न भेद कलि, केवल दण्ड कराल॥" (मानस)

रविषेण और तुलसी के समय की राजनीतिक परिस्थितियों का अध्ययन करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि दोनों कवि ऐसे काल में हुए हैं जिसके पहले और बाद में अन्धकार रहा। हर्ष से पहले कोई ऐसा प्रतापी राजा रविषेण के काल में नहीं था और अकबर से पहले तुलसी के काल में। हर्ष के बाद भारत में

११८५. डा० भगीरथ मिश्र : तुलसी रसायन, पृ० २१।

एक अराजकता सी फैल गयी और अकवर के वाद भी मुगल-साम्राज्य की नींव हिलने लगी। रविषेण और तुलसी दोनों ही कवियों के काल में प्रतापी राजा हुए। हर्ष के वाद सम्राट्-पद की योग्यता धारण करने वाला अकवर ही कहा जा सकता है।

किन्तु रविषेण का काल तुलसी के काल से कहीं अधिक सम्पन्न था। उनके समय में भारतीय राजा शासक थे जव कि तुलसी के समय में विदेशी राजा भारत के शासक थे। रविषेण के समय में भारतीय राजा स्वतन्त्र थे किन्तु तुलसी के समय में प्रायः विवश और परतन्त्र। रविषेण के काल में अत्याचार और अव्यवस्था उतनी नहीं थी जितनी तुलसी के काल में। यही कारण है कि जहाँ रविषेण पर तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों का यथार्थ प्रभाव अधिक पड़ा है वहाँ तुलसी पर पड़ा प्रभाव आदर्श को जन्म देता है।

तुलसी के काल की सामाजिक स्थिति मुगल काल की सामाजिक परिस्थिति ही हैं। मुगल-काल में हमारे देश में एक महान परिवर्तन हुआ था। फलस्वरूप देश की सभी परिस्थितियाँ एकदम बदल गयी थीं। उस समय समाज का ढाँचा कुछ और था तथा व्यावहारिक स्थिति कुछ भिन्न थी। वर्ण-व्यवस्था तो तुलसी के युग में थी परन्तु प्रत्येक वर्ण अपने कर्त्तव्य भूल चुका था। ऊँच-नीच का भेद-भाव खूव चलता था। यद्यपि आश्रमों की व्यवस्था नहीं थी फिर भी साधु-सन्यासियों और योगियों का आदर होता था। व्राह्मणों ने अपने मुख्य कर्त्तव्यों के अतिरिक्त अन्य पेशे मुख्य रूप से अपना लिये थे। वे पाखण्ड तक करने लगे थे। नित्य-कर्म तक नहीं करते थे। क्षत्रियों का भी यही हाल था। उनमें जाति-अभिमान और वीरता शेष नहीं थी। राजा होकर भी वे प्रजा को चूसते थे। वैश्य लोभी हो गये थे। उन्हें अपने धन के सामने देश तथा धर्म की भी चिन्ता नहीं रह गयी थी। शूद्रों का तो अभिमान इतना प्रवल हो चला था कि वे अकारण व्राह्मणों की निन्दा करने लगे थे। इस प्रकार चारों वर्णों की दशा शोचनीय थी।

पारिवारिक जीवन में भी केवल दिखावे के लिए ही मर्यादा रह गयी थी। स्त्रियों के लिए परिवार में अनेक वन्धन थे, स्वतन्त्रता उन्हें विल्कुल नहीं थी। वे पुरुष के आश्रित रहती थीं। मुगलों और पठानों की कामुकता एवं सौंदर्यपिपासा ने स्त्रियों को एक वासनात्मक आकर्षण एवं विलासात्मक महत्त्व दे रखा था। जनसाधारण में तो नहीं परन्तु अभिजात वर्गों में वहुपत्नी की प्रथा भी थी। अकवर और जहाँगीर के हरमों में तो सैकड़ों और हजारों की संख्या में सुन्दरियाँ थी। अन्य अधिकारी वर्ग भी अनेक स्त्रियाँ रखने में गौरव का अनुभव करते थे। इससे विलासिता का ही अनुमान होता है। जब शासक ही विलासी और धनप्रिय हो

तो प्रजा का क्या हाल रहा होगा ? यह सोचना कठिन नहीं है।

समाज में ऐसे व्यक्ति कम थे जो सुखपूर्वक अपना निर्वाह करते थे। उनमें केवल राजाओं या बादशाहों के कुछ कृपापात्र ही कहे जा सकते हैं। शेष जनता निर्धन और उत्साहहीन थी। प्रायः प्रत्येक मनुष्य का परिश्रम राजाओं अथवा अधिकारीवर्ग के विलास की सामग्री जुटाने में ही लगता था। साधारण मनुष्य का जीवन सदैव आतंक, दुर्दशा और धन के अभाव में ही बीतता था। कृषि के साधनों की कमी थी। इसी कारण उर्वरा होते हुए भी भूमि से उपज कम होती थी। मूरलैण्ड ने 'जहाँगीर्स इण्डिया' के अनुवाद में लिखा है कि किसानों को यदि सिंचाई आदि के साधन मिल जाते तो उस समय उनकी पैदावार लगभग दुगुनी हो सकती थी। वास्तविकता यह थी कि उन दिनों बादशाहों को लूट—खसोट और बेगार आदि लेने की अधिक लालसा रहती थी। वे किसानों की दशा की ओर कम ध्यान देते थे। उधर धनिक-वर्ग भी अपना जीवन प्रमोद में बिताता था। किसान और दूसरे साधारण मनुष्य के लिए तो केवल दुःख और अभाव ही रह गये थे, इसी कारण समाज में दरिद्रता, आचरणहीनता, आत्मविश्वास का अभाव, जीवन के प्रति वैराग्य और अतिशय ईश्वरोन्मुखता आदि आ गये थे।

यद्यपि पूर्ववर्ती शासन से अपेक्षाकृत अकबर का शासन अच्छा था फिर भी वह सन्तोषजनक नहीं था उस समय कई बार दुर्भिक्ष पड़े थे। देश में हाहाकार मच गया था। सन् १५५६ और १५७३-७४ में जो भयानक अकाल पड़े थे उनकी स्मृति से भी हृदय काँपने लगता है।[११८६] इस समय मनुष्य-मनुष्य तक को खाने लगा था।[११८७] चारों ओर सूना ही सूना दिखाई देता था। शासकों को क्या पड़ी थी कि वे ऐसे अकाल या महामारी के समय अपनी प्रजा की रक्षा करते। अबुल-

---

११८६. दे० इलियट एण्ड डौसन ; हिस्ट्री आफ इन्डिया एज टोल्ड बाइ इट्स ओन हिस्टो-
रियन्स भाग ५ में पृ० ३८४ पर उद्धृत 'तबकात'।
इसी प्रकार १५९८ में ३-४ साल तक एक अकाल पडा जिसका उल्लेख अबुल-फजल ने
अपनी फारसी की पुस्तक 'अकबरनामा' में पृ० ६२५ पर में किया है।
(डा० एस० एस० कुलश्रेष्ठ : डेवलपमेण्ट आफ ट्रेड एण्ड इण्डस्ट्री अण्डर की मुगल्स
१५२६-१७०७ से उद्धृत)

११८७. दे० रैंकिंग : बदायूंनी का अंगरेजी अनुवाद पृ० ५४०-५५१। इलियट : वाल्यूम
५, पृ० ४९०-४९१।
डा० एस० एस० कुलश्रेष्ठ : डेवलपमेण्ट आफ ट्रेड एण्ड इण्डस्ट्री अण्डर दी मुगल्स (१५२६
१७०७ ई०) पृ० ३२।

फज़ल ने 'आइने-अकबरी[११८८] में इन दुर्भिक्षों का संक्षेप में वर्णन कर दिया है। इन विपत्तियों को तो दैविक कहकर ही शासक लोग बात टाल देते थे।

समाज की मर्यादा भी एक-दम छिन्न-भिन्न हो चुकी थी। कोई किसी की नहीं सुनता था। किसान को खेती के साधन प्राप्त नहीं थे तो भिखारी को भीख नहीं मिलती थी। वणिक् के लिए व्यापार नहीं थे तो नौकर को नौकरी नहीं थी। सभी लोग अपनी-अपनी जीविका के लिए चिन्तित थे। एक दूसरे से यही कहते थे कि क्या करें कहाँ जाएँ ? दरिद्रता-रूपी रावण ने सभी को दबा रखा था। कुछ लोग शाही नौकरी की तलाश करने लगे थे। इस प्रकार दास-वृत्ति धीरे-धीरे अपना प्रभाव दिखाने लगी थी।

१७ वें शतक के उत्तरार्द्ध में मुंशीगिरि में हिन्दुओं की संख्या खूब बढ़ी। टोडरमल ने ऐलान किया था कि सभी सरकारी काम फारसी में किया जाय। फलस्वरूप सभी हिन्दू कर्मचारियों को फारसी सीखनी पड़ी। १७ वें शतक में कितने ही सामन्त और राजा अपने फारसी पत्र लिखवाने के लिए हिन्दू मुंशियों को रखते थे और इस प्रकार उनकी संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती ही गयी।[११८९] हरकरन इतवारखानी (सन् १६२४ के बाद) प्रसिद्ध मुंशी, जिनका उपनाम चन्द्रभान था, जाति के ब्राह्मण थे।[११९०] फारसी इन दिनों जीविकोपार्जन का उसी प्रकार साधन थी जिस प्रकार अंग्रेजों के शासन काल में अंग्रेजी।

प्रत्येक सामन्त की मृत्यु पर उसकी सम्पत्ति हड़प लेने की प्रथा के कारण न जाने कितने हिन्दुओं का उच्छेद हो रहा था। सरदार के मरते ही उसकी भूमि शासक की हो जाती थी और उसका फल यह होता था कि अनेकानेक परिवार अनाथ हो जाते थे। उन्हें भीख माँगने के अतिरिक्त और कोई मार्ग न सूझता था।[११९१] सरदार के जीवनकाल में भी भूमि-अपहरण प्रणाली का समाज-घातक परिणाम होता था। सरदार लोग गुलछर्रे उड़ाते और नैतिक पतन के गर्त में गिरते थे। वे यही सोचते थे कि हमारे बाद जब हमारे परिवार को कुछ मिलना ही नहीं है तो उसे हम ही क्यों न उड़ा लें। इसी धारणा के कारण इस प्रथा ने देश के अनेक परिवारों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।

११८८. डा० एस० एस० कुलश्रेष्ठ ने अपने शोध-प्रबन्ध 'डेवलपमेण्ट आफ ट्रेड एंड इण्डस्ट्री अण्डर दी मुगल्स (१५२६-१७०७ ई०)' के पृ० ३२ पर 'आइने अकबरी' का मूल पाठ अंगरेजी अनुवाद के साथ दिया है।

११८९. सर यदुनाथ सरकार : मुगल एडमिनिस्ट्रेशन, पृ० २२७।

११९०. वही, पृ० २२८।

११९१. वही, पृ० १६५।

किसानों से लगान वसूल करने वाले कर्मचारी उन्हें लूटा करते थे। कितने ही अन्यायपूर्ण कर लगाये गये थे जिन्हें देते-देते किसान तंग आ गये थे। उधर अकाल और महामारी भी थे। फलस्वरूप कितने ही लोग अन्न के विना तड़प कर मर जाते थे।[११९२] जहाँगीर के काल में सन् १६१६ से १६२४ तक महामारी का भयानक प्रकोप रहा था।[११९३] यह लाहौर से चली थी और सरहिन्द, दिल्ली आदि होती हुई अन्तर्वेद तक पहुँची थी।

इस प्रकार तुलसी के युग की सामाजिक परिस्थिति अत्यन्त भयानक एवं निराशापूर्ण थी, यद्यपि वाद में कुछ सुधार होने लगा था। हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के त्यौहारों को आनन्दपूर्वक मनाने लगे थे।[११९४] भारतीय भाषाओं ने अरवी-फारसी के शब्द भी अपना लिये थे। मुगल-साम्राज्य की स्थापना के पश्चात् समाज को कुछ शान्ति अवश्य मिली थी परन्तु तुलसी तो राम-राज्य चाहते थे। उसकी वहाँ झलक भी कहाँ थी?

बहिःसाक्ष्य के आधार पर रविषेण और तुलसी के समय की सामाजिक परिस्थितियों का उपर्युक्त विवेचन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि रविषेण के समय सामाजिक स्थिति अपेक्षाकृत कहीं अच्छी थी। न तो इस समय भारतीय समाज विदेशियों से शासित था और न यहाँ भुखमरी आदि आपत्तियाँ थी। रविषेण के काल में चारों वर्ण ठीक काम कर रहे थे जबकि तुलसी के काल में चारों संकट में थे। पहले के काल में स्त्रियों का सम्मान था, दूसरे के काल में वे विवश और परवश थी। पहले का युग समृद्धि का युग था, दूसरे का संकट का। इसीलिए पहले ने सम्पन्न समाज को देखकर एक प्रौढ़ साहित्यिक ग्रन्थ की रचना की और दूसरे ने विपन्न समाज को देखकर लोक-रक्षक भगवान् का चरित गाया!

तुलसीकालीन धार्मिक परिस्थिति का परिचय प्राप्त करने के लिए यह अनिवार्य हो जाता है कि हम उससे पूर्ववर्ती परिस्थितियों को भली-भाँति समझ लें क्योंकि मुगलकालीन धार्मिक परिस्थितियों का मूल वहुत पूर्व का ठहरता है। गोस्वामी जी से पूर्व, देश के उत्तरी एवं दक्षिणी भागों की धार्मिक परिस्थितियाँ भिन्न थीं। इसका कारण कुछ राजनीतिक हलचलों को माना जा सकता है। दक्षिण भाग एक तो विदेशियों के आक्रमणों से मुक्त रहा है, दूसरे उस भाग की जनता को एक धार्मिक परम्परा सहज ही प्राप्त हो गयी है।

११९२. हिस्ट्री ऑव् जहाँगीर, पृ० १२३।
११९३. वही, पृ० २१५। स्मिथ: अकवर दी ग्रेट मुगल, पृ० ३९।
११९४. हिस्ट्री ऑव् जहाँगीर, पृ० १००।

वैदिक ज्ञान, उपासना और कर्मकाण्ड आदि से ही वाद की सब धार्मिक परम्पराएँ चली थीं। उपनिषद् और वेदान्त ज्ञान और चिन्तन की उत्कृष्ट अवस्था के ही द्योतक हैं। इसका वास्तविक रूप हम शंकराचार्य के भाष्य में देखते हैं। यज्ञों के बलि-विधान के विरुद्ध ही बौद्ध और जैन आदि धर्म खड़े हुए थे। वर्णा-श्रम-व्यवस्था के कारण अभिजात वर्ग के लोग निम्न जातियों से घृणा करने लगे थे। इसी कारण बौद्ध आदि धर्मों की ओर नीची श्रेणी के लोग अधिक आकृष्ट हुए। मनुष्य मात्र की समता का सिद्धान्त सबको अच्छा लगना ही था। इसी का प्रतिपादन शंकराचार्य के वेदान्त में भी मिलता है, परन्तु उनके इस मायावाद या अद्वैतवाद में जन साधारण के लिए भक्ति या उपासना को अवकाश नहीं था। दक्षिण में उपासना पर ही अधिक वल दिया जाता था। फलस्वरूप दक्षिण में शंकराचार्य के सिद्धान्त का विरोध खड़ा हुआ। शंकर के अद्वैतवाद को वहाँ नागार्जुन का शून्यवाद ही बताया गया और उन्हें एक प्रकार से 'प्रच्छन्न बौद्ध' बताया गया। यद्यपि चिन्तन के क्षेत्र में अद्वैतवाद सर्वोपरि माना गया परन्तु भाव-क्षेत्र के लिए वह कोई सामग्री न दे सका। उसमें व्यावहारिकता और दैनिक उपयोगिता की कभी थी। अतः उसकी प्रतिक्रियास्वरूप वेदान्त-सूत्रों की व्याख्याएँ अनेक विद्वानों ने कीं। रामानुजाचार्य, विष्णुस्वामी, निम्वार्काचार्य, मध्वाचार्य और वल्लभाचार्य आदि दार्शनिक लोक-भक्तों ने लोक-जीवन के उपयुक्त उनकी व्याख्याएँ प्रस्तुत की जिनमें यथासम्भव प्रचलित लोक-व्यवस्था से पूरा-पूरा मेल-जोल बैठाया गया। इस प्रकार भक्ति की एक सुदृढ़ दार्शनिक पृष्ठभूमि बन गयी थी। दक्षिण की इस भक्ति का प्रचार आगे चलकर उत्तर भारत में भी हुआ। उत्तर भारत के भक्ति-प्रचारकों में तुलसीदास भी एक थे।

उत्तर भारत की धार्मिक परम्पराएँ दक्षिण से कुछ भिन्न थीं। दक्षिण में न तो बौद्धधर्म का प्रभाव था और न इस्लाम की ही पहुँच थी। इस कारण वहाँ की परम्पराओं के अनुसार धर्म प्रगति कर रहा था, परन्तु उत्तर भारत में बौद्ध-धर्म और इस्लाम की अड़चनें विद्यमान थीं। बौद्ध-धर्म के साथ ही जैन-धर्म भी अनेक शाखाओं में वँट गया था। दोनों में ही साधना और सदाचार की कमियाँ आ चुकी थीं। फिर भी इन दोनों में समता का भाव एक आकर्षण की वस्तु थीं। फलस्वरूप योगमार्गी साधकों ने इनकी कुछ वातें लेकर अपने नये-नये सम्प्रदाय खड़े कर दिये। कोई सिद्ध कहलाये और कोई नाथ। सभी ने निरंजन ब्रह्म-ज्योति-दर्शन, अलख, अनहद-नाद-श्रवण, कुण्डलिनी-जागरण तथा समाधि आदि को अपनाया। इस प्रकार पतंजलि द्वारा पूर्वकाल में चलाया गया योग-मार्ग कई रूप धारण करके सामने आया। पहले तो इस मार्ग में ज्ञान की प्रधानता थी परन्तु

धीरे-धीरे साधना और क्रिया को महत्त्व दिया जाने लगा। कुछ ने तो बिलकुल तांत्रिक रूप ही ले लिया। इस प्रकार हीनयान, महायान, श्वेताम्बर, दिगम्बर आदि के अतिरिक्त अनेक उपभेद भी वन गये।

इनके ही समान सिर्गुण सन्त मत भी था। इसके प्रवर्त्तक कवीर माने जाते हैं। कवीर का सन्त-मत प्रायः कुछ विभिन्न मतों का सम्मिश्रण ही है जिसमें सिद्ध-नाथ-सम्प्रदाय, रामानन्द का भक्ति-सम्प्रदाय, सूफीमत और इस्लामी-मत आदि सभी मिल गये हैं। तुलसी और कवीर यद्यपि दोनों ही रामानन्दजी के शिष्यों में माने जाते हैं परन्तु इनमें से एक ने सगुण मार्ग अपनाया तो दूसरे ने निर्गुण का प्रचार किया। तुलसी और कवीर में एक यह भी अन्तर था कि कवीर की नीति खंडनात्मक थी जब कि तुलसी की नीति प्रायः मंडनात्मक ही मिलती है। कवीर ने तो रूढ़ियों का खण्डन और ज्योति-दर्शन की वात बिलकुल नाथ-सम्प्रदाय और सिद्धों की भाँति कही है। साथ ही कवीर ने रामानन्द की भक्ति-पद्धति और राम नाम को प्रमुख आधार माना है। भक्ति को उन्होंने सर्वोपरि स्थान दिया है। कवीर की इस भक्ति में सूफी प्रेम-साधना के भी दर्शन होते हैं। वास्तव में कवीर सूफी थे। जायसी और कवीर में यह था अन्तर कि जायसी 'बाशरा सूफी' थे और कवीर 'बेशरा सूफी'। प्रेम की मस्ती का जो वर्णन कवीर ने किया है वह सूफी प्रभाव ही है। इस प्रकार कवीर ने मिली-जुली भक्ति-पद्धति को ही अपनी उपासना का आधार बनाया था। आगे चलकर कवीर-पंथ की दो शाखाएँ हो गयीं—(१) सूरत-गोपाली और (२) धरमगोपाली। अधिकांश कवीरपंथी दूसरी के ही अनुयायी थे। धरमगोपाली शाखा के प्रवर्त्तक धर्मदास थे। इन शाखाओं के अतिरिक्त अन्य गौण शाखाएँ वन गयी थीं यथा—ज्ञानीपंथ, ताकसारी पंथ, सत्य-कवीर, नाम-कवीर, दान-कबीर, मंगल-कबीर, हंस-कवीर और उदासिका कवीर आदि।[११९५]

तुलसी के समकालीन दादूदयाल ने दादू-पंथ चलाया था। अकवर इनसे बड़ा प्रभावित हुआ था। फलस्वरूप अकबर ने सिक्के पर से अपना नाम हटवाकर उसकी जगह एक ओर तो 'जल्ले जलालहू' और दूसरी ओर 'अल्ला हो अकवर' लिखाया था।[११९६] दादू के भी अनेक शिष्य थे—सुन्दरदास (वीकानेर नरेश), सुन्दरदास (कवि एवं साधक) जगजीवनदास और रज्जव आदि। १७वीं शती में मलूकदासी पंथ भी विद्यमान था।[११९७] नानक-पंथ, साधो-पंथ आदि

११९५. मिडिल मिस्टीसिज्म आफ इण्डिया, पृष्ठ ११६।

११९६. वही, पृष्ठ १११।

११९७. वही, पृष्ठ १५४।

अन्य अनेक पंथ भी विद्यमान थे ।

कबीर आदि के समान ही सूफी लोग भी अपना प्रचार करते थे । पहले-पहल सूफियों का प्रभाव पंजाब और सिन्ध पर पड़ा था।[११९७(अ)] ११वें शतक में लाहौर में सूफी-धर्म का खूब प्रचार हुआ था। फिर चिश्ती वंश के सूफियों का भारत में बहुत प्रभाव बढ़ा। मुईउद्दीन चिश्ती का नाम सूफीमत के प्रचारकों में विशेष रूप से लिया जाता है। पुष्कर इनका केन्द्र था। वहाँ तो आज तक भी कुछ ब्राह्मण ऐसे हैं जो अपने को 'हुसैनी' कहते हैं। इसी परम्परा में शकरगज का भी नाम आता है। इन्होंने 'इमामशाही पंथ' चलाया था। इसके अतिरिक्त 'सुहरावर्दी-पंथ' का भी कम प्रभाव नहीं था। चिश्तीवंश की 'कादिरी शाखा' भी उल्लेखनीय थी। दाराशिकोह इसी का अनुयायी था। १६वीं और १७वीं शती में इस शाखा का उल्लेखनीय प्रभाव पड़ा था। अकबर के दरबार में भी सूफीमत का आदर होता था। सूफीमत का इतना प्रचार हो चला था कि १७ वें शतक के मध्य भाग में मुहम्मद शहदुल्ला नामक सूफी प्रचारक को कुछ लोग विष्णु का अवतार मानकर पूजने को प्रस्तुत थे।[११९८] निर्गुण की इस उपासना पद्धति के अतिरिक्त, दूसरी ओर सगुण शाखा भी चल रही थी।

स्वामी वल्लभाचार्य द्वारा प्रवर्तित सगुण भक्ति की कृष्ण-भक्ति-शाखा में अनेक पुष्टिमार्गी भक्त सामने आते हैं जिनमें सूरदास अग्रगण्य थे। इनके अन्य साथी भक्तों के अतिरिक्त मीरा का नाम भी उल्लेखनीय है। उधर रामानन्द द्वारा प्रवर्तित सगुण-मार्ग में कृष्णदास पनहारी और अनन्तानन्द आदि सामने आये। इसी परम्परा में अग्रदास और तुलसीदास का नाम भी आता है। कबीर ने निर्गुण पंथ का आश्रय इस कारण लिया था कि मुसलमान शासकों द्वारा मन्दिरों और मूर्तियों को तोड़ डालने के कारण जनसाधारण में मूर्तियों के प्रति आस्था नहीं रह गयी थी। साथ ही अवतारवाद की भावना के लिए भी गुंजाइश नहीं थी। क्योंकि जो भगवान् अपने भक्तों के लिए अवतार लेते हैं वे अपनी दुर्दशा देखकर भी अवतार न ले सके! इससे जनता की धारणा निराशामय बन चुकी थी। फिर विक्षुब्ध वातावरण को शांत करने के लिए हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य की आवश्यकता थी। फलस्वरूप कबीर ने इस्लाम वालों की भाँति मूर्ति और अवतार का विरोध तो किया परन्तु ईश्वर की सत्ता स्वीकार की। उसने हिन्दुओं की मूर्तियों का ही नहीं, अपितु मुसलमानों के रोज़े, नमाज़ और मस्जिदों तक का खण्डन किया। इसी कारण कबीर-पंथ उच्च श्रेणी के लोगों को कभी स्वीकार्य नहीं हो सका।

११९७(अ). वही, पृष्ठ ११।

११९८. मिडिल मिस्टीसिज्म ऑफ इण्डिया पृ० ३२।

उसमें तो केवल निम्न श्रेणी के लोग ही पहुँचे। तुलसी के युग तक आते-आते कवीर की प्रतिभा क्षीण हो चुकी थी, साथ ही उसका पंथ भी अनेक शाखा-उपशाखाओं में बँट चुका था।

उपर्युक्त विवरण से यह ज्ञात होता है कि तुलसी के समय में अनेक पंथ चल पड़े थे। उन्होंने कहा भी है: 'दंभिन्ह निज मति कल्पि कर प्रकट कीन्ह बहु पंथ।'

मन्दिरों की भी काफी दुर्दशा हो चुकी थी। कुछ तो मुसलमान शासकों ने तोड़ गिराये थे, जो शेष थे उनमें अनाचार का वोलवाला था। तीर्थों की भी इसी प्रकार दुर्दशा थी। शाहजहाँ के शासनकाल में बर्नियर ने भारत की यात्रा की थी। उसने जगन्नाथपुरी के मन्दिर और मेले का जो वर्णन किया है उसका वर्णन कांस्टेबल एवं स्मिथ की 'बर्नियर्स ट्रेवल्स इन दी मुगल इण्डिया' के पृष्ठ ३०४ पर देखा जा सकता है। इस पुस्तक के अन्य स्थलों पर भी जगन्नाथपुरी के अन्धविश्वास, ढोंग और व्यभिचार के नग्न चित्र प्रस्तुत किये गये हैं। बर्नियर ने योगियोंका भी बढ़ा नग्न वर्णन किया है। वह लिखता है—"विचित्र मुद्रा में आसीन, नग्न और काले लम्वी जटा और विशालनाखूनधारी योगी को देखकर जैसा भय लगता है वैसा कदाचित् नरक को भी देखकर न लगेगा।" लेखक ने ऐसे ही अन्ध अनेक योगियों का वर्णन किया है। १३ वीं और १४ वीं शती के ऐसे ही योगियों का उल्लेख मार्कोपोलो ने भी किया है। ये खड़े निष्ठुर और पाखण्डी होते थे, नग्न ही इधर उधर घूमा करते थे, शरीर पर भस्म लगाते थे। इब्नवतूता के वर्णन से जान पड़ता है कि लोग इन्हें सिद्ध समझते थे। इस प्रकार तुलसीकालीन विभिन्न मत और सम्प्रदाय पाखण्ड और अनाचार तक फैलाने लगे थे।

तुलसी का मार्ग न तो इन सबके खण्डन के लिए था और न किसी दार्शनिक सिद्धांत के प्रतिपादन के लिए ही। उन्होंने तो उदासीन और निराशापूर्ण वातावरण में आशा और आकर्षण की आवश्यकता का अनुभव किया था। इस आकर्षण को वे धार्मिक चेतना के रूप में उत्पन्न करना चाहते थे। फलस्वरूप वे अपने इष्ट राम का ऐसा चरित्र लेकर सामने आये जिसमें लोक-जीवन को प्रेरित करने की सारी शक्ति और विशेषताएँ विद्यमान थी। उन्होंने हमें लोकधर्मयुक्त दर्शन दिया। इस प्रकार धार्मिक पृष्ठभूमि तुलसी के दृष्टिकोण का निर्माण करती हुई एक आवश्यकता की पूर्ति करने को उन्हें प्रेरित करती है। इन परिस्थितियों के बीच रखकर ही हम तुलसी की रचनाओं का ठीक-ठीक महत्त्व आँकने में समर्थ हो सकते हैं। उन्होंने अपने 'रामचरितमानस' में अपने समय की सभी कमियों की पूर्ति की चेष्टा की, विभिन्न प्रश्नों के सही उत्तर दिये और पथभ्रष्ट लोगों को सुमार्ग दिखाया।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जहाँ रविषेण के काल में ब्राह्मण धर्म, जैन धर्म और बौद्धधर्म ही प्रधान रूप से भारत में व्याप्त थे वहाँ तुलसी के काल में इनके अतिरिक्त विविध सम्प्रदायों और धर्मों का भी अस्तित्व था। जहाँ रविषेण का युग हिन्दू-धर्म के चरमोत्कर्ष को धारण करने वाला था वहाँ तुलसी का युग हिन्दू-धर्म की अवनति देखकर व्याकुल था। रविषेण के काल में भारतभूमि में उत्पन्न धर्म ही राजधर्म थे जबकि तुलसी के काल में विदेशी धर्म भी भारत के राजधर्म थे। तुलसी के काल में भारत में बाहरी धर्म भी अपना प्रचार करने लगे थे एवं इससे देश को पर्याप्त धक्का लगा क्योंकि धार्मिक विद्वेष का पर्याप्त सूत्रपात होने लगा था। हाँ, इतना अवश्य है कि तुलसी के युग में भक्ति-आन्दोलन खूब चला जिसका धार्मिक परिस्थितियों के निर्माण में अद्भुत योगदान रहा। भाव यह है कि रविषेण के काल की धार्मिक परिस्थितियों की अपेक्षा तुलसीकालीन धार्मिक परिस्थितियाँ पर्याप्त बिगड़ी हुई और चुनौती देने वाली थीं।

तुलसीकालीन साहित्यिक परिस्थिति का विवेचन करते समय हमें ज्ञात होता है कि तुलसी से पूर्व अनेक कवि 'प्राकृतजन-गुणगान' कर चुके थे। वीरगाथाकाल के कवियों ने प्रेम और वीरता से पूर्ण रचनाएँ की थीं। चन्द, नरपतिनाल्ह और जगनिक आदि कवि अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा करके ही रह गये। जनसाधारणके लिए उनका इतना उपयोग न था। उन ग्रन्थों की अत्युक्तियाँ एवं अतिशयोक्तियाँ भी उन्हें अस्वाभाविकता की ओर अधिक ले जाती दिखाई देती हैं। 'रासो' नामक ग्रन्थों की घटनाएँ प्रायः इतिहास से मेल नहीं खाती। उनमें तो केवल तत्कालीन राजाओं के पारस्परिक युद्ध और शौर्य-प्रदर्शन या किसी कुमारी के अपरण का ही वर्णन मिलता है।

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त कुछ ऐसी भी रचनाएँ होती थीं जिनका उद्देश्य केवल कामुकता को जगाना ही होता था। ऐसी रचनाएँ प्रायः बादशाहों और नवाबों के दरबारों में ही चलती थीं। विजय, बधाई, विवाह, राज्यतिलक और जन्म-दिवस सम्बन्धी रचनाएँ भी दरबारों में पढ़ी जाती थीं। इन रचनाओं पर कवियों को इनाम मिलते थे। किसी ने चार पंक्तियों की कविता पढ़कर हाथी प्राप्त कर लिया था तो किसी ने गाँव। एक कविता पर दस हजार रुपये के इनाम के मिलने का उल्लेख मिलता है जिसमें केवल यही बात कही गयी है कि जहाँगीर के सामने सिखाये गये तेंदुवे ने किस प्रकार जंगली भैंसे पर प्रहार किया।[११९९]

इस्लाम के प्रचार के लिए कुछ मुसलमान सूफी भक्त प्रेम-कहानियाँ लिख

११९९. मुगल एडमिनिस्ट्रेशन पृ० १६२-१६३

रहे थे। उनमें मलिक मुहम्मद जायसी, कुतुबन, मंझन और उसमान आदि उल्लेखनीय हैं। इनके पात्र साधारण राजा-रानी होते थे परन्तु उनके माध्यम से वे ईश्वर की ओर संकेत किया करते थे। पद्मावत, मृगावती, मधुमालती और चित्रावली आदि रचनाओं में इन कवियों ने इसी प्रकार की प्रेमकथाएँ लिखी हैं। इन सभी में विरह को प्रधानता दी गयी है। कहानी के बीच-बीच में ये कवि इस्लाम धर्म-सम्बन्धी बातें भी कहते चलते हैं। हिन्दू-मुस्लिम-एकता भी इन कवियों का एक उद्देश्य था।

इसी के साथ निर्गुण पंथ भी चल रहा था। इसमें कबीर, दादू, सुन्दर, मलूक, नानक और रैदास आदि सन्तकवि पदों की रचना कर रहे थे। ये सभी जाति-पाँति के विरुद्ध थे। नीति सभी की खण्डनात्मक थी। कबीर की रचनाएँ 'बीजक' नाम से प्रसिद्ध हैं। इनमें सबद, रमैनी और साखी—तीनों का संग्रह है। निर्गुण-साहित्य निराकार ब्रह्म का मार्ग प्रशस्त कर रहा था और हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए प्रयत्नशील था। बाह्य आडम्बरों को इन सभी निर्गुणपंथियों ने फटकारें सुनायी हैं। इन लोगों में साहित्यिक ज्ञान की कमी थी। केवल एक सुन्दरदास ही पढ़े-लिखे व्यक्ति थे। शेष सब सन्त ही थे। उन्होंने सत्संग से जो भी सुना या पाया, उसे ही वे कह गये।

तत्कालीन मुगल-शासन की ओर से भी साहित्यिक प्रगति में सहयोग दिया जा रहा था। अबुल फजल और फैजी अकबर के समय के उत्कृष्ट विद्वानों में से थे। अबुल फज़ल-कृत **'आइने-अकबरी'** और **'अकबरनामा'** सदृश फारसी के श्रेष्ठ ग्रन्थ भी इसी युग की रचनाएँ हैं। फैजी फारसी का मर्मज्ञ कवि और संस्कृत का अच्छा ज्ञाता था। निजामुद्दीन अहमद ने **'तबकाते-अकबरी'** और 'अब्दुल बदायूंनी' ने **'मुंतखबुततवारीख'** की रचना भी इसी समय की थी।[१२००] बादशाह ने अथर्ववेद, महाभारत, रामायण, पंचतन्त्र आदि अनेक संस्कृत ग्रन्थों का फारसी में अनुवाद कराया था।[१२०१] एक विशाल पुस्तकालय की भी स्थापना की गयी थी, जिसमें २४ हजार हस्तलिखित ग्रन्थ विद्यमान थे। फारसी के अतिरिक्त हिन्दी में भी बहुत कुछ लिखा जा रहा था। अकबर स्वयं ब्रजभाषा की कविता का प्रेमी था। वह स्वयं ब्रजभाषा में कविता भी लिखता था। अब्दुर्रहीम खान-खाना जैसे उसके कुछ अधिकारी भी काव्यरचना करते थे। अन्य दरबारी कवियों में महापात्र, नरहरि बन्दीजन, महाराजा टोडरमल, महाराज बीरबल,

---

१२००. भारतवर्ष का इतिहास, पृ० २५७-५८।
१२०१. वही, पृ० २५८।

गंग, मनोहर कवि, केशवदास, होलराय और पुहकर कवि आदि उल्लेखनीय है।[१२०२] ये कवि प्रायः शृंगार और नीति या कभी-कभी वीर रस की कविता लिखा करते थे। सैयद मुबारक अली ने तो नायिका के अलक और तिल पर भी **'अलक-शतक'** और **'तिल-शतक'** तैयार कर डाले थे। इस समय की वीरता की कविताओं में केवल अपने आश्रयदाता की चाटुकारिता ही मिलती है। रहीम के अतिरिक्त सभी कवियों की नीति की रचनाएँ विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं कही जा सकतीं। इस प्रकार अकबर के दरबारी कवियों ने प्रायः मुक्तक रचनाएँ ही लिखीं। कुछ लोगों ने प्रबन्ध-काव्य भी लिखे। केशवदास ने **'वीरसिंह देवचरित'**, **'जहाँगीर-जसचन्द्रिका'** और **'रामचन्द्रिका'** की रचना की थी। पुहकर कवि ने 'रसरतन' लिखा था।[१२०३]

इस प्रकार तुलसी के युग में अनेक प्रकार की रचनाएँ लिखी जा रही थीं। तुलसी ने अपने युग की प्रचलित सभी शैलियों में साहित्य रचना की है। तुलसी के युग में प्रचलित शैलियाँ इस प्रकार थीं—(१) **कवित्त-छप्पय-पद्धति**—इस पद्धति को वीरगाथा-काल के कवियों ने अपनाया था। उन्होंने अपने आश्रयदाताओं की वीरता की प्रशंसा इन्हीं छन्दों में की थी। तुलसी ने अपने राम की वीरता आदि के प्रसंगों में इन्हीं छन्दों को अपनाया है। इनके उदाहरण उनकी कवितावली में देखे जा सकते हैं। (२) **सिद्ध, नाथ और सन्त कवियों की साखी-पद्धति**—यह उपदेश प्रधान है और इसमें दोहे लिखे गये हैं। तुलसी की 'वैराग्य-सन्दीपनी', 'रामाज्ञा-प्रश्न' तथा 'दोहावली' में यही शैली अपनायी गयी है। (३) **सूफी कवियों की दोहा-चौपाई-पद्धति**—इसका प्रयोग जायसी, कुतुबन और मंझन आदि प्रेममार्गी कवियों ने किया है। इसी पद्धति का प्रयोग तुलसी ने अपने 'राम-चरितमानस' में किया है। (४) **कवित्त-सवैया-पद्धति**—गंग और नरहरि आदि कवियों ने इस पद्धति में ही लिखा है। तुलसी की कवितावली में इस पद्धति का भी दर्शन होता है। (५) **पद-पद्धति**—पदों का प्रयोग कृष्ण-भक्त कवियों सूर और अष्टछाप के अन्य कवियों ने किया था। तुलसी ने इस पद्धति का प्रयोग गीतावली, कृष्णगीतावली और विनयपत्रिका में किया है। इन पदों में भाव-गाम्भीर्य और काव्य-सौन्दर्य दोनों का मणि-कांचन-संयोग दिखाई देता है। (६) **लोकगीत-पद्धति**—लोक में प्रचलित अनेक गीतों ने भी तुलसी को प्रभावित किया था। ये गीत मांगलिक उत्सवों पर गाये जाते थे। उन्होंने पार्वती-मंगल, जानकी

१२०२. रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३२३।

१२०३. वही, पृ० ३२३

मंगल, रामलला नहछू और कहीं कवितावली तथा गीतावली तक में इन लोक-गीतों को अपनाया है। पुत्रोत्सव का सोहर 'नहछू' के समय गाया गया है। कवितावली में कहीं-कहीं 'झूलना' नामक लोक-छन्द का भी प्रयोग किया गया है।

इन प्रचलित पद्धतियों के अतिरिक्त तुलसी ने प्रबन्ध और मुक्तक दोनों प्रकार के काव्यों की रचना की है। विनयपत्रिका जैसी गीतिकाव्य की रचना एक आश्चर्यजनक कृति है। वास्तव में जन-रुचि का ध्यान रखकर ही तुलसी ने इन विविध शैलियों में राम का चरित्र प्रस्तुत किया है।

रविषेणकालीन और तुलसीकालीन साहित्यिक परिस्थितियों में कुछ साम्य और कुछ अन्तर है। साम्य इतना है कि दोनों के काल में संस्कृत और हिन्दी के अनुपम काव्य रचे गये। यदि एक ओर संस्कृत में दण्डी, वाण, सुवन्धु आदि ने अपनी रचनाओं के रूप में अनन्वय अलंकार के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं तो दूसरी ओर तुलसी ने भी। दोनों कवियों के समय में कलापक्ष का उन्नयन हुआ। किन्तु रविषेण के काल में स्वच्छन्द साहित्यिक परम्परा का जैसा वृंहण हुआ वैसा तुलसी के काल में नहीं। रविषेण के काल में प्रौढ़ि अभिनन्दनीय थी किन्तु तुलसी के काल में 'भाषा-निबन्ध' की आवश्यकता पढ़ने लगी थी। रविषेण के काल में हम अपनी भाषा पढ़ने के लिए लालायित रहते थे किन्तु तुलसी के काल में दूसरे देश की भाषा पढ़ने को विवश। रविषेण के काल में महाकाव्यों के प्रणयन और मनन का पर्याप्त अवसर था, तुलसी के काल में प्रायः मुक्तकों की रचना एवं श्रवण का अवकाश। भाव यह है कि रविषेणकालीन साहित्यिक परिस्थितियाँ अधिक स्वस्थ थीं।

उपर्युक्त परिस्थितियों में दोनों कवियों ने अपने-अपने ग्रन्थों का प्रणयन किया है। निश्चय ही अपने समय की परिस्थितियों ने उनकी रचनाओं को पर्याप्त प्रभावित किया है।

रविषेण और तुलसी के समय की परिस्थितियों का तुलनात्मक परिचय देने के अनन्तर हम 'पद्मपुराण' और 'रामचरितमानस' की विविध दृष्टियों से तुलना करना औपयिक समझते हैं। पद्मपुराण के विविध पक्षों पर यथासम्भव विस्तार के साथ प्रस्तुत ग्रन्थ के दशम अध्याय तक लिखा जा चुका है। एकादश अध्याय के प्रारम्भ में तुलसी से पूर्व रामकाव्य-परम्परा की संक्षिप्त चर्चा के साथ राम-चरितमानस का प्रकृतोपयोगी संक्षिप्त परिचय दिया जा चुका है। आगे हम पद्म-पुराण और मानस की विषयवस्तु, पात्र एवं चरित्र-चित्रण, भावपक्ष, कलापक्ष, धर्म और संस्कृति की दृष्टि से तुलनात्मक समीक्षा करेंगे।

पद्मपुराण और मानस की विषयवस्तु : पद्मपुराण और मानस दोनों में ही राम की कथा कही गयी है। अतः स्वाभाविक है कि दोनों के कथानक में कुछ

साम्य भी दृष्टिगत हो। किन्तु कथा कहने वाले दोनों कवियों का दृष्टिकोण एवं परम्परा पृथक्-पृथक् हैं, अतः दोनों के ग्रन्थों की विषयवस्तु में वैषम्य भी पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है, जिसका परिचय वक्ष्यमाण सामग्री के माध्यम से दिया जा रहा है।

साम्य : आचार्य रविषेण और गोस्वामी जी ने अपने-अपने ग्रन्थों को प्रायः समान रूप से ही प्रारम्भ किया है। दोनों ने धूमधाम से लम्बा मंगलाचरण सज्जन-गुणकीर्तन, अभिधा अथवा व्यंजना से दुर्जन-निन्दा एवं आत्म-विनय का प्रदर्शन किया है।

दोनों ने रामचरित के माहात्म्य का व्याख्यान किया है। दोनों के लिए राम-कथाकार नमस्य हैं। दोनों की ही रामकथाओं का उपस्थापन प्रश्न या शंका के उत्तर में हुआ है। वक्ता या श्रोता का संवाद अनवरत चलता रहता है।

दोनों ग्रन्थों में रावण के दो भाई (भानुकर्ण या कुम्भकर्ण एवं विभीषण) एवं एक बहिन (शूर्पनखा या चन्द्रनखा) है। दोनों में रावण का वीरत्व और दशाननत्व सिद्ध है। सिद्धि-प्राप्ति के हेतु रावण, कुम्भकर्ण एवं विभीषण की तपस्या का वर्णन है जिसके फलस्वरूप उन्हें सिद्धि या वरदान प्राप्त होते हैं। मयसुता मन्दोदरी से रावण का विवाह, युद्ध द्वारा रावण की लंका-विजय, रावण का पुष्पक-लाभ, रावण-मारीच-सम्बन्ध, इन्द्र, वरुण आदि अनेक प्रतापी पात्रों और अन्य राजाओं पर रावण की विजय एवं उसका भक्त रूप दोनों ग्रन्थों में वर्णित हैं। सहस्रकिरण (सहस्रार्जुन) की जल-क्रीडा, उससे रावण को क्रोध एवं उससे युद्ध का दोनों में उल्लेख है। अनेक राजाओं से रावण के युद्ध एवं उन्हें जीतने का दोनों में वर्णन है।

दोनों काव्यों में, दशरथ अयोध्याधिपति हैं। उनके राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न--ये चार पुत्र हैं। राम कौशल्या के, लक्ष्मण सुमित्रा के एवं भरत कैकेयी के पुत्र हैं। जनक मिथिला के राजा हैं; उनकी पुत्री सीता से राम का विवाह होता है; इसके लिए धनुष-सम्बन्धी शर्त है जिसे अनेक राजाओं एवं राजकुमारों में केवल राम ही पूरा कर पाते हैं। सीता-सहित राम के अयोध्या लौटने पर आमोद-प्रमोद होता है, नगरी की सज्जा होती है। दशरथ अपने वार्द्धक्य–आगमन पर राम का अभिषेक करना चाहते हैं किन्तु कैकेयी (केकया) इस समय राजा द्वारा पूर्वकाल में प्रतिश्रुत वर माँग कर भरत को राज्य दिलाती है एवं राम-लक्ष्मण-सीता वन को जाते हैं। भरत अपनी माता के इस कृत्य का विरोध करता है। लक्ष्मण भी इस काण्ड पर क्षुब्ध दिखाई देते हैं। वनगमन–वेला में राम का माता से विदा माँगना एवं उसे प्रबोध देना, रामरहित अयोध्या की उदासी एवं नागरिकों

की पीड़ा सजीव रूप में वर्णित है। राम का लक्ष्मण एवं सीता के साथ वनगमन एवं भरत का राम-माता के पास आकर परिदेवन दोनों काव्यों में उपनिवद्ध है।

दोनों काव्यों में, भरत वनवासी राम को लौटाने के निमित्त जाते हैं। भरत की माता भी इस समय उनके साथ होती है। राम किसी भी प्रकार लौटना स्वीकार नहीं करते एवं भरत को ही शासन-संचालन के लिए कहते हैं। वन-भ्रमण करते हुए राम-लक्ष्मण-सीता चित्रकूट पर जा पहुँचते है, अनेक मुनियों के दर्शन करते है, दण्डक-वन में प्रवेश करते हैं। दोनों ग्रन्थों में, रावण की वहिन राम-लक्ष्मण पर मुग्ध होकर उन्हें मोहित करना चाहती है, राम अपने को विवाहित कह कर छुटकारा पा लेते हैं और उसे लक्ष्मण के पास भेजते है जिस पर लक्ष्मण उसका तिरस्कार करते हैं, वह भयंकर रूप धारण कर उनको त्रस्त करने का प्रयास करती है जो निष्फल होता है। रावण-भगिनी अपने तिरस्कार से खर-दूषण को परिचित कराती है जिससे क्रुद्ध खर-दूषण का राम-लक्ष्मण से युद्ध होता है एवं राम-लक्ष्मण विजयी होते हैं। रावण की वहिन अपने अपने भाई (रावण) को राम-लक्ष्मण के अविनय का परिचय देकर उनके विरुद्ध उसे भड़काती है एवं सीता सुन्दरी का परिचय देती है। रावण सीता को चुरा लेना चाहता है। दोनों में—एक भाई सीता की रक्षा के निमित्त उसके पास रहता है और दूसरे भाई के संकेत पर उसकी सहायता के लिए जाता है। इधर एकाकिनी सीता को पाकर रावण उसका हरण कर लेता है एवं राम-लक्ष्मण एक दूसरे को देखकर सीता के विपत्ति-ग्रस्त होने की आशंका करते है।

दोनों ग्रंथों में, रावण सीता को विमान पर चढ़ाकर लंका ले जाता है, मार्ग में सीता को बचाने के निमित्त जटायु रावण से संघर्ष करता है किन्तु पराजित होता है और सीता विलाप करती जाती है। लंका के उपवन में सीता को अशोक वृक्ष के नीचे स्थान दिया जाता है, जहाँ वह रावण के प्रेम-प्रस्ताव को ठुकरा देती है।

दोनों ग्रंथों में, राम-लक्ष्मण के लौटने पर उनकी व्याकुलता एवं वन की शून्यता के साथ भयंकरता का वर्णन है। जटायु द्वारा सीता-हरण की सूचना, जटायु की मृत्यु, राम का मार्मिक एवं विस्तृत विलाप, जंगल-जंगल भटकना एवं प्रकृति से सीता की सुधि पूछना-दोनों ग्रंथों में निवद्ध है।

रावण का सीता के प्रति वारम्बार प्रेम-प्रस्ताव, लोभ-भय-दर्शन एवं बल-वैभव में राम-लक्ष्मण का अपनी अपेक्षा लघुत्व-प्रतिपादन दोनों ग्रथों में है। इसी प्रकार सीता की रावण को बार-बार फटकार, तिनके की ओट में उसे धिक्कारना मन्दोदरी का रावण को समझाना एवं सीता को ससम्मान लौटाने की राय देना,

रावण का क्षणभर के लिए हाँ में हाँ मिला कर फिर अपनी पर आ जाना, सीता को अपने प्रेमपाश में बाँधने के लिए उसका विविधि यत्न करना एवं सीता की अपने व्रत से अडिगता उभयत्र है।

दोनों ग्रंथों में, किष्किन्धपुरवासी सुग्रीव बालि का भाई है। सुग्रीव के साथ युद्ध करके उसका प्रतिद्वन्द्वी उसका राज्य और पत्नी छीन लेता है। निराश सुग्रीव राम की शरण लेता है। उसके साथ हनुमान, अंगद आदि अनेक पात्र राम के निकट आते हैं। पत्नीहरण-रूप समान विपत्ति से ग्रस्त राम-सुग्रीव की मैत्री होती हे जिसमें दोनों के द्वारा परस्पर सहायता की प्रतिज्ञा होती है। राम-सुग्रीव की विपत्ति दूर करने का वचन देते हैं और सुग्रीव सीता की खोज कराने का। सुग्रीव का अपने प्रतिद्वन्द्वी से युद्ध होता है एवं उसे चोट लगती है। राम उन दोनो में पहले यह नहीं पहचान पाते कि कौन असली सुग्रीव है और कौन प्रतिद्वन्द्वी? बाद में किसी प्रकार से पहचानकर अपने बाण से सुग्रीव के प्रतिद्वन्द्वी को मार देते हैं। निस्सपत्न सुग्रीव राज्य और पत्नी का लाभ कर विलासग्रस्त हो जाता है एवं सीता-खोज के प्रति प्रमादी हो जाता है। इस पर उसे प्रबुद्ध करने के लिए राम लक्ष्मण को भेजते हैं। लक्ष्मण सुग्रीव को डाँटते हैं जिस पर वह उनकी खुशामद करके क्षमा याचना करता है एवं उनके आदेशानुसार सीता-न्वेषण के लिए वानर-वीरों को चतुर्दिक् प्रस्थापित करता है। अनुचरों द्वारा सीता की लंका में स्थिति जानकर हनुमान को लंका भेजा जाता है, परिचय के लिए राम उन्हें अपनी अँगूठी देते हैं। समुद्र-तट पर एक पात्र (विद्याधर या सम्पाति) उन्हें सीता-विषयक परिचय देता है।

समुद्र पार कर हनुमान का लंका-प्रवेश, लंकिनी या लंकासुन्दरी से भेंट एवं उससे युद्ध, उसका हनुमान का शुभचिंतक बनना, हनुमान का विभीषण-गृह-गमन एवं उससे आतिथ्य-लाभ, उसके द्वारा अशोकवृक्षतलस्थित सीता का ज्ञान प्राप्त कर उसका उपवन-गमन, विरहिणी सीता की दशा देखकर हनुमान का दुःखी होना एवं अँगूठी गिराना, अँगूठी देखकर सीता का हर्ष—विषाद, सीता-हनुमान-परिचय, सीता के राम-लक्ष्मण की कुशल पूछने पर हनुमान द्वारा राम के वियोग का मार्मिक वर्णन, सीता द्वारा अपनी व्यथा का वर्णन एवं राम-लक्ष्मण के प्रति अपनी विपत्ति दूर करने का संदेह, हनुमान द्वारा उपवन-विध्वंस, रक्षक—मर्दन, अनेक योद्धाओं का संहार, हनुमान के निग्रहार्थ इन्द्रजित् का उपवन में आगमन, दोनों का भयंकर युद्ध, इन्द्रजित् द्वारा पाश फेंकना और हनुमान का जान बूझकर उसमें फँसना, पाशबद्ध हनुमान का रावण की सभा में उपस्थापन, हनुमान-रावण-संवाद, जिसमें रावण को सन्मार्ग पर चलने की सलाह दी गयी, सीता को लौटाने को

कहा गया तथा राम के पराक्रम का परिचय दिया गया, क्षुब्ध रावण का हनुमान को मारने एवं अपमानित कर नगर में घुमाने का आदेश और हनुमान का सबको डराकर एवं लंका में त्राहि-त्राहि मचाकर सीता की चूड़ामणि लेकर लौटना उभयत्र वर्णित है।

लंका-निवृत्त हनुमान (अथवा हनूमान) का राम-लक्ष्मण-सुग्रीव आदि द्वारा सत्कार, उससे सीता की व्यथा-कथा एवं संदेह सुनकर राम की भावविभोरता एवं उसे गले लगाना, राम-सुग्रीव आदि के द्वारा मिलकर सीता को लौटाने के हेतु लंका पर चढ़ाई, वानर-सेना-प्रस्थान पर शुभ शकुन एवं मार्ग में नल द्वारा समुद्र की समस्या का हल होना—ये विषय दोनों ग्रंथों में हैं।

विभीषण द्वारा वारम्बार प्रबुद्ध किये जाने पर भी रावण का न मानना, उसका राम के पक्षपाती विभीषण पर क्रोध एवं उसका लंकानिर्वासन, विभीषण का राम की सेना में उपस्थित होना, प्रथम साक्षात्कार में ही राम का विभीषण को परम सम्मान-दान एवं उसके लंकाधिपतित्व का विचार, युद्ध का प्रारम्भ, कई दिन युद्ध चलना, सायंकाल को युद्ध-विराम, हनुमान-मेघनाद-युद्ध, कुम्भकर्ण का शरीर देखकर वानर-सेना का भयभीत होना, विभीपण-रावण-युद्ध, रावण द्वारा विभीषण पर शक्ति-प्रहार एवं राम द्वारा उसका वचाव, इन्द्रजित-लक्ष्मण-युद्ध, लक्ष्मण का शक्ति प्रहार से मूर्च्छित होना, मूर्च्छित लक्ष्मण के चिकित्सक द्वारा रात-रात में ही औषध-प्रबन्ध की अनिवार्यता का प्रतिपादन अन्यथा लक्ष्मण के जीवन की संदिग्धता का कथन, शक्ति-मूर्च्छित भाई की दशा देखकर रामद्वारा अत्यन्त मार्मिक करुण विलाप, व्याकुल राम की विभीषण-विषयक चिन्ता, हनुमान द्वारा औषध लाना, हनुमान-भरत का अयोध्या में साक्षात्कार, औषध आ जाने पर लक्ष्मण का प्रकृतिस्थ होना एवं युद्धार्थ सन्नद्ध होना—ये विषय भी उभयत्र हैं।

युद्ध-विराम होने पर रावण की सिद्धि-साधना, अंगद द्वारा उसमें अनेक प्रकार से विघ्नोपस्थापन, रावण का पुनः क्रोध, उसका सीता के पास जाकर एक बार फिर प्रेम-प्रस्ताव, सीता द्वारा उसका पूर्ण प्रत्याख्यान, राम-लक्ष्मण के साथ रावण का भीषण युद्ध, रावण के लिए अपशकुन तथापि उसका मायायुद्धादि करना एवं अन्त में युद्धस्थल में मारा जाना, उसकी मृत्यु पर मन्दोदरी का करुण मार्मिक विलाप, मृत रावण का क्रिया-कर्म, लंका के सिंहासन पर विभीषण का अभिषेक, सीता-राम-मिलन, विभीषण द्वारा राम-लक्ष्मण को लंकागमन का निमंत्रण तथा उनके प्रति कृतज्ञता—ये विषय उभयत्र निबद्ध हैं।

इसी प्रकार राम का सीता-लक्ष्मण सहित अयोध्या के लिए प्रस्थान, उनका

मार्ग में सीता को अनेक स्थान दिखाना, उनके साथ हनुमान-सुग्रीवादि का भी आना, आकाश से ही उन्हें अयोध्या की सजावट का दिखाई देना, अयोध्यावासियों को दूत द्वारा रामागमन की सूचना, नगर से बाहर ही राम का विमान से उतारना, भरत आदि द्वारा उनकी अगवानी, राम-लक्ष्मण-सीता का सबसे मिलन (विशेषतया माताओं से), अयोध्या के वैभव-समृद्धि का वर्णन, राम का अभिषेक एवं राम का हनुमान सुग्रीव आदि सहायकों को ससम्मान विदा करना, राम-राज्य-वर्णन एवं प्रजा जनों की सुसम्पन्नता दोनों ग्रंथों के विषय हैं।

साथ ही सीता की अग्नि-परीक्षा का भी दोनों ग्रन्थों में वर्णन है।

किंतु 'पद्मपुराण' और 'मानस' की विषयवस्तु में साम्य की अपेक्षा **वैषम्य** अधिक दृष्टिगत होता है। श्रमण-संस्कृति और वर्णाश्रम-व्यवस्था के विश्वासी रविषेण और तुलसीदास ने अपने-अपने ग्रंथों में अपनी-अपनी परम्पराओं में अपनी बुद्धि और प्रतिभा के अनुसार कुछ जोड़ा है एवं कुछ घटाया है **पद्मपुराण** की कथा यद्यपि **वाल्मीकि-रामायण** से पर्याप्त प्रभावित है और तुलसी भी आदि-कवि के ऋणी हैं तथापि यह नहीं कहा जा सकता कि दोनों की कथा एक ही है। दोनों कवियों का दर्शन एक दूसरे का विरोधी है। एक वेदनिंदक है तो दूसरा वेदविश्वासी; एक राम को महापुरुष, और अपने कर्म के द्वारा मोक्ष प्राप्त करने वाला '**भव्य**' प्राणी मानता है तो दूसरा उन्हें मर्यादापुरुषोत्तम के साथ **भगवान्** भी मानता है जिसने धर्म के हेतु अवतार ग्रहण किया है। राम के इस चरित्र को निबद्ध करते समय दोनों कवियों के दृष्टिकोण ही 'पद्मपुराण' और 'मानस' की विषयवस्तु के वैषम्य के हेतु हैं।

'पद्मपुराण' की विषयवस्तु का विस्तृत विवेचन पीछे किया जा चुका है[१२०४] जिसके साथ 'मानस' की विषयवस्तु का मिलान करने पर दोनों में पुष्कल वैषम्य की प्रतीति होती है। 'पद्मपुराण' में सर्वप्रथम महावीर-वंदना है तो 'मानस' में वाणी-विनायक की।[१२०५] इसके बाद 'पद्मपुराण' में कुलकरों तथा तीर्थंकरों की वंदना है तो मानस में भवानी-शंकर, गुरु, कवीश्वर, कपीश्वर-उद्भवस्थिति-संहारकारिणी क्लेशहारिणी, सर्वश्रेयस्करी, रामवल्लभा,[१२०६] सीता आदि की। यद्यपि आरंभ में ही यह प्रतिभासित होने लगता है कि दोनों कवि किसी महा-काव्य के प्रणयन की तैयारी कर रहे हैं फिर भी मानस के मंगलाचरण का जो

१२०४. प्रस्तुत ग्रन्थ का चतुर्थ अध्याय।

१२०५. वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।
मंगलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ ॥ (मानस, बाल,० श्लोक १)

१२०६. मानस, बालकाण्ड, श्लोक २-५।

प्रभाव पड़ता है वह पद्मपुराण के मंगलाचरण का नहीं। मानस के आरम्भ में पर्याप्त विस्तार के साथ विभिन्न देवी-देवताओं, महात्माओं, ऋषि-मुनियों, संतों, असंतों, राम-नाम, सगुण और निर्गुण आदि की वंदना के साथ अन्त में **'सीय-राममय'** जान कर समस्त जग को करवद्ध प्रणाम किया गया है जिसका पाठक पर व्यापक और गंभीर प्रभाव पड़ता है। 'पद्मपुराण' के मंगलाचरण में शाब्दिक चमत्कार के साक्षात्कार होते हैं तो मानस के मंगलाचरण में कवि की लोक-व्यापी दृष्टि के। इसके वाद 'पद्मपुराण' में राम-कथा की भूमिका के रूप में उपस्थापित राजा 'श्रेणिक' का महावीर के समवरण में जाकर धर्मोपदेश सुनना तथा रात्रि को वानर-राक्षसों के विषय में संदिग्धचित्त होकर अगले दिन प्रातः काल गौतम गणधर से राम कथा सुनना आदि मानस में नहीं है। 'मानस' में याज्ञ-वल्क्य-भारद्वाज, शिव-पार्वती और काक भुशुंडि-गरुड़ के वार्तालाप-प्रसंग से रामकथा कहलायी गयी है। 'मानस' के नारद-मोह, शिव-पार्वती-विवाह एवं मनु-शतरूपा के उपाख्यान 'पद्मपुराण' में नहीं हैं। 'पद्मपुराण' में प्रदत्त राक्षस वंश और वानर-वंश का विस्तृत परिचय मानस में नहीं हैं। 'मानस' में रावण, कुंभकर्ण, सूर्पनखा तथा विभीषण के जन्म से ही राक्षस-वंश का परिचय मिलता है। वहाँ इनके पूर्वजन्म की कथा कही गयी है जिसके अनुसार प्रतापभानु रावण वनता है, अरिमर्दन कुंभकर्ण और धर्मरुचि विभीषण। 'मानस' में विभीषण रावण का सौतेला भाई है, सगा नहीं। 'मानस' के वानरवंशी हनुमान, सुग्रीव, आदि वंदर ही हैं, विद्याधर नहीं। पद्मपुराण में रावण के मुख का हार में प्रति-बिम्व पड़ने के कारण उसका नाम **'दशानन'** पड़ता है किंतु 'मानस' में रावण के दस मुख ही वताये गये हैं। 'पद्मपुराण' में वर्णित दशानन आदि भाइयों की विद्या-सिद्धि एवं अनेक स्त्रियों की प्राप्ति, रावण के प्रति उपरम्भा की आसक्ति तथा रावण की अपने ऊपर अननुरक्त परकीया नारी के अनुपभोग की प्रतिज्ञा आदि का 'मानस' में कोई संकेत नहीं है। 'मानस' में खर और दूषण दो पात्र हैं जवकि पद्मपुराण में खर-दूषण एक ही व्यक्ति का नाम है।

'मानस' के खरदूषण का सुग्राव से कोई संवंध नहीं है जवकि 'पद्मपुराण' का खरदूषण सुग्रीव का 'पटाक जीजा' निकलता है। 'पद्मपुराण' में समागत अंजना-पवनंजय-प्रसंग और हनूमान् की उत्पत्ति की कथा 'मानस' में नहीं आयी है, वहाँ तो हनुमान केवल पवनसुत के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं जो अखंड वाल ब्रह्मचारी रहकर श्रीराम की सेवा को अपना कर्त्तव्य समझते हैं।

पद्मपुराण का **'दशरथ-जनक-काल-निर्वर्तन'** वृत्तांत मानस में नहीं है। पद्मपुराण में दशरथ की चार रानियों का उल्लेख है जबकि मानस में तीन का।

मानस में **'पुत्रेष्टियज्ञोत्थ पायस'** के प्रभाव से दशरथ को संतान प्राप्ति होती है जबकि पद्मपुराण में ऐसा कुछ नहीं है। भामंडल का वृत्तांत मानस में नहीं है। वहाँ सीता के किसी भाई की चर्चा नहीं है। राम-सीता का विवाह शिवधनुष की प्रत्यंचा चढ़ाने पर होता है, म्लेच्छ-दमन के कारण नहीं। पद्मपुराणमें सीता-राम के विवाह के साथ लक्ष्मण और भरत का विवाह वर्णित है जबकि मानस में श्रीराम के तीनों भाइयों के विवाहों का उल्लेख है। 'मानस' में भरत के शोक का प्रसंग नहीं आया है। इसी प्रकार मानस में वर्णित सीता-राम-विवाह से पूर्व की घटनाएँ—यथा राम-लक्ष्मण का विश्वामित्र के साथ जाना, ताड़का-सुबाहु को मारना, अहल्या का उद्धार करना, मिथिला के स्वयंवर में तमाशा देखने जाना, वाटिका में पुष्प-चयन करते हुए सीता-साक्षात्कार करना, लक्ष्मण-परशुराम-संवाद, बारात-आगमन तथा रामविवाहोत्सव आदि पद्मपुराण में नहीं है।

पद्मपुराण में दशरथ के वैराग्य के कारणरूप में उपस्थित वृद्ध कंचुकी का प्रसंग मानस में नहीं आया है। कैकेयी के वरयाचन के प्रसंग में भी अंतर है। 'मानस' में यह प्रसंग विस्तृत भूमिका के साथ आया है। देवसभा में सरस्वती को राम-वन-गमन संपादन के लिए भेजा जाता है। वह मंथरा की बुद्धि बदल देती है—**"गई गिरा मति फेरि।"** मंथरा कैकेयी को भरती है। कैकेयी कोप-भवन में जाकर पड़ जाती है। दशरथ उसे मनाते हैं। उस समय वह दो वर माँगती है; एक में वह भरत का राज्याभिषेक और दूसरे में वह राम का वन-गमन माँगती है। दशरथ राम-वन-गमन का वर देने में हिचकिचाते हैं। पद्मपुराण में एक ही वर माँगा गया है। पद्मपुराण में कैकेयी 'वन-वास' का वर नहीं माँगती, केवल भरत के लिए राज्य माँगती है। पद्मपुराण में दशरथ भरत को राम-वन-गमन से पूर्व ही राज्य दे देते हैं। राम वन जाने से पूर्व भरत से राज्य करने का अनुरोध करते हैं और उसे अपनी ओर से निश्चित भी करते हैं—**'न करोमि पृथिव्यां ते कांचित् पीड़ां गुणालय'** किंतु मानस में भरत के ननिहाल से लौटने पर उन्हें अभिषेक समर्पित किया जाता है। पद्मपुराण में, जब सीता भी राम के साथ चलने का अनुरोध करती हैं तो राम कहते हैं कि मैं दूसरे नगर को (वन को नहीं) जा रहा हूँ, तुम यहीं रहो **प्रिये त्वं तिष्ठ चात्रैव गच्छाम्यहं पुरान्तरम्**—किंतु मानस में वे स्पष्ट बताते हैं कि मैं वन जा रहा हूँ और तुम हंसगामिनी होने के नाते वन जाने के योग्य नहीं हो। पद्मपुराण में दशरथ खंभे से टिके हुए मूर्च्छित हो जाते हैं जिससे उन्हें कोई मूर्च्छित नहीं जान पाता, मानस में उनकी मूर्च्छा का सब को पता है। वन-प्रस्थान का वृत्तांत भी दोनों ग्रंथों में अंतरयुक्त है। पद्मपुराण' में अपने पीछे आने वाले प्रजाजनों को धोखा देने के लिए सायं समय वनगामी

राम-लक्ष्मण-सीता जिन-मंदिर में टिक कर रात में मंदिर के पश्चिम द्वार से दक्षिण दिशा की ओर चल पड़ते हैं, तथा शर्वरी नदी को पार कर जाते हैं, किंतु प्रजाजन उसे पार नहीं कर पाते और उनमें से अनेक तो लौट जाते हैं एवं अनेक दीक्षित हो जाते हैं। मानस में ऐसा नहीं है। यहाँ तो पहले तमसा के तट पर राम-लक्ष्मण-सीता विश्राम करते हैं फिर गंगा को केवट की नाव से पार करते हैं। यहाँ केवट-प्रसंग और ग्राम-वधुओं के मार्मिक प्रसंग से कथानक में अत्यन्त चारुत्व आ गया है।[१२०७] यहाँ सुमन्त्र जब लौटकर अयोध्या आता है और राम को न ला सकने का वर्णन करता है तो दशरथ प्राण ही छोड़ देते हैं। मानस में भरत-मिलाप-प्रसंग में लक्ष्मण एवं निषादराज भरत के साथ युद्ध करने के लिए उद्यत हो जाते हैं परन्तु बाद में भरत का सद्भाव देखकर उससे सौहार्दपूर्वक मिलते हैं। पद्म-पुराण में ऐसा नहीं हुआ है।

पद्मपुराण में समागत वज्रकर्ण और सिंहोदर का वृत्तान्त, कल्याणमाला का प्रसंग, कपिल ब्राह्मण की कथा, वनमाला-लक्ष्मण-विवाह-प्रसंग, अतिवीर्य का वृत्तान्त, देशभूषण-कुलभूषण के उपसर्ग का राम-लक्ष्मण द्वारा दूरीकरण आदि वृत्तान्त मानस में नहीं हैं, और मानस के कुछ प्रसंग—यथा जनक का सपरिवार चित्रकूट में आगमन, भरत का पादुका लाना, जयन्त की दुष्टता और सीता के चरण में चोंच मारना, अनसूया द्वारा सीता को पातिव्रत्यधर्मोपदेश, शरभंगऋषि-प्रसंग, वन्य ऋषियों की अस्थियों कों देखकर राम की प्रतिज्ञा—'**निसिचरहीन करौं महि भुज उठाइ प्रन कीन**, पद्मपुराण में नहीं है। पद्मपुराण में सीताहरण का हेतु शंबूक-वध है जबकि मानस में शूर्पनखा का नाक-कान काटना। पद्मपुराण का रत्नजटी और विराधित का प्रसंग भी 'मानस' में नहीं हैं और मानस का शबरी-मिलन, कबंध उद्धार, विराध-वध और पम्पासरोवर-गमन पद्मपुराण में नहीं है। पद्मपुराण में रावण की वियोगजन्य दुरवस्था को देखकर विवश होकर मन्दोदरी सीता के पास रावण का दौत्य सम्पादन करती है और उसे रावण के प्रति अनु-रक्त करने की चेष्टा करती है किन्तु मानस में मन्दोदरी सीताकामी रावण को धिक्कारती है तथा सीता को लौटा देने के लिए उससे कहती है। मानस में राम का सुग्रीव से परिचय हनुमान कराते हैं, वे ही पहले विप्ररूप में राम-लक्ष्मण का परिचय प्राप्त करते हैं और फिर सुग्रीव के पास उन्हें ले आते हैं। सुग्रीव राम को सीता के चिह्न देता है और राम अपनी प्रतिज्ञानुसार बालि को मारते हैं। पद्म-

---

१२०७. पद्मपुराण में तपोवन की स्त्रियाँ राम-लक्ष्मण को देखकर मतवाली हो जाती हैं जबकि 'मानस' की ग्राम-वधुएँ सात्विकता से मुग्ध।

पुराण में राम साहसगति विद्याधर का वध करते हैं, वहाँ वालि-वध की चर्चा नहीं है। पद्मपुराण में वर्णित कोटिशिला का लक्ष्मण के द्वारा उठाया जाना, हनूमान् द्वारा अपने नाना को परास्त करना, राम को गन्धर्वकन्याओं की प्राप्ति, लंकासुंदरी और हनूमान् का विवाह आदि प्रसंग मानस में नहीं है। मानस का हनूमान् समुद्र को लाँघकर लंका जाता है, विमान में बैठकर नहीं। बीच में सुरसा उसकी परीक्षा लेकर उसे आशीर्वाद देती है। मार्ग में वह समुद्रवासिनी छायाग्राहिणी निशिचरी (सिंहिका) का वध करता है और मैनाक का स्पर्श करता है। यहाँ लंकासुंदरी से हनूमान् के युद्ध और बाद में दोनों के विवाह की चर्चा नहीं है अपितु लंकिनी नामक निशिचरी का हनूमान् के मुष्टि-प्रहार से वध होता है। मानस में मशक-समान रूप धारण कर हनूमान् का लंका-प्रवेश होता है, पद्मपुराण में असली रूप में। पद्मपुराण में सीता को हनूमान् के द्वारा अँगूठी दिये जाने पर मन्दोदरी उपस्थित है जिसे हनूमान् फटकार लगाता है किन्तु मानस में इस अवसर पर त्रिजटा ही प्रधानतः उपस्थित है, मन्दोदरी अशोक-वन में नहीं आती। पद्मपुराण में हनुमान् लंका का ध्वंस करता है, जबकि मानस में वानर होने के कारण राक्षसों द्वारा जलायी गयी अपनी पूँछ से लंका का दहन करता है। पद्मपुराण में रावण को समझाते हुए विभीषण को इन्द्रजित् सापमान टोकता है, और विभीषण को फटकारता है जिस पर रावण उसे खड्ग से मारने को तत्पर हो जाता है और विभीषण भी एक खंभा उखाड़कर युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जाता है, बाद में मंत्रियों द्वारा बीच-बचाव किये जाने पर वह तीस अक्षौहिणी सेना के साथ राम से जा मिलता है किन्तु मानस में न तो इन्द्रजित् उसे टोकता है न ही विभीषण सेना के साथ राम से मिलता है। मानस में रावण को जब विभीषण समझाता है और सीता को राम के पास लौटाने का निवेदन करता है—**मोरे कहे जानकी दीजै तव रावण मम पुर बसि तपसिन्ह कै प्रीती** कहकर चरण प्रहार से उसे अपमानित करता है और विभीषण सचिव को संग लेकर नभ-पथ से जाकर राम से मिलता है जहाँ कि राम उसे 'लंकेश' कहकर उसका अभिषेक करते हैं—**जो संपति सिव रावनहिं दीन्हि दिये दस माथ। सोइ संपदा विभीषनहि सकुचि दीन्हि रघुनाथ॥** मानस का विभीषण चरण-प्रहार का प्रतिशोध नहीं लेता, बस इतना भर कहता है—**"तुम पितु सरिस भले मोहि मारा। राम भजे हित नाथ तुम्हारा।"** मानस में समुद्र (सागर) को नल-नील बाँधते हैं जबकि पद्मपुराण में नल वेलन्धरपुर के स्वामी समुद्र नामक राजा को परास्त करता है। पद्मपुराण में रावण की सभा में अंगद के द्वारा चरण रोपने का प्रसंग नहीं है। मानस में अंगद राम का दौत्य संपादन करने के लिए रावण के पास जाता है और उसकी सभा में **"मैं तव दसन तोरिबे**

लायक।" आदि कहकर उसका अपमान करता है; वह रावण को चुनौती देता है कि कोई भी योद्धा उसका पैर उठा दे किन्तु सब हार मानते हैं। वह रावण के मुकुट उठाकर आकाश में फेंक देता है और अपने पैर उठाने वाले रावण को श्री राम के पैर पकड़ने की सलाह भी देता है। मानस में अंगद द्वारा भानुकर्ण (कुम्भकर्ण) के अधोवस्त्र खोलने की घटना भी नहीं आयी है। पद्मपुराण में उल्लिखित राम-लक्ष्मण को सिंहवाहिनी-गरुड़वाहिनी विद्याओं की प्राप्ति, रावण द्वारा लक्ष्मण पर शक्ति का प्रहार, शक्तिनिहत लक्ष्मण को देखने के लिए रावण का राम को अनुमति दे देना आदि प्रसंग मानस में नहीं हैं। मानस में मेघनाद के द्वारा लक्ष्मण को शक्ति लगती है, रावण के द्वारा नहीं। पद्मपुराण में वर्णित विशल्या का वृत्तान्त, लक्ष्मणसंबंधी समाचार प्राप्त कर भरत द्वारा राक्षसों के विरुद्ध साकेत में युद्ध की तैयारी आदि के वृत्तान्त 'मानस' में नहीं हैं। यहाँ तो लक्ष्मण-मूर्च्छा पर हनुमान सुषेण नामक वैद्य को पकड़ लाते है। सुषेण लक्ष्मण को देखकर द्रोणगिरि से संजीवनी बूटी लाकर देने पर ही लक्ष्मण के प्राण बचने की बात कहता है। हनुमान द्रोणपर्वत से संजीवनी लेने जाते हैं। बीच में रावण की प्रेरणा से राक्षस कालनेमि हनुमान को रोकने का व्यर्थ प्रयास करता है और मारा जाता है। हनुमान पर्वत पर जाकर संजीवनी बूटी को नहीं पहचान पाते और पर्वत को ही उखाड़कर तेजी से उड़ चलते हैं। जब वे अयोध्या के ऊपर से उड़कर जाते हैं तो भरत आशंकावश उनके पैर में बिना फलक का बाण मार देते हैं। हनुमान 'राम' कहते हुए नीचे आ जाते हैं और भरत के पूछने पर सारा वृत्तान्त सुनाते हैं। भरत उन्हें अपने बाण पर बिठाकर शीघ्र ही लंका भेजने का प्रस्ताव रखते हैं किन्तु वे स्वयं उड़कर सूर्योदय से पूर्व लंका में आ जाते हैं। लक्ष्मण की चिकित्सा के उपरान्त हनुमान सुषेण को उसके घर पहुँचा देते हैं। मानस में कुम्भकर्ण रावण के प्रयत्नों से जागता है और उसकी सीताहरण के लिए भर्त्सना करता है और सीता को लौटाने के लिए रावण को सलाह देता है। उसकी दृष्टि में विभीषण अधिक प्रिय है क्योंकि उसने राम की शरण ले ली है परन्तु मदिरापान और मांस-भक्षण करके वह आपे से बाहर हो जाता है और वानर-सेना पर टूट पड़ता है। वानर उसके भूधराकार शरीर में घुस-घुसकर नाक-कान से बाहर निकलते हुए दिखाई देते हैं। पद्मपुराण में कुम्भकर्ण (भानुकर्ण) मदिरापानादि नहीं करता और राम का विरोधी है। वह रावणविमुख विभीषण को प्यार भी नहीं करता। पद्मपुराण में समागत मृगांक आदि मंत्रियों के द्वारा रावण को समझाया जाना तथा रावण का दूत को इशारे से राम के पास भेजना और दूत का वहाँ रावण के पक्ष का समर्थन एवं भामंडल का क्रुद्ध होकर उसे मारने को उद्यत हो जाना आदि मानस

में नहीं है। बहुरूपिणी-विद्या-साधक रावण की माला का अंगद के द्वारा तोड़ दिया जाना एवं उसकी स्त्रियों की दुर्दशा किया जाना आदि भी मानस में कुछ अन्तर के साथ वर्णित हैं। मानस का रावण यज्ञ करता है, जिसे लक्ष्मण, हनुमान आदि भंग करते हैं। मानस में इन्द्रजित् (मेघनाद) भी यज्ञ करता है किन्तु उसका भी यज्ञ भंग कर दिया जाता है और भग्नयज्ञ मेघनाद का आगे चलकर लक्ष्मण के हाथों वध हो जाता है। इसी प्रसंग में राम-लक्ष्मण नागपाश से भी बाँधे जाते हैं, जिन्हें गरुड़ छुड़ाता है। पद्मपुराण में रावण अपने किये को बुरा स्वाकारता है तथा पश्चात्ताप करता है। वह अपने को धिक्कारता है तथा एक वार राम-लक्ष्मण को जीवित पकड़कर अपने सम्मान को अक्षुण्ण रखते हुए सीता को उन्हें लौटा देने की भी सोचता है किन्तु मानस में वह सीता को लौटाने की नहीं सोचता, न ही वह अपने किये पर पश्चात्ताप करता है। पद्मपुराण में रावण का लक्ष्मण के हाथों वध होता है जबकि मानस में विभीषण के द्वारा रावण की नाभि में अमृत कुण्ड होने के रहस्य को उदघाटित किये जाने पर राम रावण की नाभि पर अग्नि वाण चलाकर उसका वध करते हैं। पद्मपुराण में इन्द्रजित् मेघ-वाहन और कुम्भकर्ण छोड़ दिये जाते हैं और वे दीक्षा ले लेते हैं। मन्दोदरी चन्द्रनखा आदि भी आर्यिका बन जाती हैं। किन्तु मानस में इन्द्रजित् और कुंभकर्ण का वध होता है। पद्मपुराण में रावण-वध के अनन्तर राम लंका में प्रवेश करते हैं, सीता का आलिंगन करते हैं तथा कई दिनों तक विभीषण का आतिथ्य स्वीकार करके लंका में आनन्द मनाते हैं किन्तु मानस में राम लंका में प्रवेश ही नहीं करते, आनन्द मनाने की तो बात ही दूसरी है। वे सुग्रीवादि को भेजकर विभीषण का राजतिलक करा देते हैं और सीता को लाने के लिए विभीषण एवं हनुमान को ही भेजते हैं, स्वयं नहीं जाते। विभीषण एवं हनुमान सीता को पालकी में लाना चाहते हैं किन्तु सीता की वानरदर्शनोत्सुकता देखकर राम उन्हें सीता को पैदल ही लाने को कहते हैं। सीता की अग्नि-परीक्षा होती है। अग्नि स्वयं सीता को राम तक पहुँचाता है। पद्मपुराण में नारद के मुख से अपनी माता की दयनीय दशा को सुनकर राम अयोध्या जाने के लिए उत्सुक होते हैं किन्तु विभीषण की विनम्र प्रार्थना पर १६ दिन लंका में और रुक जाते हैं, किन्तु मानस में राम भरत की दशा पर विचार करते हुए तुरन्त अयोध्या के लिए लौट पड़ते हैं। हनुमान उनके आने की सूचना भरत को अयोध्या में देते हैं। मानस की विषयवस्तु राम के अयोध्या-प्रत्यवर्त्तन राम-राज्य-वर्णन तथा भक्ति-ज्ञानादि के विवेचन के साथ ही समाप्त हो जाती है; इसमें वाल्मीकि रामायण के सदृश आगे की कथा नहीं चलती; अतः पद्मपुराण और मासस की इससे आगे की विषयवस्तु की तुलना

का अवकाश ही नहीं रह जाता।

इस विवेचन से 'पद्मपुराण' और 'मानस' की विषयवस्तु का साम्य-वैषम्य स्पष्ट हो चुका है जिसका कारण दोनों कवियों का दृष्टिकोण ही है। यदि अष्टम वलभद्र राम के चरित्र को वर्णित करके रविषेण जैनधर्म की भावनाओं को पाठकों तक पहुँचाने का प्रयत्न करते हैं तो तुलसी **'बिधि हरि संभु नचावनहारे'** ब्रह्मरूप राम का चरित्र वर्णित करके राम-भक्ति का प्रचार करने का प्रयत्न करते हैं। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए दोनों कवियों ने अपने ढंग से वस्तु-योजना की है।

अब हम दोनों रचनाओं की प्रवन्धात्मकता पर किञ्चित् विचार करेंगे।

'पद्मपुराण' की विषयवस्तु का आरंभ पौराणिक ढंग के आख्यानों को लेकर हुआ है। आधिकारिक कथा– राम की कथा–तो वहुत वाद में आती है। राक्षस-वंश एवं वानर-वंश के परिचय, अनेक राजाओं की वंशावलियों एवं क्षेत्र-काल आदि के वर्णनों के कारण मुख्य कथा तक पहुँचने में कुछ अड़चन का सामना करना पड़ता है। किन्तु मानस का प्रारंभ हमें सीधे राम-कथा पर ले जाता है। नारद-मोह, शिव-पार्वती, भानुप्रताप आदि के प्रसंगों के कुछ देर वाद ही रामावतार हो जाता है और मुख्य कथा तेजी से चल देती है। इस प्रकार जहाँ 'पद्मपुराण' में मुख्य कथा से 'टेलीफोन' मिलाने में पाठक को कई एक्सचेंजों से लाइन जोड़नी पड़ती है, वहाँ 'मानस' में 'डाइरेक्ट सिस्टम' से ही काम चल जाता है।

कथानक की गति का जहाँ तक प्रश्न है 'मानस' अधिक सफल है। इसका यह तात्पर्य कदापि नहीं कि 'पद्मपुराण' में कथानक गतिशील नहीं है। है अवश्य, किन्तु मानस जितना नहीं। मार्मिक प्रसंगों की पहिचान दोनों कवियों को है। यदि तुलसी ने राम-लक्ष्मण का जनकपुरी-दर्शन, राम-सीता-साक्षात्कार, धनुष-यज्ञ, राम-विवाह, राम-वन-गमन, ग्राम-वधू-प्रसंग, भरत-राम-मिलन, सीताहरण के समय राम-विलाप, लक्ष्मण-शक्ति, राम-रावण-युद्ध और राम-राज्य आदि मार्मिक प्रसंगों को पहिचाना है तो रविषेण ने भी अपनी कथा के अनुसार धनु-पोत्सव, अनेक स्थलों पर तरुणों को देखकर नारियों के भावालाप, राम-विलाप, अंजना-पनञ्जय-वियोग, राम-लक्ष्मण-प्रेम, लवणांकुश-युद्ध आदि अनेक मार्मिक प्रसंगों को दृष्टि में रखा है। अन्तर इतना है कि तुलसी ने मार्मिक प्रसंग भावुकता के साथ कथानक में घुला मिला रखे हैं जवकि रविषेण उनके आगे-पीछे जैनधर्म का स्पष्ट या मूक सन्देश देने लगते हैं।

चलते वर्णनों में 'मानस' बहुत आगे है। 'पद्मपुराण' एक विशालकाय ग्रंथ होने के कारण प्रत्येक बात का सांगोपांग वर्णन देता है, 'मानस' थोड़े में बहुत

कहता है। यद्यपि रविषेण ने भी कहीं-कहीं एक-दो पंक्तियों से ही काम चला लिया है, यथा--"तौ विधाय यथायोग्यमुपचारं ससीतयोः। रामलक्ष्मणयोर्यातौ माता-पुत्रौ यथागतम्।"[१२०८] तथापि अधिकांश उसने लम्बे वर्णन ही किये हैं। रविषेण को किसी बात के वर्णन का अवसर मिलने पर उनकी लेखनी से सांगोपांग वर्णनों की झड़ी लग जाती है। तुलसी तो रावण-विजय पर राम को तुरन्त ही लौटा देते हैं; किन्तु रविषेण उन्हें पूर्ण विलास का आनन्द देकर ६ वर्ष बाद लौटाते हैं। भला राम-लक्ष्मण को अपनी माताएँ बिलकुल ही याद नहीं रहीं! मानस में मार्मिक प्रसंगों के अतिरिक्त शेष सभी वर्णन चलते हुए हैं यथा--**आगे चले बहुरि रघुराया। ऋष्यमूक परबत नियराया।।** रविषेण यदि इस बात को कहते तो पहले रघुराज के विशेषण आते, फिर ऋष्यमूक पर्वत के और फिर निकटता के।

अरोचक वर्णनों के त्याग में प्रायः दोनों कवि जागरूक हैं। उन वर्णनों को प्रायः उन्होंने नहीं किया है जिनमें पाठक की उत्सुकता नष्ट हो। इसीलिए वर्णनों के आरोह विस्तृत हैं और अवरोह अत्यन्त संक्षिप्त। यथा--रावण की अनेक राजाओं पर विस्तृत चढ़ाई एवं संक्षिप्त प्रत्यावर्तन (पद्म०) राम की विशद बारात तथा संकेतात्मक जनकपुरी-स्वागत (मानस)।

मर्यादावादी होने के नाते तुलसी ने **अप्रिय प्रसंगों की स्थिति** अपने काव्य में अभिधा से नहीं होने दी; यहाँ केवल संकेत ही दिये गये है यथा—'**मरम वचन जब सीता बोला**' किन्तु 'पद्मपुराण' की व्यास शैली में सब कुछ कहा गया है; यथा---लक्ष्मण का भरत का दशरथ को धिक्कारना आदि।

निरर्थक आवृत्ति से बचाव 'मानस में अधिक है। 'पद्मपुराण' में दो-तीन बार तो 'रामकथा' का विवरणात्मक परिचय है; यथा-हनूमान् द्वारा सीता के समक्ष एवं नारद द्वारा लव-कुश के समक्ष किन्तु तुलसी ऐसे प्रसंगों का 'आदिहु ते सब कथा सुनाई' आदि कहकर संकेतात्मक परिचय ही देते हैं।

प्रासंगिक कथाओं की संगति दोनों ग्रंथों में हुई है। 'पद्मपुराण' और 'मानस' में सुग्रीव और हनुमान् की कथा प्रासंगिक मानी जा सकती है। यह कथा दोनों ग्रंथों में अधिकारिक कथा के साथ अन्त तक चलती है 'पद्मपुराण' और 'मानस' में सुग्रीव और हनूमान् अन्त तक राम के मित्र, सेवक और सहायक बने रहते हैं। सुग्रीव को राज्य-प्राप्ति और स्त्री-प्राप्ति होती है और हनूमान् को 'पद्मपुराण' में पत्नी-राज्य-सम्मान-प्राप्ति और 'मानस' में रामभक्ति-प्राप्ति होती है।

१२०८. पद्म० ३२,१३५

जहाँ तक उपाख्यानों का सम्बन्ध है—दोनों ग्रंथों में अनेक उपाख्यान आये हैं। पद्मपुराण के उपाख्यानों की चर्चा पीछे की जा चुकी है।[१२०९] मानस के प्रमुख उपाख्यान ये हैं:—

नारद-मोह, प्रतापभानु-कथा, मनु-शतरूपा-उपाख्यान, शिव-पार्वती-विवाह-कथा, याज्ञवल्क्य-भरद्वाजोपाख्यान, गुह-निषाद-कथा, कालनेमि-कथा, जटायु-उपाख्यान, मारीच-कथा और वालि-कथा, काकभुशुण्डि-उपाख्यान, केवट-प्रसंग तथा शवरी-कथा। इसके अतिरिक्त कुछ उपाख्यानों का केवल नामनिर्देश ही किया गया है। इनमें सुवेलपर्वत, शिवि, दधीचि, हरिश्चन्द्र, नहुष, ययाति, सगर, रन्तिदेव, पृथुराज, अजामिल, सुतीक्ष्ण, वाल्मीकि, जाम्ववान्, नल, नील, लोमश, जय-विजय, कश्यप-अदिति, जलंधर-वाणासुर, अगस्त्य, अम्बरीष, अन्धतापस, कद्रू, गज, कैकेयी, गणिका, अजामिल, व्याध, गीध, गरुड़, गंगावतरण, चित्रकेतु, चन्द्रमा, तपस्विनी, ताड़का, त्रिशंकु, दण्डक, दुंदुभि, दुर्वासा, परशुराम, प्रह्लाद, वलि, वेन, ययाति, रावण, राहु, विराध, विश्वामित्र, शृंगी, सहस्रवाहु, सीता को नारद का आशीर्वाद, सुरनाथ इन्द्र और हिरण्यकशिपु आदि के उपाख्यान आते हैं। उत्तरकाण्ड में 'शूद्रभक्त' के उपाख्यान का भी संकेत कवि ने किया है।

इन उपाख्यानों पर दृष्टिपात करने पर सहज ही ज्ञात हो जाता है कि पद्मपुराण के उपाख्यान मानस के उपाख्यानों से कहीं अधिक हैं। पद्मपुराण के उपाख्यान कहीं-कहीं मुख्य कथा की गति में वाधा डालते हैं किन्तु मानस के उपाख्यान आधिकारिक कथा से विलकुल सम्वद्ध हैं। वे ऐसे नहीं हैं कि उन्हें मुख्य कथा से बाहर की वस्तु माना जाय। या तो वे कथा की पुष्टि करते हैं या किसी पात्र के चरित्र-निर्माण में सहयोग देते हैं; या तो रामावतार की भूमिका में सहायक होते हैं या भक्ति का महत्त्व प्रतिपादन करते हैं। साथ ही इनकी संक्षिप्तता भी इन्हें सरस और रोचक वना देती है। 'पद्मपुराण' के उपाख्यानों के समान इनकी 'अति' नहीं है।

जहाँ तक कथानक के उपसंहार का प्रश्न है—दोनों कवियों ने अपने दृष्टिकोण से विषयवस्तु का निर्वहण करने की चेष्टा की है। रविषेण ने 'पद्मपुराण' की विषयवस्तु का निर्वाह 'भवोक्ति' और 'परिनिर्वृति' नामक अधिकार में किया है।

'मानस' के कथानक का उपसंहार 'उत्तरकाण्ड' में देखा जा सकता है। पार्वती की सन्देह-निवृत्ति के साथ मानस का कथानक समाप्त होता है—'नाथ कृपा मम गत संदेहा। इस काण्ड में कवि ने राम द्वारा पुष्पक को कुबेर के पास भेजना,

१२०९. दे० प्रस्तुत ग्रन्थ, पृ० १३०-१३१।

लक्ष्मण का कैकेयी से बार-बार मिलना, राम-राज्याभिषेक, सुग्रीव-विभीषण आदि की विदा, राम-राज्य वर्णन, सन्त-असन्त के लक्षण नीति-उपदेश, शिव-पार्वती-संवाद, काक-भुशुण्डि-कथा, राम-महिमा-वर्णन, कलि-वर्णन, शूद्रभक्त-कथा, ब्राह्मण-महिमा, काक-भुशुण्डि के काक होने की कथा, ज्ञानभक्ति-विवेचन, मानस के अधिकारी तथा पाठ-माहात्म्य का वर्णन और पार्वती की सन्देह निवृत्ति का वर्णन किया है। 'मानस' की विषय-वस्तु का आरम्भ सन्देह या शंका से ही होता है। पार्वती को राम के ब्रह्मत्व में सन्देह होता है जिसका दूरीकरण शिव करते हैं। उधर गरुड़ को राम की सर्वशक्तिमत्ता पर शंका होती है जिसका समाधान काक-भुशुण्डि करते हैं––'राम ब्रह्म व्यापक जग माहीं।' कवि का मुख्य उद्देश्य राम की ब्रह्मता प्रतिपादन करना एवं दूसरा उद्देश्य भक्ति की महत्ता प्रतिपादन करना ही था। इन उद्देश्यों का पूर्णतया निर्वाह मानस की समाप्ति तक हो जाता है। किन्तु कथानक––केवल कथानक––की दृष्टि से हम विचार करते हैं तो इसके कथानक को पूर्णतया 'पूर्ण' कहते हुए संकोच सा होता है। राम-राज्य के पश्चात् क्या हुआ ? लक्ष्मण, सीता, सुग्रीव, विभीषण, हनुमान, अंगद, शत्रुघ्न, भरत, जनक, कैकेयी और स्वयं राम का क्या हुआ ? उनका अन्त कैसे कब और कहाँ हुआ ? ये प्रश्न लटकते ही रह जाते हैं। वस्तुतः मानस में विषयवस्तु की अपेक्षा उद्देश्य का ही निर्वाह है। हमें यह कहना ही पड़ता है कि विषयवस्तु के उपसंहार की दृष्टि से 'पद्मपुराण' 'मानस' से आगे है।

निष्कर्ष : 'पद्मपुराण' और 'मानस' की विषयवस्तु में साम्य भी है, वैषम्य भी। दोनों में अनेक उपाख्यान तथा प्रासङ्गिक कथाएँ हैं किन्तु 'पद्मपुराण' के उपाख्यान कहीं-कहीं पाठक को मुख्य कथा से दूर कर देते हैं। मार्मिक प्रसंगों की दोनों कवियों को पहिचान है किन्तु मानस में इनकी अधिक भावपूर्ण योजना है। 'मानस' की विषयवस्तु छोटी होने के कारण अधिक संगठित है, 'पद्मपुराण' की विषय-वस्तु कहीं-कहीं उपदेश दान आदि से बिखर सी गयी है। हाँ, विषय-वस्तु-सम्बन्धी पूर्णता 'पद्मपुराण' में शत प्रतिशत है, 'मानस' इस दृष्टि से शिथिल है। 'पद्मपुराण' की प्रतिनायक-सम्बन्धी विषयवस्तु अधिक प्रभावशाली है। 'मानस' में 'राम की कथा' की गरिमा अधिक है, 'पद्मपुराण' में उतनी उदात्त भावना उनके प्रति नहीं उत्पन्न होती। पद-पद पर सीता के स्तनों का वर्णन, उनकी कामोद्दीपकता एवं राम-लक्ष्मण के अनेक स्त्रियों से 'थोक' में विवाहों के वर्णनों को देखकर उनके प्रति भारतीय दृष्टिकोण वाले पुरुषों की श्रद्धा जैसी भावना वैसे रूप में नहीं उठती जैसी 'मानस' के श्रीराम के चरित्र को पढ़कर उनके प्रति। फिर भी अपने-अपने दृष्टिकोण के अनुसार दोनों कवियों ने अपने ग्रन्थों की विषयवस्तु को सफल बनाने

की चेष्टा की है और वे सफल हुए भी हैं।

पद्मपुराण और रामचरितमानस के पात्र तथा चरित्र-चित्रण : पद्मपुराण और मानस के पात्रों की तुलना करते समय हमें ज्ञात होता है कि यद्यपि मानस में पात्रों की संख्या पद्मपुराण से अर्धांश भी नहीं है तथापि मुख्य कथानक के पात्र प्राय: उसके समान ही हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल 'मानस' के पात्रों का वर्गीकरण करते हुए इनके तीन वर्ग वनाते हैं—**सात्त्विक, राजस,** एवं **तामस**। तीनों प्रवृत्तियों के अनुसार चरित्र विधान करने से दो प्रकार के चित्रण हम गोस्वामी जी में पाते हैं **आदर्श** और **सामान्य**। आदर्श चित्रण के भीतर सात्त्विक और तामस दोनों आते है। राजस को सामान्य चित्रण के भीतर लिया जा सकता है। इस दृष्टि से सीता, राम, भरत, हनुमान और रावण आदर्श चित्रण के भीतर आयेंगे तथा दशरथ, लक्ष्मण, विभीषण, सुग्रीव और कैकेयी सामान्य चित्रण के भीतर। आदर्श चित्रण में हम या तो यहाँ से वहाँ तक सात्त्विक वृत्ति का निर्वाह पायेंगे या तामस का। प्रकृति भेद सूचक अनेकरूपता उसमें न मिलेंगी। सीता, राम, भरत और हनुमान सात्त्विक आदर्श हैं, रावण तामस आदर्श है।[१२१०]

स्पष्टता की दृष्टि से पद्मपुराण के पात्रों के सदृश मानस के पात्रों को भी सात भागों में विभक्त किया जा सकता है—

१. **राम-पक्ष के पुरुष पात्र**—दशरथ, राम, भरत, शत्रुघ्न और लव-कुश।

२. **राम-पक्ष के स्त्री पात्र**—कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी, सीता मन्थरा, शबरी और अनसूया।

३. **रावण-पक्ष के पुरुष पात्र**—रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण मेघनाद और अक्षकुमार।

४. **रावण-पक्ष के स्त्री पात्र**—मन्दोदरी और त्रिजटा।

५. **प्रासंगिक कथाओं के पुरुष पात्र**—नारद, जटायु, हनुमान, बालि, सुग्रीव अंगद, सम्पाति और जनक।

६. **प्रासंगिक कथाओं के स्त्री पात्र**—तारा, सुलोचना।

७. **पौराणिक महापुरुष**—वसिष्ठ, विश्वामित्र, परशुराम, काक-भुशुंडि आदि।

यदि पुरुष और स्त्री का भेद हटा दिया जाय तो इन पात्रों को अग्रलिखित तीन वर्गों में रखा जा सकता है—**१. राम-पक्ष के पात्र ३. रावण-पक्ष के पात्र** एवं **३. प्रासंगिक कथाओं के पात्र**। इसके अतिरिक्त और भी कुछ गौण पात्रों का मानस में उल्लेख है। यह स्पष्ट है कि पद्मपुराण और मानस में अनेक सामान्य

१२१०. तुलसी-ग्रंथावली प्रस्तावना पृष्ठ ११३

पात्र है। कुछ पात्रों के नामों में अन्तर है। पद्मपुराण में अनंगलवण और मदनांकुश जिन्हें मिलाकर लवणांकुश कहा गया है, मानस में लव और कुश हैं। पद्मपुराण में राम की माता का नाम अपराजिता हैं जब कि मानस में कौशल्या। पद्मपुराण में रावण की बहिन का नाम चन्द्रनखा है, मानस में सूर्पनखा (शूर्पनखा)। पद्मपुराण में लंकासुन्दरी एक राजकुमारी है और मानस में लंकिनी एक राक्षसी है।

'पद्मपुराण' और 'मानस' के **दशरथ** के चरित्र में पर्याप्त अन्तर है। पद्मपुराण के दशरथ हमारे सामने नवयौवन से भूषित वपु के साथ प्रस्तुत होते हैं जबकि मानस के दशरथ हमारे सामने वृद्ध राजा के रूप में आते हैं। पद्मपुराण के दशरथ का श्रवणकुमार के वध से कोई संबंध नहीं है जबकि मानस के दशरथ के साथ श्रवणकुमार के वध की कथा जुड़ी हुई है। पद्मपुराण के दशरथ वृद्ध कंचुकी की अवस्था को देखकर वैराग्य धारण करते हैं जबकि मानस में अपने चौथेपन को देखकर वे राज्य का भार राम को देना चाहते हैं। मानस के दशरथ सच्चे रघुवंशी हैं जिनका नियम है—**'प्रान जाइ पर वचन न जाई।'** वे कैकेयी को वर दे देते हैं और राम-वियोग में उनके प्राण शरीर छोड़ देते हैं। मानस के दशरथ राम-भक्त हैं, पद्पुराण के दशरथ जिन-भक्त। पद्मपुराण के दशरथ केकया के वर माँगने पर संज्ञाशून्य नहीं होते, वे परम धैर्यशाली और विवेकशील हैं। वे स्वयं भरत को शासन सँभालने को कहते हैं। किन्तु मानस के दशरथ में मोह की मात्रा अधिक है और वे **सोकबस उतरु** नहीं दे सकते। पद्मपुराण में वे दीक्षा ले लेते हैं जबकि मानस में राम-विरह में प्राण ही त्याग देते हैं। जहाँ पद्मपुराण में दशरथ का चरित्र आदर्शवादी है, वहाँ मानस में मनोवैज्ञानिक।

पद्मपुराण और मानस दोनों में ही **राम** नायक है। पद्मपुराण में उनका नाम **'पद्म'** भी है जबकि मानस में नाम एक ही है—**राम** जिसके विशेषण अनेक हो सकते हैं। पद्मपुराण के राम ६००० रानियों के स्वामी, विलासी तथा मोह से युक्त हैं किन्तु मानस के राम एकपत्नीव्रत, तपस्वी तथा मोहघ्न हैं। मानस के राम का चरित्र बहुत ही आदर्श है। डॉ० माताप्रसाद गुप्त के शब्दों में 'किसी भी भाँति की काव्य प्रतिभा ने कभी भी जिन उदात्त गुणों की कल्पना की होगी, कदाचित् उन सबका एक आदर्शतम रूप हमें राम के चरित्र में समाहित मिलता है। उन्हें एक अत्यन्त भव्य शरीर गठन प्राप्त है। किन्तु इससे कहीं अधिक प्रभावोत्पादक हैं उनकी दृढ़ता, उनकी क्षोभहीनता, उनकी कृतज्ञता, उनकी निष्कलुषहृदयता, उनका दृढ़ निश्चय, उनका अदम्य उत्साह, उनकी अन्तःकरण की पवित्रता, उनकी सुशीलता और सबसे अधिक उनका निष्ठावान व्यक्तित्व। अव्यवस्था अनैतिकता, अधार्मिकता और नास्तिकता के स्थान पर व्यवस्था, नैतिकता और

आस्तिकता का संस्थापन करने के लिए एक ऐसे ही पूर्ण चरित्र की ईश्वर के रूप में दिव्य कल्पना कीजिये और यही तुलसीदास के पूर्ववर्ती भारतीय साहित्य के राम हैं। इसी पूर्ण चरित्र में—जैसे और भी पूर्णता भरने में उनकी प्रतिभा लीन होती है।'[१२११] पद्मपुराण के राम के समान ही मानस के राम का व्यक्तित्व भी वहुत आकर्षक है। उनका सौन्दर्य वर्णनातीत है। करोड़ों कामदेवों को लजानेवाले राम की शक्ति भी अतुल है और उनका शील भी। पद्मपुराण में भी राम अपरिमित शक्ति के पुंज और शील के भंडार हैं। पद्मपुराण में वज्रावर्त धनुष को चढ़ाकर एवं मानस में शिव-धनुष को तोड़कर राम अपनी शक्ति का परिचय देते हैं तथा पिता की आज्ञा मानकर वे वन के लिए प्रस्थान कर देते हैं। पद्मपुराण के राम की शक्ति का प्रमाण म्लेच्छों को परास्त करने में तथा अनेक युद्धों में पराक्रम का प्रदर्शन करने में मिलता है तो मानस के राम की शक्ति का अलौकिक प्रताप यह है कि **'भृकुटि विलास सृष्टि लय होई।'** राम तेज बल वुधि की विपुलाई को **सेस सहस सत** भी नहीं गा सकते हैं। वे दुर्द्धर्ष रावण के संहर्ता हैं। वचपन से ही ताड़का और मारीच जैसे दुष्टों का दमन करने वाले हैं। पद्मपुराण के राम रावण का वध नहीं करते। रावण का वध वहाँ लक्ष्मण के हाथों होता है। इसका कारण जैनों की यह मान्यता है कि नारायण के हाथों प्रतिनारायण का वध होता है, वलदेव के हाथों नहीं। राम वलदेव हैं, लक्ष्मण नारायण और रावण प्रतिनारायण। पद्मपुराण के राम का चरित्र लक्ष्मण के चरित्र के सामने दव सा गया है जवकि मानस के राम के चरित्र की व्याप्ति समस्त कथानक में हैं। पद्मपुराण के राम में यद्यपि शरणागतवत्सलता, कलापारंगतता, पत्नी-प्रेम, मातृ-भक्ति आदि गुण हैं, किन्तु उनमें मानस के राम जैसी मर्यादा और लोकरक्षकता नहीं है। मानस के राम मर्यादापुरुषोत्तम होने पर भी भगवान् हैं। यही कारण है कि पद्मपुराण के राम जहाँ जैनियों के कर्म-सिद्धान्त के आधार पर स्वयं तपस्या करके अन्त में कैवल्य प्राप्त करते हैं और अनेक सांसारिक स्थितियों से गुजरते हुए मोक्ष सिद्धि करते हैं वहाँ मानस के राम अपनी लीला दिखाने के लिए सांसारिक कृत्यों को करते हैं जिन का लक्ष्य है—धर्म की रक्षा। उनके दशरथ-पुत्र होने में संदेह नहीं, किन्तु उनके पूर्ण ब्रह्म होने में भी प्रश्नवाचक चिह्न नहीं लगता। वे **'ब्रह्म अनामय अज भगवंता, व्यापक, अजित, अनादि अनंता'** हैं; वे **'सज्जन, पीरा'** हरण करने वाले हैं; वे **'गो द्विज धनु देव हितकारी'** तथा **'मानुष तनु धारी' 'कृपासिंधु'** हैं; वे खल-व्रात के भंजक तथा जनरंजक हैं, वे वेद-धर्म रक्षक

१२११. तुलसीदास, पृ० २८७।

हैं; वे धर्मतरु के मूल हैं, विवेक जलधि के पूर्णेन्दु हैं, वैराग्याम्वुज के भास्कर हैं, अघघनध्वांत और मोह के नाशक हैं; शरणागतवत्सलता, कृतज्ञता, गुणज्ञता, समचित्तता, सत्यसंधता, दीनोद्धारकता तथा एक आदर्श आराध्य में सम्भावित समस्त सद्‌गुणों के वे आस्पद हैं। वे ब्रह्माशंभुफणीन्द्रसेव्य, वेदान्तवेद्य, विभु और जगदीश्वर हैं।

यद्यपि तुलसीदास की दृष्टि से अनेक कवियों द्वारा आलोचित शूर्पनखा की नाक काटना, वालि को छिपकर मारना आदि राम के कार्यकलाप लोककल्याण के लिए उचित वैठते हैं तथापि पहले मानना पड़ेगा कि मानस के राम इन विवादास्पद कार्यों से वचाये नहीं जा सके जब कि पद्मपुराण के राम इन प्रसंगों से साफ बचे हुए हैं। पद्मपुराण में राम अयोध्या में सीता की कड़ी अग्नि परीक्षा लेते हैं तथा लोकापवाद से भयभीत होकर अपने मन में उसकी शुद्धता जानते हुए भी उसे छोड़ देते हैं किन्तु मानस में तुलसी इस प्रसंग तक अपनी कथा वढ़ने ही नहीं देते। 'पद्मपुराण' के राम अन्त में केवली होते हैं, जवकि 'मानस' के राम का अन्त चित्रित ही नहीं हुआ है।

जहाँ तक **लक्ष्मण** का प्रश्न है, दोनों ही ग्रन्थों में ने विशिष्ट पात्रों में परिगणित हैं। पद्मपुराण में वे अष्टम नारायण हैं और मानस में वे शेषावतार किन्तु पद्मपुराण में उनकी महत्ता राम से भी अधिक है। पद्मपुराण में वे श्यामलवर्ण हैं जब कि मानस में गौरवर्ण। पद्मपुराण में वे ही रावण का वध करते हैं तथा अधिक क्रियाशील हैं जब कि मानस में वे राम के अनुचर के रूप में ही चित्रित हैं। उनका स्वतन्त्र अस्तित्व मानस में उभरकर नहीं आता। मानस के लक्ष्मण दृढ़, निर्भय, उत्साही, निष्कपट, तेजस्वी और शक्तिशाली है; वे 'शिवधनु' को उठाकर तोड़ने की क्षमता रखते हैं ; वे ब्रह्माण्ड को कच्चे घड़े संदेश फोड़ सकते हैं, किन्तु ये सारे काम वे अपने अग्रज श्रीरामचन्द्रजी की प्रतिष्ठा की रक्षा करने के लिए ही करना चाहते हैं, अपने लिए वे स्वतन्त्र रूप से कुछ नहीं करते मानो उन्होंने अपना जीवन श्रीराम के चरणकमलों में समर्पित कर दिया है। 'मानस' के लक्ष्मण की उग्रता और असहिष्णुता और कभी-कभी कुछ खटकने वाली निर्मर्यादता भी, जिसका प्रमाण परशुराम-संवाद और भरत-मिलाप-प्रसंग में मिलता है, उनके अनन्य राम-प्रेम से दव जाती हैं। वे वन में रहकर परम संयमी ब्रह्मचारी का जीवन विताते हुए राम की सेवा करते हैं। किन्तु पद्मपुराण के लक्ष्मण का अस्तित्व राम के चरित्र का पुच्छभूत नहीं हैं, उनका अस्तित्व राम के समानांतर चलने वाला स्वतन्त्र अस्तित्व है। पद्मपुराण के लक्ष्मण परमविलासी और अनेक रानियों के स्वामी हैं, वे चंचलचित्त युवक हैं, जिसका प्रमाण राम के द्वारा चन्द्र-

नखा को लौटाये जाने पर उसके विषय में उनकी उत्सुकता से मिलता है। पद्म-पुराण के लक्ष्मण एक वीर सामंत योद्धा के रूप में अनेक राजाओं को विजित करते हैं किन्तु मानस में ऐसा कोई प्रसंग नहीं आता। पद्मपुराण में लक्ष्मण सागरावर्त धनुष को चढ़ाते हैं जब कि मानस में वे धनुष नहीं चढ़ाते हैं। यहाँ तो रामचन्द्र के रहते वे धनुष तोड़ना पसंद नहीं करते। मानस के लक्ष्मण की सन्तान की कोई चर्चा नहीं है जब कि पद्मपुराण में उनके दो सौ पचास पुत्र[१२१२] हैं। पद्म-पुराण के लक्ष्मण मरकर नरक जाते हैं, जबकि मानस में उनके नरक-गमन की कोई चर्चा नहीं है।

भरत का चरित्र पद्मपुराण और मानस दोनों में ही आदर्श रूप में चित्रित हैं। भातृप्रेम भरत के चरित्र का वहुचर्चित विन्दु हैं, किन्तु पद्मपुराण में भरत का चरित्र इतना मार्मिक नहीं है जितना मानस में। पद्मपुराण में भरत के ने गिने-चुने काम हैं:—दीक्षा का विचार, राम के समझाने पर राज्यग्रहण, भामंडल आदि से लक्ष्मण-शक्ति का समाचार सुनकर अयोध्या में रण-सज्जा और अन्त में दीक्षा धारण करना। 'मानस' के भरत सदा राम के ध्यान में मग्न हैं और उनके चरित्र से जुड़े हुए प्रधान कार्य हैं:—गुह-मिलन, चित्रकूट-यात्रा श्रीराम की चरणपादुकाओं को राज्यसिंहासन पर स्थापित कर उनके प्रतिनिधि के रूप में शासनकार्य देखना तथा संजीवनी बूटी ले जाते हुए हनुमान को वाण मारकर गिराना तथा वस्तुस्थिति का ज्ञान होने पर उन्हें अपने वाण पर विठाकर लंका भेजने की बात कहना आदि। माता को धिक्कारना और कटु शब्द कहना भी मानस के भरत के राम-प्रेम को ही व्यक्त करते हैं। पद्मपुराण के भरत राम के अयोध्या से चलने के समय अयोध्या में ही उपस्थित हैं जबकि मानस के भरत ननिहाल में। मानस के भरत यदि राम-वन-गमन के समय अयोध्या होते तो शायद वे राज्य ही न सँभालते, भले ही लक्ष्मण की तरह वन को चल पड़ते, अस्तु। पद्मपुराण के भरत की तरह मानस के भरत एक सौ पचास स्त्रियों के स्वामी नहीं हैं। सीता के साथ भरत की क्रीडा की तो तुलतीदास कल्पना भी नहीं कर सकते जब कि रविषेण ने वड़े मनोयोगपूर्वक भरत की अपनी भाभियों के साथ जल क्रीड़ा का चित्रण किया है। कुल मिलाकर देखने पर दोनों ही ग्रंथों में भरत को एक विवेकी पुरुष के रूप में चित्रित किया गया है किन्तु तुलसी के भरत के चरित्र में किसी प्रकार की कमी नहीं है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में "उनके चरित्र में कई अमूल्य सद्भावनाओं का योग मिलता है। भरत के हृदय का विश्लेषण करने पर उनमें

१२१२. पद्म० ९४।२७

लोकभीरुता स्नेहार्दता व्यक्ति और धर्मप्रवणता का मेल पाते हैं।"[१२१३]

शत्रुघ्न का व्यक्तित्व दोनों ग्रन्थों में किसी विशिष्ट स्थान का अधिकारी नहीं है। पद्मपुराण में वे दशरथ की सुप्रभा रानी से उत्पन्न हैं और मानस में सुमित्रा से। मानस में वे कैकेयी की करतूतों से क्षुब्ध होकर मंथरा के कूबर पर लात मारते हैं किन्तु भरत के कहने से छोड़ देते हैं। इस कांड से उनके राम-प्रेम और अन्याय का विरोध करने की प्रवृत्ति की व्यञ्जना मानी जा सकती है। पद्मपुराण में मंथरा का प्रसंग है ही नहीं। पद्मपुराण में मधुसुन्दर के साथ युद्ध करने से उसकी वीरता की सिद्धि की जा सकती है। मानस के शत्रुघ्न क्रोधी प्रकृति के हैं, जब कि पद्मपुराण के शत्रुघ्न प्रायः शांत प्रकृति के जैन, जो अन्त में संसार के आकर्षण से विमुख होकर श्रमण हो जाते हैं।

जहाँ तक लव और कुश का सम्बन्ध है, मानस में उनके नाम का संकेत मात्र है और उन्हें विजयी विनयी और गुणों का भंडार कहा गया है।[१२१३] (अ) किंतु पद्मपुराण में उनके (लवणांकुश के) चरित्र का विकास भी दिखलाया गया है। पद्मपुराण की मुख्य कथा के वे सक्रिय पात्र हैं जबकि मानस की कथा में वे केवल संकेतित पात्र हैं।

पद्मपुराण और मानस दोनों में **राम की माता** पुत्रवत्सला है। पद्मपुराण में उसका नाम **अपराजिता** है और मानस में **कौशल्या** है। मानस की कौशल्या अपने औरस पुत्र राम के साथ अन्य रानियों से उत्पन्न तीनों पुत्रों को भी परम स्नेह करती हैं। वनगमन के समय वह एक विचित्र स्थिति में है क्योंकि एक ओर तो उसके सम्मुख पति के सत्य वचन की रक्षा का प्रश्न है दूसरी ओर पुत्र-वियोग। राम के लिए उसका आदेश उसकी बुद्धिमत्ता, शिष्टता और मर्यादा का द्योतक है। वह कहती है "यदि पिता ने वनवास दिया है तो माता की आज्ञा प्रधान मानकर तू वन मत जा; यदि पिता और माता दोनों ने कहा है तो चला जा; तेरे लिए वन भी सौ अयोध्याओं के समान हो।" मानस की कौशल्या के चरित्र का उसकी सादगी, ऋजुता, शिष्टता एवं मर्यादा से अधिक प्रभाव पड़ता है। पद्पुराण की अपराजिता तो पहले एक स्वार्थी स्त्री सी लगती है; वह इसलिए राम के साथ जाना चाहती है क्योंकि——

"पिता नाथोऽथवा पुत्रः कुलस्त्रीणाममी गतिः।
पितातिक्रांतकालो मे नाथो दीक्षासमुत्सुकः॥

१२१३(अ) दुइसुत सुन्दर सीता जाए। लव कुस वेद पुरानन गाए॥ दोउ विजयी विनयी गुन मन्दिर। हरि प्रतिनिधि मानहुँ अति सुन्दर॥ मानस उत्तर कांड २४।

जीवितस्य त्वमेवैकः साम्प्रतं मेऽवलम्बनम्।
त्वयापि रहिता साहं वद गच्छामि कां गतिम्॥"[१२१४]

पद्मपुराण की सुमित्रा सुवन्धुतिलक की मित्रा रानी से उत्पन्न पुत्री और दशरथ की रानी है। इसका नाम 'केकयी' है और चेष्टाओं के कारण सुमित्रा भी।[१२१५] लक्ष्मण इसके पुत्र हैं। मानस में सुमित्रा लक्ष्मण और शत्रुघ्न की माता है एवं दशरथ की कनिष्ठ रानी है। वह गम्भीर, तेजस्विनी एवं भक्त है। लक्ष्मण को राम के साथ वन भेजते समयउन का सिद्धांत यही है—"पुत्रवती जुवती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुत होई॥[१२१६]

भरत की माता का नाम पद्मपुराण में केकया है और मानस कैकेयी। पद्मपुराण में वह निखिल-कला-पारंगत, वीरागंना, बुद्धिमती एवं मनोविज्ञान की पारखी है। मानस में भी वह अपूर्वसौन्दर्यशालिनी हैं। पद्मपुराण में वह भरत के दीक्षा लेने के इरादे को वदलने के लिए दशरथ से उसके लिए राज्य माँगती है, वह राम को वन भेजने के प्रति अभिनिवेशिनी नहीं हैऔर वह राम को लौटाने भी जाती है किन्तु मानस की कैकेयी मंथरा के द्वारा बहकायी जाने पर कुटिल हो जाती है एवं दो वरों को माँगकर भरत के लिए राज्य और राम के लिए वनगमन दुःखी राजा से स्वीकार करा लेती है। वह स्वाधीनभर्तृका एवं स्वार्थ से प्रेरित एक कुटिल नारी के रूप में हमारे सामने उपस्थित होती है। पद्मपुराण में वह अपने किये पर पश्चात्ताप करती हैं और राम को वहुत मनाती है किन्तु तुलसी ने उसे अपने अपराध-प्रकाशन का समय भी नहीं दिया। कभी उसके ग्लानि से गलने की वात कही है और कभी अयोध्या प्रत्यावर्तन पर राम-लक्ष्मण के कैकेयी से बार-बार मिलने का संकेत करके कैकेयी को तुलसी ने अधिक्षिप्त किया है। भाव यह है कि पद्मपुराण की केकया के प्रति रविषेण का दृष्टिकोण प्रतिवद्ध और कटु नहीं है जैसा कि मानस की कैकेयी के प्रति तुलसी का है।

पद्मपुराण में शत्रुघ्न की माता सुप्रभा है किंतु 'मानस' में सुप्रभा नाम की कोई रानी नहीं है। शत्रुघ्न और लक्ष्मण एक ही रानी के पुत्र हैं।

पद्मपुराण और मानस दोनों में ही सीता जनक की पुत्री और राम की पत्नी हैं। वह अनिंद्य सुंदरी एवं पतिव्रता हैं। तुलसी ने एक आदर्श मर्यादित नारी के रूप में उन्हें चित्रित किया है। सखियों के साथ पुष्प वाटिका में श्रीराम को देखकर पुलकगात जल नयन से युक्त सीता का प्रेमाधिक्य, सौंदर्य एवं लज्जाशीलता

१२१४. पद्म० ३१।१७७, १७८
१२१५. पद्म० २२।१७५
१२१६. मानस, अयोध्या ४७/१

साक्षात्कृत होती है। स्वयंवर के समय राम में मन ही मन अनुरक्त किंतु गुरुजन संकोच से आक्रांत सीता की शालीनता दृष्टिगोचर होती है। विदा के अवसर पर वे भारतीय कन्याओं की भाँति अपने माता-पिता एवं सखियों के गले लग-लगकर रोती हैं। वनवास के समय वे कैकेयी की आज्ञा से वनोचित वस्त्र धारण कर अपने पति का अनुगमन करती हैं। उस राजवधू को पति के साथ वन भी राज-महल प्रतीत होता है। चित्रकूट में वे अपनी सास तथा अन्य गुरुजनों की मन से सेवा करती हैं। वे आतिथेयता सत्कार का अनुपम उदाहरण हैं। रावण को भिक्षा देती हैं। अशोकवाटिका में हम उनकी निर्भयता एवं पति-धर्मपरायणता का साक्षात्कार करते हैं। हनुमान से वातें करते हुए उनकी वुद्धिमत्ता और साव-धानता व्यक्त होती है। तुलसी ने उनमें दाम्पत्य-प्रेम और सेव्य-सेवक भाव की भक्ति का सुन्दर सामंजस्य दिखाया है। भाव यह है कि मानस की सीता पुत्री, वधू, पुत्रवधू, भाभी आदि अनेक रूपों में हमारे सम्मुख आदर्श उपस्थित करती है। एक स्थान पर सीता का चरित्र कुछ हल्का-सा दिखाई देता हैं जवकि वे लक्ष्मण को संदिग्ध दृष्टि से देखती हुई उससे **'मरम बचन'** वोलती हैं। किंतु यह स्थल संकेतात्मक ही है।

तुलसी की सीता उद्भवस्थितिसंहारकारिणी जगज्जननी हैं और रविषेण की सीता एक भूमिगोचरी राजा की पुत्री। यही कारण है कि मानसकार ने उन्हें परम मर्यादित एवं आदर्श रूप में देखा है जवकि पद्मपुराणकार ने उन्हें अधिक मनोवैज्ञानिक रूप में चित्रित किया है। मानस में उनका रूप-वर्णन संकेतात्मकता के साथ किया गया है जवकि पद्मपुराण में उनके स्तनादि का अनेक स्थानों पर खुला वर्णन किया गया हैं। तुलसी की सीता रामभक्त है जवकि रविषेण की जिन-भक्त। अपने-अपने दृष्टिकोण से दोनों का ही सीता-चित्रण ज़ोर का है। साहित्यिक दृष्टि से रविषेण आगे हैं और मर्यादावादी सांस्कृतिक दृष्टि से तुलसी।

पद्मपुराण में **रावण** का चरित्र अत्यधिक उदात्त तथा उज्ज्वल रूप में चित्रित किया गया हैं। वह अष्टम प्रतिनारायण है जिसके अपने सिद्धान्त हैं। मानस का रावण एक राक्षस है जिसका कार्य संसार को कष्ट देना है। पद्मपुराण में राम और रावण की लड़ाई सत्य और प्रतिसत्य की लड़ाई है जवकि मानस में सत्य और असत्य की। रविषेण ने रामकथा को रावणपक्षीय पात्रों की ओर से देखने का प्रयत्न किया है, जवकि वाल्मीकि और तुलसी ने राम-कथा को रामपक्षीय पात्रों की ओर से देखा है। तुलसी रावण के प्रति उदार नहीं हैं क्योंकि वह अधर्म का प्रतीक है, वह तपस्या करके भी यही वर माँगता है कि **'हम काहू के मारे न**

मारें'; वह कोई धर्म का आचरण नहीं करता। यद्यपि उसकी सुख-सम्पत्ति, सुत, सेना, सहायक, जय, प्रताप, बल, बुद्धि और बड़ाई नित्य नूतन बढ़ती जाती है किंतु वह "ध्रुवमुपचितो मुह्यति खलः" के अनुसार ब्राह्मण-भोजन-यज्ञ-हवन में बाधा डलवाता है। उसकी यह आज्ञा है—सुनहु सकल रजनीचर जूथा। हमरे बैरी बिबिध बरूथा।। ते सनमुख नहिं करहिं लराई। देखि सकल रिपु जाहिं पराई।। तिन्ह कर मरन एक बिधि होई। कहहुँ बुझाइ सुनहुँ अब सोई।। द्विज भोजन, मख, होय सराधा। सबकै जाइ करहु तुम बाधा।[1217]

वह अनेक राजाओं को अपने अधीन करता है तथा अनेक किन्नर, देव, यक्ष, गंधर्व, नर एवं नागों की कन्याओं से विवाह कर लेता है।[1218] गो-ब्राह्मणघ्न धर्मध्वंसी रावण के पापों का कोई ठिकाना नहीं है। वह निशाचर है, कपटवेश धारण करके सीता-हरण करता है तथा जटायु को घायल करके सीता को लंका के अशोक-वन में छोड़ देता है जहाँ उसे वह अनेक भय दिखाता है। वह अपार अभिमानी है। राम की ब्रह्मता का आभास प्राप्त कर लेने पर भी तथा विभीषण और मंदोदरी आदि के समझाने पर भी वह सीता को लौटाने के लिए उद्यत नहीं होता और अपनी हठधर्मिता पर अटल रहकर भगवान् राम के हाथों युद्ध में मारा जाता है। राम-भक्ति भी उसके मन के अन्दर देखी जा सकती है जबकि राम को भगवान् समझकर वह हठपूर्वक उनसे वैर करके मरना चाहता है। अपनी आद्या शक्ति सीता का ध्यान करने के कारण भगवान् उसे मरणोपरांत अपना धाम देते हैं।

पद्मपुराण का रावण सुंदर, रमणीयाकृति तथा मनोहर है जबकि मानस का भयंकर। पद्मपुराण के रावण के एक मुख तथा दो बाहु हैं, दशाननत्व तो उसे हार में प्रतिबिम्ब दिखाई देने से प्राप्त होता है जबकि मानस के रावण के दस मुख तथा बीस भुजाएँ हैं।

दोनों का रावण शूरवीर तथा विजेता हैं किन्तु पद्मपुराण का रावण अत्याचारी नहीं है; वह किसी गो-ब्राह्मण का हन्ता नहीं है जैसा कि मानस का रावण है। पद्मपुराण के रावण के रूप-शील-सौन्दर्य के वशीभूत होकर अनेक कन्याएँ उसे वरती हैं तथा वह भी राजी से अनेक कन्याओं से रमण करता है जबकि 'मानस' का रावण पराजित राजाओं की कन्याओं से विवाह करता है (जो कि विवशता का ही परिचायक है।)

१२१७. मानस, बाल कांड १८१।३-४

१२१८. मानस, बाल कांड १८५।२(ख)।

पद्मपुराण का रावण विनयी, सहिष्णु, प्रजापालक, धर्माधर्मविवेकी, गम्भीर नीतिज्ञ तथा उदात्त है जबकि 'मानस' का अविनयी, असहिष्णु, प्रजोच्छेदक, अधर्मी अभिमानी तथा निकृष्ट। पद्मपुराण का रावण सच्चा मनोयोगी साधक है जो **'बहुरूपिणी'** विद्या सिद्ध करके ही उठता है, चाहे वानर उसे कितना ही कष्ट दें किन्तु मानस का रावण यज्ञ-विध्वंस पर बौखला उठता है तथा सिद्धि नहीं कर पाता। पद्मपुराण के रावण द्वारा युद्धभूमि में शक्तिनिहत लक्ष्मण को देखने की राम को अनुमति देना तथा कुम्भकर्ण को वरुण की स्त्रियों को बन्दी बनाने पर फटकार देना—आदि कार्य ऐसे हैं जिनके समान किसी कार्य का 'मानस' के रावण में सद्भाव नहीं दिखाई देता।

संक्षेप में पद्मपुराण का रावण अधिक उदात्त है, वह अपने वंश का नाम करने वाला है तथा मानस का रावण पुलत्स्य ऋषि के वंश-रूपी चन्द्र का कलंक।

मानस का **कुम्भकर्ण** भूधराकार है। वह नगाड़े आदि बजाये जाने पर उठता है। उठते ही रावण को सीताहरण के लिए बुरा-भला कहता है और राम-भक्त विभीषण की प्रशंसा करता है किन्तु मदिरापान और मांस-भक्षण करके वह आपे से बाहर होकर गर्जना करता है। वह रणधीर है और वानर-सेना में त्राहि-त्राहि मचा देने वाला है। वह अपने मुष्टि-प्रहार से हनुमान को चक्कर खिला देता है। इसी प्रकार के अनेकों विकट काम करता हुआ वह राम के द्वारा मारा जाता है। किन्तु पद्पुराण में कुम्भकर्ण मारा नहीं जाता, वह केवल बन्दी बनाया जाता है। और मुक्त होने पर दीक्षा ले लेता है। पद्मपुराण में वह शीलवान् है और अनंत-बल केवली की शरण में उसने नित्यप्रति जिनेन्द्र-वंदना करने की प्रतिज्ञा की है।

विभीषण का चरित्र दोनों कवियों ने अपनी-अपनी व्याख्याओं से सँवारने का प्रयत्न किया है। घर के भेदी लंका ढहाने वाले विभीषण के देशद्रोह और भ्रातृ-द्रोह को 'मानस' में रामभक्ति का पुट देकर परिमार्जित कर लिया गया है किन्तु पद्मपुराण में कुछ काल के लिए वह इन दोषों से मुक्त नहीं होता। मानस में विभीषण के द्वारा दशरथ-जनक-हत्या का प्रयास, रावण के साथ खम्भा उखाड़ कर लड़ने की क्रोधभरी सज्जा तथा अयोध्या का नवनिर्माण आदि चित्रित नहीं हैं। हाँ, राम के द्वारा उसको 'लंकेश' कहा जाना दोनों ग्रन्थों में वर्णित है। राम के परामर्शदाता के रूप में वह दोनों ग्रन्थों में चित्रित है। रावण-वध के बाद वह दोनों ग्रन्थों में दुःखी होता है।

पद्मपुराण और मानस में रावण के इन पुत्रों का उल्लेख हुआ है—**मेघवाहन, इन्द्रजित् और अक्षकुमार**। पद्मपुराण में पहले दो आते हैं और मानस में बाद के दो। अक्षकुमार का तो हनुमानके द्वारा वध होताहै और मेघनाद हनुमान-बन्धन

और लक्ष्मण-शक्ति का कारण है। वह सच्चा वीर और पत्नीव्रत है। पद्मपुराण में मेघवाहन और इन्द्रजित् की चर्चा है। इन्द्रजित् हनूमान् को बाँधकर रावण के सामने लाता है। वह विभीषण को भी खरी-खोटी सुनाता है किन्तु युद्ध में उसका लिहाज भी करता है।[१२१९] पद्मपुराण में इन्द्रजित् मारा नहीं जाता, बन्दी बनाया जाता है और अन्त में दीक्षा ग्रहण करता है।

खर-दूषण दोनों ग्रन्थों में छोटा-सा चरित्र है। पद्पुराण में खरदूषण एक ही पात्र है जबकि मानस में 'खर' और 'दूषण' नामधारी दो पात्र हैं। पद्मपुराण का खरदूषण रावण का बहनोई है। वह चन्द्रनखा का हरण करता है तथा लक्ष्मण से युद्ध करता हुआ मारा जाता है। मानस में खर और दूषण रावण के भाई लगते हैं जिनका राम से युद्ध होता है इस युद्ध से उनका भगिनी-प्रेम स्पष्ट होता है।

मानस की मंदोदरी राम भक्त के रूप में हमारे सामने आती है। वह सदैव रावण को समझाती हुई ही दिखाई देती है। वह बार-बार कहती है कि रावण को सीता राम के पास वापस भेज देनी चाहिए। जब राम के बाण से रावण का मुकुट और मन्दोदरी के ताटंक गिरते हैं, तभी वह इसे अपशकुन समझकर रावण को समझाने लगती है। वह राम के विश्वरूप का भी वर्णन करती है। रावण-मरण पर किये गये विलाप में भी वह राम को **'अग जगनाथ'**, 'हरि' और **'निरामय ब्रह्म'** कहकर पुकारती है। इस पात्र के चरित्र में एक और भी बात मिलती है और वह है उसकी रावण के प्रति भावना। मन्दोदरी कई बार रावण को नीच तक कह देती है। पद्मपुराण की मन्दोदरी का चरित्र मानस की मन्दोदरी से कहीं ऊँचा है। वह अपने पति को 'नीच' आदि नहीं कहती। राम-भक्ति के अनन्य पक्षपाती तुलसी रावण को उसके अभिन्न परिजनों से भी अनादृत कर असत् की सर्वत्र गर्हणा दिखाना चाहते थे किन्तु रविषेण ऐसा नहीं करता। 'मानस' की मन्दोदरी राम की ब्रह्मता में ही उलझकर रह जाती है किन्तु पद्मपुराण की मन्दोदरी का चरित्र चन्द्रनखा-हरण-प्रसंग, मन्दोदरी-सीता-संवाद, रावण-मन्दोदरी-संवाद तथा दीक्षा-ग्रहण आदि के समय निखरता दिखाई देता है। जब रावण के लिए रविषेण की उदात्त भावना है तो मन्दोदरी के प्रति क्यों न होती?

१२१९. वानर सेना का ध्वंस करके इन्द्रजित् ने विभीषण को सामने आया देखकर इस प्रकार विचार किया है—

"तातस्यास्य च को भेदो न्यायो यदि निरीक्ष्यते।
ततोऽभिमुखमेतस्य नावस्थातुं प्रशस्यते ॥ (पद्म०, ६०।१२३)

रावण की बहिन का नाम पद्मपुराण में चन्द्रनखा है और मानस में सूर्पनखा। पंचवटी में घूमती हुई वह राम लक्ष्मण से विवाह की प्रार्थना करती है। राम उसे लक्ष्मण के पास और लक्ष्मण राम के पास भेजते हैं। बाद में लक्ष्मण उसके नाक और कान काट देते हैं जिससे वह खरदूषण और रावण के पास शिकायत करती है। यद्यपि दोनों ग्रन्थों में ही उसे कुटिल दिखाया गया है तथापि उसका चरित्र पद्मपुराण में अधिक विस्तृत, मनोवैज्ञानिक एवं युक्तिपूर्ण है।

'मानस' में '**त्रिजटा** सीता से सहानुभूति रखने वाली राक्षसी के रूप में चित्रित है। पद्मपुराण में उसकी चर्चा नहीं है। पद्मपुराण की **लंकासुन्दरी** और मानस की **लंकिनी** में पर्याप्त अन्तर है। पद्मपुराण की लंकासुन्दरी वीरांगना और भावुक वाला है जबकि मानस की लंकिनी एक निशिचरी है जिसका वध हनुमान करते हैं जिसे वह अपना अहोभाग्य समझती है क्योंकि रामदूत के मुष्टिप्रहार से उसकी गति हो जाती है। पद्मपुराण और मानस के हनुमान के चरित्र में आकाश-पाताल का अन्तर है। पद्मपुराण में **हनूमान** विलासी हैं किंतु मानस में वे अखंड ब्रह्मचारी रामभक्त। पद्मपुराण के हनूमान् खर-दूषण हंता राम के प्रति क्रुद्ध भी हो जाते हैं किन्तु मानस में ऐसी सम्भावना भी नहीं की जा सकती। पद्मपुराण के हनूमान् का रावण और सुग्रीव से सम्बन्ध है किन्तु मानस के हनुमान का उनसे कोई सम्बन्ध नहीं है। मानस के हनुमान परम रामभक्त, चतुर, वीर, शक्तिशाली, वन्दर, और विकट योद्धा हैं। वे सुरसा के मुख से निकलकर अपनी चतुरता का, समुद्रलंघन, लंका दहन, द्रोण गिरि-आहरण आदि से वीरता और शक्तिमत्ता का, अक्षकुमार, इन्द्रजित् और रावणादि के साथ युद्ध करने से अपने योद्धृत्व का एवं सीता और राम के साथ वार्तालाप से अपने विनय का परिचय देते हैं। वे निर्भीक, विवेकी, जितेन्द्रिय तथा धार्मिक हैं। विभीषण उनकास्वागत करता है। 'एक प्रकार से हनुमान का चरित्र दास्यभक्ति का प्रतीक है। राम की ओजस्विता और विवेक, भरत का वैराग्य और रामभक्ति, लक्ष्मण का शौर्य और रामसेवा, रावण का पौरुप और प्रचण्डता कुम्भकर्ण का धैर्य और धड़क और निज का वुद्धिचातुर्य, अतुल वल और मनोजव इन गुणो का समीकरण गोस्वामी जी के हनुमान हैं।'

बालि, दोनों ग्रन्थों में सुग्रीव का बड़ा भाई है। पद्मपुराण में वह मुनि हो जाता है। मानस का बालि मायावी दैत्य का वध करता है तथा बाद में वह सुग्रीव का शत्रु बन जाता है वह तारा के समझाने पर भी नहीं मानता और सुग्रीव से युद्ध करता है। अन्त में वह राम द्वारा ताड़ वृक्ष की ओट से मारा जाता है और मरते-मरते अंगद को श्रीराम के हाथ सौंप जाता है। स्पष्ट है कि मानस

के वालि का चरित्र अधिक मार्मिक है।

सुग्रीव का चरित्र प्रायः दोनों ग्रंथों में एक सा ही है। वह वालि का अनुज है। पद्मपुराण में वह साहसगति विद्याधर के द्वारा उपद्रुत होता है एवं राम की सहायता लेता है जबकि मानस में वह वालि का विरोधी है एवं उससे भयभीत है। राम के द्वारा अपने विरोधी का वध कर दिये जाने पर वह प्रमाद कर बैठता है, किंतु लक्ष्मण के क्रोध से रास्ते पर आ जाता है और श्रीराम की सहायता करता है।

अंगद का उल्लेख उभयत्र हुआ है और चरित्र भी प्रायः समान ही है। उसका कार्य राम की सेवा करना और रावण को अपमानित करना है किन्तु पद्मपुराण में यह सुग्रीव का पुत्र है जबकि मानस में वाली का। पद्मपुराण में वह योद्धा, साहसी, सुन्दर, प्रभावक और रसिक है। वह रावण की स्त्रियों की दुर्दशा करता है किन्तु रावण के विद्या सिद्ध कर लेने पर भाग खड़ा होता है जिससे उसकी चतुरता भी सिद्ध होती है। सुग्रीव के दीक्षा लेने पर वह राजा होता है।

मानस का अंगद बलवान् है। वह उद्दण्ड भी है और रावण को बुरा भला कहता है। पैर जमाकर खड़ा होने से वह एक आतंककारी व्यक्तित्व का प्रकाशन करता है। मेघनाद का यज्ञ-भंग करने में भी वह सबसे आगे है। रावण-वध के बाद राम का वह विशेष स्नेह-भाजन बन जाता है और उनके गले का हार प्राप्त करता है।

जनक दोनों ही ग्रन्थों में सीता के पिता और राम के श्वसुर हैं किन्तु इनके परिचय और चरित्र में पर्याप्त अन्तर है। पद्मपुराण के जनक के साथ विभीषण से आतंकित होकर दशरथ सहित कौतुकमंगल नगर में भाग जाने की कथा जुड़ी हुई है जबकि मानस में ऐसी कोई घटना जनक से सम्बद्ध नहीं है। मानस के जनक विदेहराज हैं और योगियों के भी योगी हैं। सीता-स्वयम्वर के समय वे शिव-धनुष को चढ़ाने की शर्त पर अपनी पुत्री सीता के विवाह की घोषणा करते हैं। राम के द्वारा धनुभंग किये जाने पर वे परम आनंदित हैं। वे अतिथि-सत्कार-कर्ता, विनीत और वात्सल्य के अवतार हैं। बारात के लिए अनेक सुविधाओं का प्रबन्ध करने, दशरथ के साथ प्रेम से मिलने, सीता की विदा के समय आँखों में आँसू भर लाने और तपस्वी वेष में पुत्री तथा जामाता को देखकर विह्वल हो जाने आदि से उपर्युक्त तथ्य पुष्ट होता है। वे राजर्षि हैं। इस प्रकार जनक संतानप्रेमी, आत्माभिमानी, सरल, विनयी, आदर्श मित्र, राजा, श्वसुर और पिता के रूप में उपस्थित हुए हैं। मानस के जनक अधिक विद्वान् और आध्यात्मिक हैं।

जाम्बवान् दोनों ग्रन्थों में हनूमान् को लंका जाने की राय देता है और एक

परामर्शदाता के रूप में चित्रित किया गया है।

जटायु दोनों ग्रन्थों में रावण का विरोधी, यथाशक्ति पराक्रमी एवं राम सीता का सहायक सिद्ध होता है। मानस में उसका अधिक मार्मिक चित्रण हुआ है जब कि पद्मपुराण में उसके चरित्र को बुद्धिसंगत बनाने का ही प्रयत्न किया गया है। राम के द्वारा उसे दिव्य शरीर की प्राप्ति होती है।

पद्मपुराण में **सुतारा** सुग्रीव की पत्नी है किन्तु मानस की तारा बालि की पत्नी और अंगद की माता है। वह बालि को राम के विरुद्ध न लड़ने का परामर्श देती है और बालि की मृत्यु पर विलाप करती है। राम उसे उपदेश देते हैं। मानस में उसके चरित्र का अधिक विकास हुआ है।

पौराणिक महापुरुष पात्रों में **नारद** का नाम उल्लेखनीय है। दोनों ही ग्रन्थों में नारद का चरित्र महत्वपूर्ण है। पद्मपुराण का नारद कथा से संबंधित तथ्यों को इधर से उधर पहुँचाता है और मानस का नारद राम को अवतार के लिए विवश करता है। दोनों का अपना-अपना महत्त्व है।

मानस में कुछ ऐसे पात्र हैं जो कि पद्मपुराण में नहीं आते जैसे **मंथरा, शबरी, अनसूया, संपाति, वसिष्ठ, विश्वामित्र, शिव, निषाद, काकभुशुंडि और सुलोचना** आदि। इनका कोई विशेष चरित्र-चित्रण नहीं हुआ है।

उपर्युक्त विवेचन से रविषेण और तुलसी के चरित्र-चित्रण-कौशल का परिचय हमें मिला जाता है। चरित्र-चित्रण के मूल मंत्र मनोविज्ञान का ज्ञान दोनों को है। फिर भी अपने अपने दृष्टिकोण के अनुसार एक ने कुछ पात्रों को अधिक सुन्दरता के साथ चित्रित किया जाता है तो दूसरे ने अन्य पात्रों को। रविषेण ने लक्ष्मण, रावण, सीता, लवणांकुश, मन्दोदरी, लंकासुन्दरी और हनूमान् आदि का चरित्र बड़े मनोयोग और विस्तार के साथ चित्रित किया है। उसने रावण की तो कायापलट ही कर दी है जिसका परिचय पीछे दिया जा चुका है। मानस में राम, दशरथ, भरत, कौसल्या, सुमित्रा, कुंभकर्ण, इंद्रजित्, जनक और नारद उल्लेखनीय पात्र हैं जिनके चरित्र-चित्रण में तुलसी ने पर्याप्त मनोवैज्ञानिक दक्षता से काम लिया है। संक्षेपतः, राम-पक्ष के चरित्रों को तुलसी ने अधिक निखारा है और रावण-पक्ष के चरित्रों को रविषेण ने, जिसके आधार पर कहा जा सकता है कि दोनों कवि पात्रों के चरित्र के सफल चितेरे हैं।

पद्मपुराण और रामचरितमानस का भावपक्ष : जहाँ तक भावसम्पदा का प्रश्न है दोनों कवि उसके धनी हैं किंतु तुलसी का मर्यादावादी दृष्टिकोण उन्हें बहुत कुछ सांकेतिक शैली के वर्णनों के लिए प्रेरित करता रहा है। पद्मपुराण का **संयोग शृंगार** स्वच्छंद, उन्मुक्त एवं विस्तृत है जब कि मानस का संयोग शृंगार पूर्ण मर्यादित एवं

सूक्ष्म, क्यों कि तुलसी मर्यादा पुरुषोत्तम की रति का अतिरंजित वर्णन करके **'इदं पित्रोः संम्भोगवर्णनमिवात्यंतमनुचितम्'** नहीं सुनना चाहते थे और न अपने इष्ट को इतरजनसाधारण बनाना चाहते थे जबकि रविषेण को इसकी कोई चिन्ता न करके एक उच्च कोटि का साहित्यिक तथा आकर्षक पौराणिक काव्य प्रस्तुत करना था। रविषेण अंजना और पवनंजय के सम्भोग का वर्णन करते समय दोनों के आलिंगन का, पवनंजय के द्वारा अंजना को निर्निमेष देखने एवं मुख-चुम्बन से पूर्व उसके चरण, कर, नाभि, स्तन, ठोड़ी, कनपटी एवं नेत्रों के चुम्बन करने का, अधर-पान का, अंजना के नीवीविमोचन का, सम्भोग के समय **'छोड़ो' 'ठहरो' 'पकड़ लो'** (तिष्ठा मुंच, गृहाण) आदि शब्दों का, अधरग्रहण पर अंजना के सीत्कार का, अंजना के जघनस्थल पर पवनंजय के द्वारा किये गये नखक्षतों का तथा अन्य अनेक चेष्टाओं का खुला वर्णन करते हैं जबकि तुलसी राम और सीता के पुष्प-वाटिका-मिलन का वर्णन करते समय बड़ी व्यंजनापूर्ण शैली में राम और सीता के पारस्परिक अनुराग का परम मर्यादित और मनोरम चित्रण करते हैं—

कंकन किंकनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन रामु हृदयँ गुनि॥
मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा बिस्व बिजय कहँ कीन्ही॥
अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा। सिय मुख ससि भए नयन चकोरा॥
भए बिलोचन चारु अचंचल। मनहुँ सकुचि निमि तजे दिगंचल॥
देखि सीय सोभा सुखु पावा। हृदयँ सराहत बचनु न आवा॥
जनु बिरंचि सब निज निपुनाई। बिरचि बिस्व कहँ प्रगटि देखाई॥[१२२०]

यह प्रसंग शृंगार की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ है किन्तु इसमें सांकेतिता और सूक्ष्मता अधिक है जोकि पद्मपुराण के संभोग-वर्णन में नहीं है।

वियोग-वर्णन दोनों ग्रन्थों में समयानुसार हुए हैं। मानस के अरण्यकाण्ड में सीता के विरह में राम की दशा[१२२१] एवं सुन्दरकाण्ड में राम के विरह में सीता

१२२०. मानस, बालकाण्ड, २३०

१२२१. आश्रम देखि जानकी हीना। भए बिकल जस प्राकृत दीना॥
हा गुनखानि जानकी सीता। रूप सील ब्रत नेम पुनीता॥
लछिमन समुझाए बहु भाँती। पूछत चले लता तरु पाँती॥
हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम्ह देखी सीता मृगननी॥
खंजन सुक कपोत मृग मीना। मधुप निकर कोकिला प्रवीना॥
कुंद कली दाड़िम दामिनी। कमल सरद ससि अहिभामिनी॥
बरुन पास मनोज धनु हंसा। गज केहरि निज सुनत प्रसंसा॥
श्रीफल कनक कदलि हरषाहीं। नेकु न संक सकुच मन माहीं॥
सुनु जानकी तोहि बिनु आजू। हरषे सकल पाइ जनु राजू॥
किमि सहि जात अनख तोहि पाहीं। प्रिया बेगि प्रकटसि कस नाहीं॥
एहि बिधि खोजत बिलपत स्वामी। मनहुँ महा बिरही अति कामी॥
—मानस, अरण्य०, २९।३-८

की दशा वियोग-वर्णन के उदाहरण के रूप में लिये जा सकते हैं। पद्मपुराण और मानस के वियोग-वर्णनों की तुलना करने पर कहा जा सकता है कि तुलसी ने **"जानु प्रीतिरस एतनेहि माँही"** जैसे व्यंजनापूर्ण वाक्यों से वियोग की मार्मिक व्यंजना करके अपनी भाषा की समासशक्ति का और कल्पना की समाहारशक्ति का परिचय दिया है जब कि रविषेण ने कविसमयख्यातियों तथा अन्य साहित्यिक मान्यताओं का उपयोग करते हुए अपने विस्तृत वर्णन-कौशल का परिचय दिया है।

यद्यपि पद्मपुराण के समान मानस में भी अन्य रसों की अपेक्षा **हास्य रस** की अभिव्यक्ति अत्यल्प हुई है, तथापि नारद-प्रसंग, शिव-बारात, लक्ष्मण-परशुराम-संवाद, अंगद-रावण-संवाद तथा विवाह के अवसर पर मर्यादित हास्य की अभिव्यक्ति हुई है। यद्यपि हास्य की अभिव्यक्ति की दृष्टि से तुलसी कुछ आगे है किन्तु इस रस के लिये रुझान दोनों कवियों का नहीं है।

पद्मपुराण और मानस के **करुण रस** के अभिव्यंजन के विषय में भी वही निर्णय दिया जा सकता है जो वियोग के विषय में। मानस में करुण रस का साक्षात्कार, राम-वन-गमन पर दशरथ की दशा,[१२२२] लक्ष्मण-मूर्च्छा पर राम-विलाप[१२२३] तथा कुछ अन्य वर्णनों में होता है। मानस के इन प्रसंगों में अनुभावादि के, थोड़े में बहुत कहने की शैली से, कारुणिक दृश्य उपस्थित किये गये हैं जबकि पद्मपुराण के करुण रस के प्रसंगों में अनुभावादि को सांगोपांग वर्णित किया गया है। जहाँ मानस में—**"करहिं विलाप अनेक प्रकारा। परहिं भूमि तल बारहिं बारा॥"** कहकर शोक की व्यंजना कर दी गयी है वहाँ पद्मपुराण में अनेक प्रकार के विलाप और भूमिपात आदि का वर्णन किया गया है।

रौद्र-रस की व्यंजना दोनों ग्रन्थों में अवसरानुसार हुई है। मानस के धनुष-यज्ञ में, जनक के **"बीर बिहीन मही मैं जानी"** कह देने पर तमके हुए लक्ष्मण की उक्ति[१२२४] में रौद्र रस की अभिव्यंजना हुई है। रौद्र रस के चित्र खींचने में रविषेण और तुलसी दोनों ही सफल हुए हैं किन्तु रविषेण विस्तारवादी प्रतीत होते हैं जबकि तुलसी संक्षेपवादी।

१२२२. आसन सयन विभूषन हीना। परेउ भूमितल निपट मलीना॥
लेइ उसासु सोच एहि भाँती। सुरपुर तें जनु खँसेउ जजाती॥
लेत सोच भरि छिनु-छिनु छाती। जनु जरि पंख परेउ संपाती॥
राम-राम कह राम सनेही। पुनि कह राम लखन बैदेही॥
(मानस, अयोध्याकाण्ड, १४८)

१२२३. मानस, लङ्काकाण्ड. ६०-६१

१२२४. मानस, बालकाण्ड, २५३

वीर रस की अभिव्यक्ति में पद्मपुराण मानस से पर्याप्त आगे है। विविध युद्धों के दौरान रणबाँकुरे वीरों के उत्साह एवं उनकी वीरता की चेष्टाओं का वर्णन करते समय लगता है कि मानो रविषेण युद्धस्थल में किसी मँचान पर बैठे हों और उस युद्ध को उन्होंने फिल्मा लिया हो जिसका प्रदर्शन हमारे सामने हो रहा है। जब रविषेण हमारे सामने वीरों की उक्तियाँ प्रस्तुत करते हैं तब लगता है मानो रविषेण ने उन्हें टेप रिकार्ड कर लिया हो। इस कथन का यह तात्पर्य नहीं है कि मानस में वीर रस की सफल अभिव्यक्ति नहीं हुई। जटायु-रावण-युद्ध तथा किष्किन्धाकाण्ड-सुन्दरकाण्ड-लंकाकाण्ड के अनेक प्रसंगों में वीर रस का अच्छा परिपाक हुआ है। अयोध्याकाण्ड में भरत को आते हुए देखकर शंकित निषादराज की उक्ति में उसका उत्साह देखते ही बनता है।[१२२५]

मानस में भरत के अयोध्या-प्रवेश पर अयोध्या की भयानकता एवं युद्ध की भयानकता के वर्णन[१२२६] के अवसर पर **भयानक रस** की अभिव्यक्ति हुई है किन्तु पद्मपुराण में रावण के द्वारा कैलाश के कम्पन के वर्णन में हा-हा-हुं-ही-आदि शब्दों से जो साक्षात् भय की अभिव्यंजना होती है वैसी अभिव्यक्ति मानस में अपेक्षाकृत कम है। वस्तुत: कठोर रसों की अभिव्यंजना में तुलसी रविषेण की समता नहीं कर सकते।

बीभत्स रस की अभिव्यक्ति के अवसर पद्मपुराण में अधिक है। मानस के लंकाकाण्ड में भी उसके अवसर आये हैं। युद्ध में बहने वाली रुधिर की नदी, गीधों के द्वारा आँत खींचने, जोगिनियों के द्वारा खप्पर में खून भरने एवं गीदड़ों के द्वारा कट-कट करके हड्डी खाने आदि के वर्णन में बीभत्स रस की व्यंजना हुई है।[१२२७]

१२२५. होहु सँजोइल रोकहु घाटा। ठाटहु सकल मरै के ठाटा॥
सनमुख लोह भरत सन लेऊँ। जिअत न सुरसरि उतरन देऊँ॥
समर मरनु पुनि सुरसरि तीरा। राम काजु छनभंगु सरीरा॥
भरत भाइ नृपु मैं जन नीचू। बड़ें भाग अस पाइय मीचू॥
स्वामि काज करिहउँ रन रारी। जस धवलिहउँ भुवन दस चारी॥
तजउँ प्रान रघुनाथ निहोरे। दुहूँ हाथ मुँह मोदक मोरे॥
(मानस, अयोध्याकाण्ड, १९०-१९१)

१२२६. देखिए, मानस, लङ्काकाण्ड ८७

१२२७. मज्जहिं भूत पिसाच बेताला। प्रमथ महा झोटिंग कराला॥
काक कंक लै भुजा उड़ाहीं। एक ते छीनि एक लै खाहीं॥

× × ×

अद्भुत रस के अवसर मानस में अनेक आये हैं। **अशेषकारणपर** राम तो **'कर्त्तुमकर्त्तुमन्यथाकर्त्तुं समर्थ'** हैं, फिर भला उनके चरित्र से सम्बद्ध कथानक में अद्भुतता क्यों न होती ! बचपन में राम का विराट् रूप-दर्शन (बाल० २०१-२०२), देवताओं की उपस्थिति (उत्तर० ७८-८०), पुष्पवर्षा, प्रकृति पर राम का अनुशासन, हनुमान के समुद्रलंघनादि लोकोत्तर कृत्य, शिवधनुभंग आदि अनेक प्रसंग इसके उदाहरण हैं। श्रीराम का विराट्-रूप-दर्शन-प्रसंग उदाहरणार्थ प्रस्तुत है—

देखरावा मातहि निज अद्भुत रूप अखंड।
रोम-रोम प्रति लागे कोटि-कोटि ब्रह्मंड ॥
अगनित रबि ससि सिव चतुरानन। बहु गिरि सरित सिंधु महि कानन ॥
काल कर्म गुन ग्यान सुभाऊ। सोउ देखा जो सुना न काऊ ॥
देखी माया सब बिधि गाढ़ी। अति सभीत जोरें कर ठाढ़ी ॥
देखा जीव नचावइ जाहीं। देखी भगति जो छोरइ ताहीं ॥
तन पुलकित मुख बचन न आवा। नयन मूदि चरननि सिरु नावा।
बिसमयवंत देखि महतारी। भए बहुरि सिसुरूप खरारी ॥[१२२८]

शांत रस की अभिव्यक्ति भरत की आत्मग्लानि, दशरथ की आत्मसंत्सना, कैकेयी की आत्मग्लानि आदि प्रसंगों में हुई है। पद्मपुराण में शांत रस की अभिव्यक्ति के स्थलों में विशदता और वर्णनात्मकता अधिक दृष्टिगोचर होती है किन्तु मानस के शांत रस के प्रसंगों में संक्षिप्तता अधिक है।

जिस प्रकार पद्पुराण में जिनेन्द्र की भक्ति के अनेक प्रसंग **भक्ति रस** के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत हुए हैं उसी प्रकार मानस में भी रामभक्ति और शिव-भक्ति के सूचक स्थलों में भक्ति रस का उन्मेष दिखायी पड़ता है। निर्भर भक्ति के प्रार्थी तुलसी ने अनेक पात्रों के द्वारा की गयी स्तुतियों में तथा कांडों के आरम्भ में दिये गये श्लोकों में भक्ति रस की कलकलनिनादिनी और शीतलतादायिनी धारा प्रवाहित की है। तुलसी की अहैतुकी भक्ति की जो मार्मिकता तथा सहज

खैंचहिं गीध आंत तट भए। जनु बंसी खेलत चित दए ॥
बहु भट बहहिं चढ़े खग जाहीं। जनु नावरि खेलहिं सरि माहीं ॥
जोगिनि भरि-भरि खप्पर संचहि। भूत पिसाच बधू नभ नंचहिं ॥
× × ×,
जंबुक निकर कटक्कट कट्टहि। सीस परे महि जय जय बोल्लहिं ॥
(मानस, लङ्काकाण्ड, ८७।१-५)

१२२८. मानस, बालकाण्ड, २०१।१, २, ३।

भावुकता है वह पद्मपुराण की जिनपूजा-प्रचाराभिनिवेशिनी भक्ति में नहीं है। तुलसी ने हृदय खोलकर रख दिया है, जबकि रविषेण ने हृदय के साथ अपने मस्तिष्क को भी अपने लक्ष्य के प्रति जागरूक रखा है।

मानस में राम-लक्ष्मणादि की बालक्रीड़ा[१२२९]कौशल्या-भरत-भेंट तथा चित्रकूट में जनक-सीता-भेंट आदि प्रसंगों में **वात्सल्य रस** की अभिव्यक्ति हुई है। वियोग-वात्सल्य की अभिव्यक्ति, सीता के पितृगृह से विदा होने के प्रसंग में, हुई है।[१२३०]

जिस प्रकार पद्मपुराण में रसादि में परिगणित रसाभास आदि के उदाहरण मिलते हैं, उसी प्रकार मानस में भी उनके उदाहरण मिलते हैं।

मानस में तिर्यग्गत रति का संकेत वहाँ मिलता है जहाँ कि कामदेव की माया फैलने पर जलचर और थलचर पशु-पक्षी भी कामवश हो जाते हैं।[१२३१] प्रतापभानु के प्रति अभिव्यक्त कपटमुनि के प्रेम को **भावाभास** के उदाहरण के रूप में लिया जा सकता है।[१२३२] **भावोदय** और **भावशांति** की स्थिति वहाँ देखी जा सकती है जहाँ कि क्रोधी परशुराम का क्रोध शांत होता है एवं विस्मय उदित होता है। सीता द्वारा मुद्रिका देखने पर हर्ष और विषाद की एक साथ अनुभूति किये जाने पर **भाव-संधि** देखी जा सकती है। **भावशबलता** का उदाहरण राम के इस कथन में पाया जा सकता है—

१२२९. वाल चरित हरि वहु विधि कीन्हा। अति अनंद दासन्ह कहँ दीन्हा।

० ० ०

भोजन करत वोल जब राजा। नहिं आवत तजि वाल समाजा॥
कौसल्या जब वोलन जाई। ठुमुकु-ठुमुकु प्रभु चलहिं पराई॥ आदि

मानस, वालकाण्ड, २०२-२०३

१२३०. पुनि पुनि मिलत सखिन्ह विलगाई। बाल वच्छ जिमि धेनु लवाई।

० ० ०

वंधु समेत जनक तव आये। प्रेम उमगि लोचन जल छाये।
सीय विलोकि धीरता भागी। रहे कहावत परम बिरागी॥
लीन्हि रायँ उर लाइ जानकी मिटी महा मरजाद ग्यानकी।

मानस, वालकांड, ३३६-३३७

१२३१. पसु पच्छी नभ जल थल चारी। भए काम बस समय विसारी।
मदन अन्ध व्याकुल सव लोका। निसि दिनु नहिं अवलोकहिं कोका॥

मानस, वालकांड, ८४।३

१२३२. सुनु महीस असि नीति जहँ तहँ नाम न कहहिं नृप।
मोहि तोहि पर अति प्रीति सोइ चतुरता विचारि तव॥

मानस, वालकांड, १६३

"सकहु न दुखित देखि मोहि काऊ। बंधु सदा तव मृदुल सुभाऊ।
मम हित लागि तजेहु पितु माता। सहेउ विपिन हिम आतप वाता ।।"

(मानस ६।६०।२)

यहाँ लक्ष्मण के विषय में राम के मति, शंका, विषाद, निश्चय आदि भाव एक साथ प्रकट हुए हैं।

समस्त रस-व्यंजना पर दृक्पात करने पर एक बात स्पष्ट सामने आती है कि रविषेण शास्त्रस्थितिसंपादन के शौकीन हैं, इसीलिए उनके रस-व्यंजना के स्थल विस्तृत हैं और कहीं-कहीं उनमें कुछ बोझिलता भी आ गयी है जबकि मानस में व्यंजना से और सांकेतिकता से रसाभिव्यक्ति हुई है। मानस के मंगलाचरण में 'रसानां' को ध्यान में रखने वाले तुलसी का रसाभिव्यंजना भले ही विपुल विभावादि के सन्निवेश वाली न हो किन्तु है बड़ी मार्मिक।

कल्पना-वैभव के यद्यपि दोनों ही कवि धनी हैं तथापि रविषेण ने अपने कल्पना-वैभव का प्रदर्शन विशद रूप में किया है और तुलसी ने पाठकों की कल्पना की परीक्षा लेने के लिए अपनी कारयित्री प्रतिभा को सूक्ष्म एवं सांकेतिक रूप में ही प्रस्तुत किया है।

पद्मपुराण और मानस दोनों ही ग्रन्थों में **विचारतत्त्व** अनुस्यूत है। पद्मपुराण जिन-दीक्षा पर केन्द्रित है तो रामचरितमानस भक्ति के सिद्धांत पर।

'नानापुराणनिगमागमसम्मत रघुनाथगाथा-निबन्ध' तुलसी के व्यापक-गंभीर अध्ययन एवं निर्भर भक्ति का परिणाम है जिसका मूल विचार है श्रेय और प्रेय की सिद्धि के लिए आदर्श रामराज्य की स्थापना, जो समस्त प्रचलित मत-मतांतरों के सद्गुणों का समन्वय करता दिखाई देता है। राम दैवी प्रवृत्ति के प्रतीक हैं और रावण अधर्म का। अधर्म के ऊपर धर्म की विजय दिखाकर संसार में कल्याण का प्रसार करना ही मानस का दर्शन है। राम तुलसी के आराध्य हैं; वे परब्रह्म हैं; वे 'ब्रह्माशम्भुफणीन्द्रसेव्य वेदान्तवेद्य विभु जगदीश्वर' हैं; वे मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् हैं, जो अपनी आद्या शक्ति के साथ सर्वव्यापक हैं :—'व्यापक अजित अनादि अनन्ता' 'सीय राम मय सब जग जानी।' उनकी भक्ति 'सकल सुख-दायिनी' है; उसका ज्ञान से भी बढ़कर स्थान है। मायावश जीव को अज्ञानांधकार-ध्वंसनार्थ भक्ति-रूपी मणि ग्रहण करनी चाहिए।[१२३३]

तुलसी का विचार है कि संसार में जब-जब धर्म की हानि होती है। एवं अभिमानी अधम असुर बढ़ते हैं, तब तब प्रभु शरीर धारण करके सज्जनों की

१२३३. मानस, उत्तर०, ११४-१२०

पीड़ा हरते हैं। वे पतितपावन, दीनोद्धारक, शरणागतवत्सल, मर्यादारक्षक, जग-रंजन, खल-भंजन तथा भक्त-प्रेमवश हैं।

इस प्रकार मानस का विचारतत्त्व पर्याप्त स्फीत हैं। बालकाण्ड का आदि और उत्तरकाण्ड का अन्त तो विचार-मणियों का आकर ही है; अतएव 'बाल का आदि उत्तर का अन्त। जो जाने सो पूरा सन्त'—आभाणक प्रचलित है। मानस में ज्ञान-विज्ञान-दर्शन-व्याकरणादि शास्त्र का विचारतत्त्व के परिवर्द्धन में पर्याप्त योग है। अधिक क्या, वर्णाश्रम-धर्म के समस्त आदर्श विचारों की प्राप्ति मानस में होती है जिसकी पूर्ण व्याख्या पर्याप्त स्थान-सापेक्ष है।

दोनों ग्रन्थों के विचारतत्त्व पर विचार करने के अनन्तर स्पष्ट प्रतीत होता है कि 'पद्मपुराण' का विचारतत्त्व अपनी पृथक् सत्ता रखता है, वह कथा पढ़ते समय यदि छोड़ भी दिया जाय तो कोई हानि नहीं होती, जबकि 'मानस' का विचारतत्त्व कथा से घुला-मिला है। दूसरे शब्दों में 'पद्मपुराण' के विचार और भावना का 'तिलतण्डुल' सम्बन्ध है जबकि 'मानस' के उन दोनों का 'नीरक्षीर-सम्बन्ध' है। कभी-कभा तो लगता है कि रविषेण ने जैन-सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का प्रचार करना मुख्य मान लिया है और राम-कथा कहना गौण, किन्तु मानसमें ऐसा नहीं है। वहाँ पद-पद पर दूसरे के मत का खण्डन या अपने धर्म की दुहाई नहीं दी गयी है। वहाँ तो सांकेतिक शैली में सूक्ष्मता के साथ भाव-माला में विचारमणि ग्रथित किये गये हैं। किसी भी धर्म या सम्प्रदाय को मानने वाला मानस को पढ़े, उसे आनन्द ही आएगा किन्तु 'पद्मपुराण' को यदि वैदिक धर्मानुयायी पढ़े तो उसे ऐसे श्लोक पढ़कर आनन्द नहीं आएगा जिनमें ऋषियों की निन्दा हो, यज्ञ को पातक की संज्ञा प्रदान की हो, वेद को कुग्रन्थ कहा हो तथा अहिंसावादियों के द्वारा ऐसी कठोर वाणी का प्रयोग किया गया हो—

"भृगुरङ्गिशिरा वह्निः कपिलोऽत्रिर्विदस्तथा।
अन्ये च बहवोऽज्ञानाज्जाता वल्कलतापसाः॥
स्त्रियं दृष्ट्वा कुचित्तास्ते पुल्लिङ्गं प्राप्तविक्रियम्।
पिदधुर्मोहसंछन्नाः कौपीनेन नराधमाः॥[१२३४]

एक नहीं, ऐसे अनेक उदाहरण पद-पद पर आते हैं, जिन्हें पढ़कर जैन-आचार्यों की इस घोर साम्प्रदायिकता पर हँसा भी आने लगती है। 'पद्मपुराण' के विचार-तत्त्व के स्थलों पर जब पारिभाषिक शब्दों की बाढ़ आती है, अनु-प्रेक्षाओं के वर्णन चलते हैं, स्वर्गों के नाम चलते हैं, 'अजैर्यष्टव्यम्'— आदि पर

१२३४. पद्म० ४।१२६-१२७

जटिल शास्त्रार्थ चलते हैं तो सहृदय पाठक एक बार तो त्राहि-त्राहि कर उठता है, किन्तु मानस में ऐसा नहीं है; वहाँ रसधारा विच्छिन्न नहीं होती। इसका कारण स्पष्ट है कि पद्मपुराण की रचना प्रतिक्रियात्मक तथा आर्य-परम्परा की खण्डयित्री है जबकि मानस की रचना समन्वयेच्छा एवं लोकनिर्माणेच्छा से प्रेरित भक्ति का फल।

पद्मपुराण और मानस का कलापक्ष : पद्मपुराण और मानस पौराणिक शैली के काव्य हैं। पद्मपुराण की शैली के विषय में सप्तम अध्याय में लिखा जा चुका है। जहाँ तक मानस की शैली का प्रश्न है, इसमें साहित्यिक अवधी के साथ-साथ ब्रजभाषा, छत्तीसगढ़ी, खड़ी बोली और अरबी-फारसी के भी कुछ शब्दों का प्रयोग हुआ है। यह एक अतिमंजुल भाषा-निबन्ध है। काण्डारम्भ के समय संस्कृत के छन्द प्रयुक्त हुए हैं। राम-कथा के अतिरिक्त अनेक प्रासंगिक कथाओं की कवि ने अच्छी संगति बैठायी हैं। कवि ने पाठक को भक्ति की ओर उन्मुख करने का सफल प्रयास किया है। मुख्य छन्द-दोहा-चौपाई है। अलंकार अत्यन्त स्वाभाविक हैं। डाक्टर माताप्रसाद गुप्त के शब्दों में--तुलसीदास की अनुपम शैली का सौन्दर्य उसकी ऋजुता, उसकी सुबोधता, उसकी सरलता, उसकी चारुता, उसकी रमणीयता, उसके लालित्य और उसके प्रवाह में है, और ये गुण 'रामचरितमानस' में चरम उत्कर्ष को प्राप्त होते हैं। 'रामचरितमानस' की शैली सरल तथा आडम्बरविहीन है। कवि उसे किसी ऐसी वस्तु से सजाने का प्रयास नहीं करता जो पाठक के ध्यान को काव्य की दृष्टि से हटा सके। यह स्वाभाविक तथा स्वतःप्रवर्तित है। शब्द बिना किसी सतर्क प्रयास के कवि के मस्तिष्क से अपने आप आते हुए प्रतीत होते हैं। उसमें एक अद्भुत प्रवाह है। कवि के विचारों का शृंखला का--जिनको वह प्रायः पूर्वापर क्रम से पाठक के सम्मुख रखता है--समझने में बहुधा कठिनाई नहीं होती है। उसकी वाक्य-रचना इतनी सीधा है कि उसको समझने के लिए किसी प्रकार के अन्वय की आवश्यकता नहीं पड़ती। उसकी शैली सुललित तथा सुचारु है। प्रत्येक शब्द अपने स्थान पर आवश्यक प्रतीत होता है। शब्द छोटे हैं और समास निर्माण की ओर कोई प्रयास परिलक्षित नहीं होता और ध्वनि-संकलन ऐसा है जो श्रोता के कानों को कहीं भी कर्कश प्रतीत नहीं होता होता। प्रधान रूप से 'मानस' की की शैली की विशेषता ये हैं।[१२३५]

पद्मपुराण और रामचरितमानस दोनों ही पौराणिक शैली के काव्य हैं

१२३५. तुलसीदास, पृ० ३६१

किन्तु दोनों की शैली में पर्याप्त अन्तर है। पहला संस्कृत भाषा में लिखित है तो दूसरा प्रधानतः अवधी में; पहले में अनुष्टुप् छन्द प्रधान है तो दूसरे में दोहा-चौपाई; पहले में धार्मिकता कविता पर हावी है तो दूसरे में वह उसमें घुली-मिली; पहले में अभिधा के द्वारा लम्बे वर्णन हुए हैं तो दूसरे में व्यंजना के द्वारा छोटे; पहले में अलंकारों का पूर्ण प्रकर्ष एवं चमत्कार है तो दूसरे में स्वाभाविक सन्निवेश। मानस की शैली सरल है तथा पद्मपुराण की प्रौढ़; पहले के लिए सहृदय भक्त पाठक अपेक्षित हैं और दूसरे के लिए सहृदय विद्वान्।

पद्मपुराण और रामचरितमानस दोनों के ही कर्ताओं का भाषा पर पूर्ण अधिकार है। पद्मपुराण की भाषा पर साहित्यक दृष्टि से विचार सप्तम अध्याय में किया जा चुका है। जहाँ तक मानस की भाषा का प्रश्न है, यद्यपि उसमें यत्रक्वचित् बघेली, छत्तीसगढ़ी, भोजपुरी (तहवाँ, जहवाँ) बुंदेलखंडी (जानब) राजस्थानी, (मेला), गुजराती (जूनधनु) मराठी, खडी बोली (तव किया) अरबी, फारसी (गरीबनिवराजू तथा साहिब) प्राकृत-अपभ्रंश (खप्परिन्ह, खग्ग, अल्लुज्झ जुज्झहिं) के शब्दों का प्रयोग हो गया है तथापि उसमें प्रधानतः संस्कृत, ब्रजभाषा तथा अवधी ही प्रयुक्त हुई हैं। संस्कृत का प्रयोग, कविता के प्रारंभ[१२३६] और अन्त[१२३७] के लिए, कांडोंके आदि में मंगलाचरण[१२३८] के लिए तथा ब्राह्मणों[१२४९] और देवताओं के मुख से भगवान् की स्तुति के लिए हुआ है।

मानस की संस्कृत के विषय में एक बात कह देनी उचित है कि यह संस्कृत कहीं-कहीं हिन्दी का रूप धारण कर गयी है यथा—

१२३६. वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।
मंगलानां च कर्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ।
(मानस, बालकांण्ड आरम्भ१)

१२३७. पुण्यं पापहरं सदा शिवकरं विज्ञानभक्तिप्रदं
मायामोहमलापहं सुविमलं प्रेमाम्बुपूरं शुभम्।
श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये
ते संसारपतंगघोरकिरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः॥ (मानस, ७।१३०।२)

१२३८. मूलं धर्मतरोर्विवेकजलधेः पूर्णेन्दुमानन्ददं
वैराग्याम्बुजभास्करं ह्यघघनध्वान्तापहं तापहम्।
मोहांभोधरपूगपाटनविधौ स्वःसम्भवं शंकरं
वन्दे ब्रह्मकुलं कलंकशमनं श्रीरामभूपप्रियम् ॥१॥ (अरण्यकांड, आरंभ श्लोक १)

१२३९. नमामीशमीशाननिर्वाणरूपं विभुंव्यापकं ब्रह्मवेदरूपम्
(ब्राह्मणकृत शिवस्तुति) (उत्तरकाण्ड, १०७।१-८)

'स्फुरन्मौलिकल्लोलिनी चारुगंगा।
लसद्भालबालेन्दु कण्ठे भुजंगा ॥'

× × ×

चिदानन्दसन्दोह मोहापहारी,।
प्रसीद प्रसीद प्रभो ! मन्मथारी ॥[१२४०]

यहाँ शिवजी के विशेषण विशुद्ध संस्कृत के रूप नहीं है। इसी प्रकार अन्य अनेक उदाहरण लिये जा सकते हैं।

ब्रजभाषा का उपयोग कविता की गति के लिए नहीं हुआ है और न इसके द्वारा किसी तथ्य या घटना का प्रकाशन ही हुआ है। केवल पूर्ववर्ती वृत्तों में वर्णित कथावस्तु को भव्यता देने के लिए तथा उसकी भव्य पुनरावृत्ति के लिए ही ब्रजभाषा का प्रयोग हुआ है। विविध 'छन्द' इसके प्रमाण हैं। उदाहरण के लिए अवधी की चौपाइयों के बाद आये इस छन्द को लिया जा सकता है—

'केहरि नाद भालु कपि करही। डगमगाहि दिग्गज चिक्करहीं॥
चिक्करहिं दिग्गज डोल महि गिरि लोल सागर खरभरे।
मन हरष सभ गंधर्ब सुर मुनि नाग किंनर दुख टरे॥
कटकटहिं मर्कट बिकट भट बहु कोटि कोटिन्ह धावहीं।
जय राम प्रबल प्रताप कोसलनाथ गुनगन गावहीं ॥[१२४१]

किन्तु मानस की ब्रजभाषा पूर्ण विशुद्ध नहीं है।

'मानस' की सर्वप्रधान भाषा अवधी है जिसमें समस्त कथानक कहा गया है। जिस अवधी के ग्रामीण रूप को अनेक सूफियों ने काव्यभाषा बनाया था, उसे ही तुलसी ने परिमार्जित साहित्यिक रूप दिया। मानस की भाषा के विषय में डा० गोविंदराम का कथन द्रष्टव्य है—'तुलसी की भाषा का सौन्दर्य उसकी सरलता, सुबोधता और लालित्य पर अवलम्बित है। मानस की भाषा प्रवाहमयी, परिष्कृत और आडम्बरहीन है। उसमें स्वाभाविकता और सजीवता है। वाक्य-रचना सीधी-सादी और सरल है। वाक्यों में शब्द यथास्थान जड़े हुए प्रतीत होते हैं। उनके अर्थ को समझने में कोई कठिनाई प्रतीत नहीं होती। भाषा और भाव दोनों में सुन्दर सामंजस्य दिखाई देता है। विषय के अनुसार मानस की भाषा कहीं सरल, कहीं मधुर और कहीं ओजस्विनी दिखाई देती है। विविध रसों और भावों को व्यक्त करने की उसमें पूर्ण क्षमता है। लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग भी मानस मे यथास्थान हुआ है। इसके प्रयोग से भाषा में मर्यादा सजीवता और

१२४०. मानस, उत्तर० १०७ दोहे के बाद।
१२४१. मानस, सुन्दर० ३४ के बाद।

व्यावहारिकता आ गयी है। मानस की भाषा साहित्यिक होकर भी सरल, सहज और जनसुलभ है। उसमें वह वेग और प्रवाह है जो कि एक जीवित भाषा में होना चाहिए। मानस की भाषा की इस सरलता और सुबोधता के कारण ही तुलसी भारतीय जनता के हृदय में स्थान बना सके हैं।'[१२४२] कोमल प्रसंगों में तुलसी की भाषा जैसे नाचती चलती है यथा—

'कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन रामु हृदय गुनि ॥[१२४३]

परन्तु वही युद्ध आदि के कठोर प्रकरणों में कठोर हो जाता है :—

'बोल्लहिं जो जय जय मुंड रुंड प्रचंड सिर बिनु धावहीं।
खप्परिन्ह खग्ग अलुज्झि जुज्झहिं सुभट भटन्ह ढहावहीं ॥
बानर निसाचर निकट मर्दहिं रामबल दर्पित भए।
संग्राम अंगन सुभट सोवहिं राम सर निकरन्हि हए ॥[१२५४]

इस प्रकार तुलसी की भी भाषा को अवसरानुकूल साहित्यिक भाषा कहा जा सकता है जो कि एक महाकाव्य के लिए उपयुक्त होती है।

दोनों ग्रंथों की भाषा पर विचार करने पर हमें ज्ञात होता है कि दोनों ही कवियों का भाषा पर पूर्ण अधिकार है। यदि रविषेण ने अवसरानुकूल, भावाभिव्यञ्जिका, गतिशील, आलंकारिक तथा मूर्तिविधायिनी विशुद्ध साहित्यिक संस्कृत भाषा का प्रयोग किया है तो तुलसी ने अपने देश-काल के अनुसार जनमनोऽवगाहिनी, अवसरदर्शिनी, संस्कृत-व्रज-सहिता, भावाभिव्यञ्जनक्षमा साहित्यिक अवधी का। तुलना करके उनके उत्कर्षापकर्ष का कथन करना ही कठिन है क्योंकि दोनों अपने-अपने क्षेत्र में पूर्ण प्रभु तथा अद्वितीय हैं।

पद्मपुराण की छन्दोयोजना पर सप्तम अध्याय में विचार किया जा चुका है। मानस के मंगलाचरण में 'छन्दसामपि' कहने वाले तुलसा के छन्दोयोजना-कौशल में कोई शंका ही नहीं होनी चाहिए। प्रबन्धानुरूप छन्दोयोजना के धनी तुलसी ने यद्यपि पुरातनपरम्पराप्राप्त दोहा-चौपाई छन्दों को प्रधान रूप में अंगीकार किया है तथापि प्रसंगानुकूल अन्य छन्द भी मानस में संयोजत किये हैं। इससे एक ओर प्रबंधकथा-ऽवाह की मसृणता एवं क्षिप्रता अक्षुण्ण बनी रही है और दूसरी ओर स्थान-स्थान पर अभिनव छन्द-सौष्ठव से प्रबन्ध कलेवर की सुन्दर संघटना का संपादन भी हो गया है। दोहा, चौपाई, सहित मानस में प्रयुक्त छन्द

१२४२. 'हिन्दी के आधुनिक काव्य' पृष्ठ ९५
१२४३. मानस, बाल. २२९।१
१२४४. मानस, लंका. ८७ के बाद का छन्द

द्विविध हैं (अ) ग्यारह वर्णवृत्त एवं आठ मात्रावृत्त। वर्णवृत्तों में अनुष्टुप्[१२४५] इंद्रवज्रा[१२४६] तोटक[१२४७] नगस्वरूपिणी (प्रमाणिका)[१२४८] भुजंगप्रयात[१२४९] मालिनी[१२५०] रथोद्धता[१२५१] वसंततिलका[१२५२] वंशस्थ[१२५३] शार्दूलविक्रीडित[१२५४] और स्रग्धरा[१२५५] एवं मात्रावृत्तों में दोहा[१२५६] सोरठा[१२५७] चौपाई[१२५८] तोमर[१२५९] डिल्ला[१२६०] त्रिभंगी[१२६१] हरिगीतिका[१२६२] और चौपइया[१२६३] प्रयुक्त हुए हैं। कुल मिलाकर मानस में १९ छन्द प्रयुक्त हुए हैं।

इनमें अनुष्टुप्, शार्दूलविक्रीडित, वसन्ततिलका, इन्द्रवज्रा, मालिनी, वं.स्थ नगस्वरूपिणी, स्रग्धरा आदि छन्दों के द्वारा एक ओर तो महाकाव्य के प्रत्येक कांड के आदि में मंगलादि का विधान हुआ है दूसरी ओर इन तथा अन्य हरिगीतिकादि छन्दों के द्वारा 'अवसानेऽन्यवृत्तकैः' वाले नियम का परिपालन भी। 'अनुष्टुप्' का प्रयोग ग्रन्थारम्भ, कथाविस्तार, शान्ति-उपदेश और सर्वसाधारण-वृत्तान्त आदि के लिए किया जाता है। 'मानस' में अनुष्टुप् ग्रन्थारम्भ के लिए प्रयुक्त है। कवि ने शार्दूलविक्रीडित से प्राय: अपने अभीष्ट देव के शक्ति-शील-सौन्दर्य के चित्र खींचे हैं। मात्रिक छन्दों में ही कवि ने क्रम रखा है। दोहा और सोरठा प्राय: कथा-प्रवाह में विश्राम देते हैं। कहीं वे नीति प्रकट करते हैं तो कहीं दार्शनिक तथ्यों का प्रकाशन करते हैं। प्राय: कथाप्रवाह का निर्वाह आठ चौपाइयों के अन्तर दोहे या सोरठे के क्रम से ही हुआ है (यद्यपि यत्र-क्वचित् इसके अपवाद भी हैं)। इससे कथाप्रवाह में क्षिप्रता एवं गतिमत्ता बनी रही है। श्रुति, नाद और शैली की अनेक विशेषताओं को चौपाई में निविष्ट कर कवि ने विभिन्न वातावरणों

१२४५. मानस, वालकांड, मंगलाचरण, श्लोक १
१२४६. वही, अयोध्याकांड, मंगलाचरण, श्लोक ३
१२४७. वही, उत्तरकांड १००।१०२
१२४८. वही, अरण्यकांड ३।१-१२
१२४९. वही, उत्तरकांड १०७
१२५०. सुन्दरकांड मंगलाचरण, ३
१२५१. वही. उत्तरकांड, मंगलाचरण, २
१२५२. वही, सुन्दरकांड, मंगल, २
१२५३. वही, अयोध्याकांड, मंगल, २
१२५४. वही, अयोध्याकांड, मंगल १
१२५५. वही, उत्तरकांड मंगल १
१२५६. वही, वालकांड १ तथा अन्य अनेक
१२५७. वही, वालकांड ५ तथा अन्य अनेक
१२५८. वही, वालकांड १-८ आदि अनेक स्थल
१२५९. वही, अरण्यकांड १९
१२६०. वही, " (१९) ख के पश्चात् का छन्द
१२६१. वही, वालकांड, २१० के वाद का छन्द
१६६२. वही, वालकांड २३५ के वाद का छन्द
१२६३. वही, वालकांड, १८४. के साथ का छन्द

का साक्षात् अंकन कर दिखाया है। चौपाई के अनन्तर परिमाण के अनुसार 'हरिगीतिका' छन्द का प्रयोग है जिसमें किसी भाव, व्यापार, दृश्य या परिस्थिति को अधिक प्रभावोत्पादक बनाने का प्रयत्न हुआ है। प्रायः उल्लासमय वातावरण के वर्णन के लिए इसका प्रयोग हुआ है। स्तुतियों में तोटक एवं भुजंगप्रयात का सौन्दर्य निखरा है तो तोमर का उपयोगित्व युद्ध के वर्णनों में है।

'मानस' के छन्दोनिर्वाचन के वैशिष्ट्य का प्रकाशन श्री राजपति दीक्षित के शब्दों में इस प्रकार किया जा सकता है––"गोस्वामीजी की प्रबन्ध-धारा मानों उनके संस्कृत वर्णिकों के शुभ हिमशिलाखण्ड से प्रसूत होकर चौपाइयों की समभूमि में सहज स्वाभाविक गति से चलती है; मार्ग में दोहा–सोरठों के मोड़ पर विश्राम करती हुई, समय-समय पर प्रसंग एवं भावावेश रूप वायु के झकोरों से विलोड़ित होकर अपनी मनमोहक लहरों में सजीव चित्र दिखाने के लिए हरिगीतिका, चौपय्या, त्रिभंगी, प्रमाणिका, तोटक और तोमर आदि के क्षेत्र में अपनी इठलाहट दिखाती कल-कल नाद करती हुई उत्तरोत्तर रामसागर में लीन हो जाती है।"[१२६४]

जहाँ तक छंदों की संख्या का प्रश्न है, पद्मपुराण में मानस से दुगुने से भी अधिक छंद प्रयुक्त हुए हैं। तुलसी ने किसी छंद का स्वतः निर्माण नहीं किया है जबकि रविषेण ने कुछ छंदों की कल्पना स्वतः भी की है। रविषेण ने ४२वें पर्व बहुत जल्दी-जल्दी छंद परिवर्तन किया है किन्तु तुलसी ने कहीं भी इतनी शीघ्रता से छंद नहीं बदले हैं।

अलंकारों के प्रयोग में रविषेण और तुलसी दोनों ही जागरूक हैं। दोनों ने ही प्रायः **अपृथग्यत्ननिर्वर्त्यं** अलंकारों का प्रयोग किया है, यद्यपि एकाध स्थल पर रविषेण सायास अलंकारों की योजना में भी तत्पर दिखायी देते हैं। यदि रविषेण **लक्षणालंकृती वाच्यं** कहकर अलंकारों के प्रति सचेष्टता को द्योतित करते हैं तो तुलसी **'आखर अरथ अलंकृति नाना'** के द्वारा अपने अलंकाराधिकार की व्यंजना करते हैं। पद्मपुराण के अलंकारों का सोदाहरण उल्लेख सप्तम अध्याय में किया जा चुका है। मानस में अनेक अलंकार प्रयुक्त हुए हैं किन्तु रूपक, उपमा एवं उत्प्रेक्षा तुलसी के अत्यन्त प्रिय अलंकार हैं। मानस का तो नाम ही रूपक अलंकार का उदाहरण है। प्रसिद्ध विद्वान् बी० ए० स्मिथ ने तुलसीदास की उपमाओं को कालिदास की उपमाओं से चारुतर स्वीकार किया है। मानस में प्रयुक्त मुख्य अलंकारों के नाम अधोलिखित हैं:—यमक, श्लेष, रूपक, अपह्नुति, दीपक, निदर्शना, व्यतिरेक, उपमा, उत्प्रेक्षा, विभावना, विषम, रूपकातिशयोक्ति, परिसंख्या,

१२६४. तुलसी और उनका युग, पृष्ठ ३७८

अर्थापत्ति, यथासंख्य, प्रत्यनीक, स्वभावोक्ति, अर्थान्तरन्यास, कारणमाला आदि जिनके उदाहरण तुलसी के काव्य का परिचय देने वाले ग्रन्थों के लेखकों ने अनेक स्थानों पर दिये हैं। यहाँ हम स्थानानुरोध से उनके उदाहरण नहीं दे रहे हैं। संसृष्टि और संकर के भी अनेक उदाहरण तुलसी के मानस में प्राप्त होते हैं।

पद्मपुराण और मानस में प्रयुक्त अलंकारों की तुलना करने पर ज्ञात होता है कि यद्यपि दोनों ही अलंकारों का सौन्दर्य दर्शनीय है किन्तु ग्रन्थों की पृथक् भाषा तथा काव्य-पद्धति में कुछ भेद होने के कारण अलंकार-योजना में भी अंतर है। पद्मपुराण के कर्त्ता ने अपने ग्रन्थ को संस्कृत-साहित्य का एक प्रौढ़ तथा आकर्षक ग्रन्थ बनाने के लिए लालायित होकर जहाँ अलंकारों के विस्तृत उदाहरण प्रस्तुत किये हैं वहाँ मानस के लोकसंग्रही कवि ने जनमानस तक मानस को पहुँचाने के लिए अलंकारों का सरल और संक्षिप्त प्रयोग किया है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा मेंदोनों ही कवि परम सफल हैं। किसी की भी अधरोत्तरता सिद्ध नहीं की जा सकती, क्योंकि दोनों की काव्यभाषा, काव्यप्रणाली, काव्य परिस्थिति एवं मनोवृत्ति पृथक् है जिसके कारण अलंकार-योजना में कहीं प्रौढ़ि और कहीं सरलता का आश्रय लिया जा सकता है।

'पद्मपुराण' और 'मानस' दोनों ही पौराणिक काव्य हैं। पुराणों में वक्ता और श्रोताओं की शृंखलाएँ जुड़ती चली जाती हैं। पद्मपुराण के संवादों की चर्चा सप्तम अध्याय में की जा चुकी है जिनमें श्रेणिक-गणधर-संवाद आधारभूत है। ठीक इसी पद्धति पर मानस की प्रस्तावना में चार वक्ता-श्रोता दिखाई पड़ते हैं। 'मानस धर्मग्रन्थ भी है और काव्यग्रन्थ भी। इसीलिए उसमें धर्मग्रन्थ पुराणों की तरह शृंखलाबद्ध संवाद रखे गये हैं।'[१२६५]

इनके अतिरिक्त भक्ति, ज्ञान और धर्म आदि पर आधारित और भी अनेक संवाद चलते हैं। कुछ संवाद कथा के भाग भी हैं। कुछ में संघर्ष और मनोविज्ञान सामने आता है तो कुछ परिस्थितिविशेष के चरित्रों एवं घटनाओं को गति देते हैं। कुछ संवादों के केवल निर्देश ही मिलते हैं। कुछ लोगों का विचार है कि ये संवाद ज्ञान, कर्म और भक्ति आदि का निरूपण करने के लिए ही हैं क्योंकि काकभुशुण्डि भक्ति का, शिव ज्ञान का और याज्ञवल्क्य कर्मकाण्ड का प्रतिपादन करते हैं। परन्तु संवादों की योजना का उद्देश्य यह प्रतीत नहीं होता। वास्तविकता यह है कि तुलसी ने अनेक श्रोता और वक्ताओं के माध्यम से नाना भाँति के तर्कों का समाधान कर दिखाया है। एक प्रकार के संवाद और भी मिलते हैं,

---

१२६५. 'मानस' के संवाद, 'कल्याण', भाग-१३, सं० २।

जैसे—'सीता-अनसूया-संवाद' तथा 'राम-नारद-संवाद'। इनमें कवि के अपने ही दृष्टिकोण सामने आते हैं।'

कथा भाग को गति देने वाले संवादों को पं० विश्वनाथ मिश्र ने दो भागों में विभक्त किया है—(१) सभा-संवाद और (२) गोष्ठी-संवाद। सभा-संवादों में लक्ष्मण-परशुराम-संवाद, भरत-राम-सभा-संवाद, जनक-सभा-संवाद, हनुमान-रावण-संवाद और अंगद-रावण-संवाद मुख्य हैं। गोष्ठी-संवादों में मिथिला की सखियों का संवाद, मन्थरा-कैकेयी-संवाद, राम-सीता-संवाद, केवट-राम-संवाद, रावण-मन्दोदरी-संवाद और शूर्पणखा-राम-लक्ष्मण-संवाद आदि आते हैं। इन सभी के उदाहरण मानस में देखे जा सकते हैं। इन संवादों में कहीं-कहीं, किसी आलोचक की दृष्टि से, मर्यादा का उल्लंघन हो गया है यथा—अंगद-रावण-संवाद में।

पद्मपुराण और मानस के संवादों पर तुलनात्मक दृष्टि डालने पर ज्ञात होता है कि यद्यपि दोनों के कर्ताओं ने संवादों की योजना की है किन्तु इस क्षेत्र में रविषेण तुलसी से आगे हैं क्योंकि इनके संवाद मनोवैज्ञानिक और आकर्षणपूर्ण अपेक्षाकृत अधिक हैं।

जहाँ तक **प्रकृति-चित्रण** का प्रश्न है दोनों ग्रन्थों में अवसरानुसार उसे स्थान मिला है। पद्मपुराण के प्रकृति चित्रण का परिचय दिया जा चुका है। मानस में प्रकृति उद्दीपन, अलंकार और उपदेशदात्री के रूप में अधिक चित्रित हुई है। प्रकृति के स्वतन्त्र रूप को यहाँ अधिक स्थान नहीं मिला है। गोस्वामीजी ने प्रकृति-चित्रण करते समय प्रायः परम्परा का ही पालन किया है। संभवतः राम-भक्त तुलसी के पास प्रकृति का सूक्ष्म अन्वेषण करने का अधिक अवकाश नहीं था! तभी तो '**बूँद अघात सहहिं गिरि कैसे। खल के बचन संत सहिं जैसे**' आदि उपदेशदायक रूपों में प्रकृति का चित्रण अधिक हुआ है। शरद्-वर्णन, वर्षा-वर्णन तथा चित्रकूट-वर्णन आदि स्थल प्रकृति-चित्रण की दृष्टि से रमणीय हैं।

जहाँ तक **विविध वर्णनों** का प्रश्न है दोनों ग्रन्थों में विविध वर्णन, अनेक अवसरों पर, किये गये हैं। 'पद्मपुराण' के वर्णनों की विशद सूची हम सप्तम अध्याय में दे चुके हैं। मानस के वर्णनों में कवि का आत्म-परिचय, जनकपुरी, अयोध्या तथा लंका नगरी का वर्णन, वर्षा और शरद् ऋतु का वर्णन, सन्ध्या, सूर्य, इन्दु और रजनी आदि के अत्यन्त सूक्ष्म तथा संक्षिप्त वर्णन, पम्पा-सरोवर-वर्णन, सीता-सौन्दर्य-वर्णन, जनकपुरी के नर-नारियों के भावालापों का संक्षिप्त वर्णन, शिव-विवाह और राम-विवाह का वर्णन, राम-लक्ष्मण की शोभा का वर्णन, राम-भरत की यात्रा का वर्णन, निषाद की सेवा का वर्णन, अशोक-वाटिका-विध्वंस-वर्णन, खरदूषण-राम-युद्ध, इन्द्रजित्-लक्ष्मण-युद्ध, राम-कुम्भकर्ण-युद्ध एवं राम-

रावण-युद्ध का वर्णन, दशरथ-राम-मन्दोदरी-सुलोचना के विलाप-वर्णन तथा सुतीक्ष्ण मुनि आदि के संक्षिप्त वर्णन प्रमुख हैं। 'रामचरितमानस' के **विशिष्ट वर्णनों में नगरी-वर्णन** की दृष्टि से अयोध्या[१२६६] और लंका[१२६७] का वर्णन लिया जा सकता है। अयोध्या का वर्णन करते समय कवि ने ध्वजा, पताका, पट, चामर, विचित्र बाजार, कनक-कलश, तोरण, मणिजाल, हल्दी, दूब, दधि, अक्षत आदि मांगलिक द्रव्य, छिड़काव, चौक पूरना, षोडष शृंगार युक्त दामिनी की द्युति के समान भामिनियों, विधुवदनी, मृगशावकलोचनी एवं अपने स्वरूप से रति का मान भंग करने वाली पुरवनिताओं के द्वारा कोकिल को लजाने वाली वाणी के द्वारा मंगलगान, अनेक मांगलिक द्रव्यों से युक्त राजभवन, नगाड़े, वंदिजनों के द्वारा विरुदावलि का गान, ब्राह्मणों के द्वारा वेद पाठ तथा दशरथ के भवन में रामजन्म पर उत्साहातिरेक प्रभृति का परिगणनात्मक शैली में वर्णन किया है। लंका का वर्णन करते समय कवि ने लंका-दुर्ग, चारों दिशाओं में समुद्र की परिखा, कनक-कोट, हाट, वाथी, गज-वाजि-खच्चर, पदचर, रथ, निशाचरों, सैन्य, वन, बाग, उपवन, सर, कूप, वापी, नर, नाग, सुर एवं गंधर्वों की कन्याओं, शैलोपम देहधारी मल्लों के अखाड़ों में भिड़ने, कोटि यत्नों से नगर की रक्षा एवं निशाचरों के द्वारा अनेक पशुओं के भोजन आदि का वर्णन किया है।

ऋतु-वर्णन की दृष्टि से रामचरितमानस का वर्षा-वर्णन[१२६८] एवं शरद्-ऋतु-वर्णन[१२६९] द्रष्टव्य है। इन वर्णनों में केवल वस्तु-परिगणन-प्रणाली का ही आश्रय न लेकर प्रकृति के उपदेशदायक रूप का विविध उपमाओं के माध्यम से चित्रण किया गया है। वर्षा ऋतु के एक-एक उपादान से किसी न किसी शिक्षात्मक तथ्य की संगति की गयी है। वारिद को देखकर मयूरों का नृत्य, घनों में दामिनी का दमकना, बरसते बादलों का भूमि के निकट हो जाना, पर्वतों का वर्षा की बूँदों के आघात को सहना, क्षुद्र नदी का भरकर चलना, भूमि पर गिरते ही पानी का मलिन हो जाना, सिमिट-सिमिटकर जल का तालाब में भर जाना, सरिता के जल का जलनिधि में पहुँचकर अचल हो जाना, हरित तृणों से संकुल भूमि में पंथ का न सूझ पड़ना, चारों दिशाओं में दादुरों की ध्वनि का फैलना, वृक्षों में अनेक नये पल्लवों का उद्गम, आक और जवास का पत्रहीन हो जाना, खोजने पर भी कहीं धूलि का न मिलना, शस्य से सम्पन्न पृथ्वी की शोभा, रात

१२६६. मानस, बाल० २९६-२९७

१२६७. वही, सुन्दरकाड २-३

१२६८. देखिए, मानस, किष्किधाकाण्ड १३-१५

१२६९. वही " " १६-१७

के घने अँधेरे में खद्योतों का चमकना, महावृष्टि से क्यारियों का फूट चलना, चतुर किसानों के द्वारा खेती का नलाना, चक्रवाक पक्षी का न दिखाई देना, ऊसर में वर्षा होने पर भी तृण का न जमना, पृथ्वी का विविध जन्तुओं से संकुल होना, जहाँ-तहाँ पथिकों का थककर रह जाना, कभी प्रबल मारुत के प्रवाह से मेघों का इधर-उधर विलीन हो जाना एवं कभी दिन में निविड़ अंधकार का होना और कभी सूर्य का प्रकट होना आदि अपने समानधर्मा शिक्षा-तथ्य की प्रस्तुति करते हैं। यहाँ तुलसी की भाषा की समास-शक्ति और कल्पना की समाहार-शक्ति के साथ उनका व्यापक अनुभव मुखर हो उठा है। इसी प्रकार वर्षा के बीतने पर शरद् ऋतु के आगमन का वर्णन चेतन और अचेतन प्रकृति के साधर्म्य का द्योतन कराता है। इन वर्णनों में केवल वस्तुपरिगणन-प्रणाली का ही निर्वाह नहीं है, अपि तु वस्तुओं के कार्य-कलाप का भी संश्लिष्ट वर्णन हुआ है।

जिस प्रकार पद्मपुराण में अनेक जलाशयों के वर्णन आये हैं उसी प्रकार मानस में भी जलाशयों के वर्णन आये हैं। उदाहरण के लिए मानस का पम्पा-सरोवर वर्णन[१२७०] लिया जा सकता है। यदि वर्षा और शरद का वर्णन करते समय तुलसी ने दृष्टान्त एवं उपमाओं के सहारे प्रकृति के लोक-शिक्षक रूप को व्यक्त किया है तो पम्पा-सरोवर के वर्णन में उसने उत्प्रेक्षाओं का सहारा लेकर इस कार्य की सिद्धि की है। पद्मपुराण के समान ही मानस भी सौन्दर्य-वर्णनों से युक्त है किन्तु इसके सौन्दर्य वर्णन सांकेतिक, व्यंजना से परिपूर्ण एवं मर्यादित हैं। उदाहरण के लिए मानस के सीता-सौन्दर्य-वर्णन को लिया जा सकता है जो अपनी ध्वनिपूर्णता के लिए प्रसिद्ध है—

सिय सोभा नहि जाइ बखानी। जगदम्बिका रूप गुन खानी॥
उपमा सकल मोहि लघु लागी। प्राकृत नारि अंग अनुरागी॥
सिय बरनिअ तेइ उपमा देई। कुकबि कहाइ अजसु को लेई॥
जौं पटतरिअ तीय सम सीया। जग असि जुबति कहाँ कमीया॥
गिरा मुखर तन अरध भवानी। रति अति दुखित अतनु पति जानी॥
विष बारुनी बंधु प्रिय जेही। कहिअ रमा सम किमि बैदेही॥
जौं छबि-सुधा पयोनिधि होई। परम रूपमय कच्छपु सोई॥
सोभा रजु मंदरु सिंगारू। मथै पानि पंकज निज मारू॥
एहि विधि उपजै लच्छि जब सुन्दरता सुख मूल।
तदपि सकोच समेत छबि कहहिं सीय सम तूल॥

१२७०. देखिये मानस, अरण्यकाण्ड, ३८-४०

चली संग लै सखी सयानी । गावत गीत मनोहर बानी ।।
सोह नवल तनु सुंदर सारी । जगत जननि अतुलित छबि भारी ।।
भूषन सकल सुदेस सुहाए । अंग अंग रचि सखिन्ह बनाए ।।
रंगभूमि जब सिय पगु धारी । देखि रूप मोहे नर नारी ।।
हरषि सुरन्ह दुंदुभी बजाई । बरषि प्रसून अपछरा गाई ।।
पानि सरोज सोह जयमाला । अवचट चितए सकल भुआला ।।
सीय चकित चित रामहि चाहा । भए मोहवस सब नरनाहा ।।
मुनि समीप देखे दोउ भाई । लगे ललकि लोचन निधि पाई ।।

गुरजन लाज समाजु बड़ देखि सीय सकुचानि ।
लागि बिलोकन सखिन्ह तन रघुबीरहि उर आनि ।।[१२७१]

यहाँ **'उपमा सकल मोहि लघु लागी'** आदि व्यंजनापूर्ण वाक्यों से तथा **'जौ छबि सुधा पयोनिधि होई'** आदि यद्यर्थातिशयोक्ति के द्वारा जगज्जननी सीता के वर्णनातीत सौन्दर्य की व्यंजना की गयी है। पद्मपुराण में सीता का वर्णन करते समय रविषेण ने नख-शिख-वर्णन का आश्रय लिया है एवं ब्यौरेवार प्रत्येक अंग का आलंकारिक वर्णन प्रस्तुत किया है जबकि तुलसी सीता के वर्णन के लिए उपमा देने को कुकवि की उपाधि का कारण मानते हैं।

शृंगारिक वर्णनों का जितना आधिक्य पद्मपुराण में है उतना मानस में नहीं; फिर भी कुछ स्थल ऐसे हैं जिनमें शृंगार के संयोग-पक्ष से सम्बद्ध वर्णन अत्यन्त भव्य रूप में निबद्ध हुए हैं। उदाहरण के लिए मानस का राम-सीता-मिलन का वर्णन लिया जा सकता है। सीता सखियों के साथ गिरिजा-पूजन के लिए जाती हैं। एक सखि, पुष्पवाटिका में राम-लक्ष्मण को देखकर सीता से उनके रूप-सौन्दर्य का वर्णन करती है। सीता प्रिय सखी के साथ राम-लक्ष्मण को देखने चलती है और सीता को देखकर श्रीराम लक्ष्मण से उसके अलौकिक सौन्दर्य का वर्णन करते हैं। इसके बाद सीता और राम के पूर्वराग का सांकेतिक, व्यंजनापूर्ण एवं उदात्त वर्णन हुआ है।[१२७२]

इस वर्णन में पद्मपुराण के अञ्जना-पवनञ्जय-सम्भोग-वर्णन जैसी वर्णनात्मकता तथा पार्थिवता नहीं है, अपितु सूक्ष्म-सांकेतिकता तथा गम्भीर प्रभाववत्ता विद्यमान है। रविषेण, ऐसे स्थलों पर सांगोपांग वर्णन करके अभिधा के चमत्कार से मानो यह कहना चाहते हैं कि 'मैं वर्णन करते हुए छोटी-सी भी वस्तु को उपेक्षित नहीं करता' जबकि तुलसी व्यंजना का आश्रय लेकर यह बता देना चाहते हैं कि

१२७१. मानस, बालकाण्ड, २४६-२४८

१२७२. देखिए, मानस बालकाण्ड, २२८-२३४

'वर्णनीय वस्तुओं का शब्दों के द्वारा वास्तविक वर्णन नहीं हो सकता, उसके लिए सहृदय की कल्पना अपेक्षित है।' **'बरनि न जाई देखि मन मोहा।', 'स्याम गौर किमि कहौं बखानी। गिरा अनयन नयन बिनु बानी।', 'देखि सीय सोभा सुख पावा। हृदय सराहत बचनु न आवा॥', 'सब उपमा कवि रहे जुठारी। केहिं पट-तरौं बिदेह कुमारी॥'** आदि वाक्यों से उनकी व्यंजनात्मकता सिद्ध होती है। कहने का यह तात्पर्य बिल्कुल नहीं है कि रविषेण व्यंजना का आश्रय नहीं लेते। उन्होंने भी **'यथा ब्रवीति वैदग्ध्यं, यथाज्ञापयति स्मरः। अनुरागो यथा शिक्षां प्रयच्छति महोदयः॥ तथा तयो रतिः प्राप्ता दम्पत्योर्वृद्धिमुत्तमाम्॥'** आदि वाक्यों से अनुभवैकगम्य का कहीं-कहीं सांकेतिक वर्णन किया है, किन्तु अधिकांशतः उन्होंने अभिधा के चमत्कार से युक्त ही संयोग-वर्णन किये हैं।

युद्ध-वर्णन मानस की अपेक्षा पद्मपुराण में अधिक सजीव और प्रभूत हैं। मानस के युद्ध वर्णनों में प्रायः वे सभी घिसी-पिटी बातें पायी जाती हैं, जो किसी औसत दर्जे के पौराणिक काव्य में मिलती हैं। उसमें वीरों के नाम, अस्त्रों के नाम, एक-दूसरे को ललकारना, विविध माया फैलाना आदि तथ्यपरक वाक्यों की योजना अधिक है। पद्मपुराण जैसी बिम्बोत्पादकता मानस के युद्ध वर्णनों में नहीं है। मेघनाद-लक्ष्मण-युद्ध-वर्णन को उदाहरण के लिए लिया जा सकता है।[१२७३] इस प्रसंग में कुछ स्थलों पर तो केवल तथ्यकथन है और कहीं-कहीं उपमादि अलंकारों से परिपुष्ट कुछ बिम्ब उभरते हैं।

संक्षेप में, पद्मपुराण और मानस के वर्णनों पर दृष्टिपात करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि वर्णन करने में दोनों ही कवि निपुण हैं किन्तु जितने विविध, आलंकारिक तथा विस्तृत वर्णन पद्मपुराण में पाये जाते हैं उतने मानस में नहीं। भावालाप-वर्णनों में तो रविषेण ने कमाल ही कर दिया है जिसे देखकर बाण और दण्डी स्मृतिपथ में उतर आते हैं। एक-एक वस्तु के उन्होंने नये से नये ढंग से मुहुर्मुहुः वर्णन किये हैं। मानस में ऐसा नहीं है। इसका कारण स्पष्ट है। तुलसी ने मानस जनसाधारण तक पहुँचाने के लिए लिखा था, काव्यमार्गियों में अपनी प्रौढ़ता दिखाने के लिए नहीं। दूसरे उन्होंने मर्यादा एवं लोकमंगल की भावना का पूरी तरह पालन किया है। अतः वे स्वच्छन्द वर्णन नहीं कर पाये। अत एव जहाँ पद्मपुराण के वर्णन एक ही वस्तु का बारम्बार अभिनव व्याख्यान करने वाले, आलंकारिक तथा स्वच्छन्द हैं वहाँ मानस के वर्णन अपुनरुक्तिपूर्ण, तीव्रगति-मय, संक्षिप्त, चित्रमय, स्वाभाविक, सांकेतिक, व्यंजनापूर्ण, सरल तथा मर्यादित। पद्मपुराण के वर्णन व्यास-शैली के हैं और मानस के समास-शैली के। इसका

१२७३. देखिए, मानस, लङ्काकाण्ड, ४९-५४

कारण स्पष्ट है। तुलसी का ध्येय समस्त चराचर के उपास्य श्रीराम का चरित्र कथन करना था, अन्य वस्तुओं के सांगोपांग विवरण देने का उन्हें अवकाश नहीं था। इसीलिए श्रीराम से सम्बद्ध वर्णन कुछ विस्तृत हैं, शेष अति संक्षिप्त।

सारांश यह है कि रविषेण और तुलसीदास दोनों ही ने अपने ग्रन्थों को भाव-सम्पदा और कला-कौशल से सजाने की पूरी चेष्टा की है। दोनों कवि भावपक्ष और कलापक्ष से अपने ग्रन्थ को समृद्ध बनाने के लिए जागरूक हैं। पद्मपुराण के अन्तिम पर्व में रविषेण ने लिखा है कि इस ग्रन्थ में व्यंजनांत, स्वरांत, अर्थ के वाचक, शब्द, लक्षण, अलंकार, वाच्य, प्रमाण, छन्द, आगम आदि सब कुछ यहाँ विद्यमान हैं।[१२७४] तुलसीदास ने भी मानस-रूपक की रचना करते समय काव्य से सम्बद्ध समस्त सामग्री के प्रयोग के प्रति अपनी जागरूकता प्रकट करते हुए लिखा है कि सुंदर चार संवाद इस मानस के चार घाट हैं; सप्त प्रबंध इसके सुंदर सोपान हैं, रघुपति की महिमा का वर्णन इस मानस में रहनेवाला अगाध जल है; राम और सीता के यश रूपी सुधोपम जल में उपमारूपी सुंदर लहरों का विलास होता है; चारु चौपाई उस जल में रहनेवाली पुटकिनी हैं और सुंदर युक्तियाँ मणि और सीप के समान सुशोभित हैं, छन्द-सोरठा और सुन्दर दोहे इस मानस में खिलने वाले बहुरंगी कमल हैं जिनके मकरन्द और सुवास के रूप में अनुपम अर्थ एवं सुन्दर भाषा से युक्त सुन्दर भाव विद्यमान हैं, सुकृतों के पुंज मंजुल भ्रमरमाला के रूप में तथा ज्ञान और विराग के विचार हंसों के रूप में विद्यमान हैं; ध्वनि, अवरेव, कवित्व, गुण और जाति इस मानस में विचरण करने वाली मछलियाँ हैं। पुरुषार्थचतुष्टय, ज्ञान-विज्ञान के विचार, नवरस, जप, तप, योग और विराग इस मानस में विचरण करने वाले जलचर हैं। पुण्यात्माओं एवं सज्जनों के नाम के गुणगान विचित्र जल-विहगों के समान हैं। इसमें उल्लिखित संतों की सभा चारों दिशाओं में रहनेवाला अमराई के समान है और श्रद्धा वसंत ऋतु के समान छायी हुई है। विविध विधानों से भक्ति का निरूपण, क्षमा, दया, और दम लता-वितान के समान हैं। शम, यम और नियम फूल के समान हैं एवं ज्ञान फल के समान हैं, जिनमें हरि के चरणों में प्रेम का रस समाया हुआ है। कथा के अनेक अपर प्रसंग बहुवर्णक शुक और पिक आदि विहंगों के समान हैं।[१२७५]

इन दोनों उल्लेखों से रविषेण और तुलसीदास के काव्य-वैभव के प्रति दत्ता-वधान होने का स्पष्ट साक्ष्य मिलता है। राम के चरित्र का वर्णन करने के माध्यम से दोनों ही कवियों ने अपने काव्यप्रणयनपटुत्व का अपने देश और काल के

१२७४. पद्म०, १२३।१८५-१८६
१२७५. मानस, बालकाण्ड, ३६-३७

अनुसार, सफल परिचय दिया है। इतना तो कहना ही पड़ेगा कि पद्मपुराण का कलापक्ष अधिक चमत्कारपूर्ण है क्योंकि रविषेण ने अपने समय में उपलब्ध प्रौढ़ काव्य-सरणि का यथेष्ट अनुसरण किया है एवं मानस का कलापक्ष स्वाभाविक और सरल क्योंकि इस 'भाषा-निबन्ध' का प्रणयन विद्वानों के साथ जन-साधारण के लिए भी किया गया है, भले ही शब्दों से 'स्वान्तःसुख' की बात कही गयी हो।

'पद्मपुराण' और 'मानस' दोनों ग्रन्थों का धार्मिक दृष्टि से भी महत्त्व है। पद्मपुराण के प्रतिपाद्य धर्म की चर्चा पीछे की जा चुकी है। यहाँ मानस के प्रतिपाद्य धर्म की संक्षिप्त चर्चा करके दोनों ग्रंथों की धार्मिक दृष्टि से तुलना की जा रही है।

'मानस' का मुख्य प्रतिपाद्य भक्ति है। 'धर्म और भक्ति का अविच्छिन्न सम्बन्ध है। गोस्वामीजी इन दोनों में से प्रत्येक को दूसरे का पूरक मानते हैं। उनकी दृष्टि में भक्ति और धर्म में अंगांगिभाव सम्बन्ध है। किसी अंग के रुग्ण होने पर जैसे समस्त शरीर की विकलता को कोई नहीं रोक सकता, उसी प्रकार धर्म के किसी आडम्बर या अनाचार से ग्रस्त हो जाने पर भक्ति का विकृत हो जाना भी अनिवार्य है। भक्ति का विमल और यथार्थ प्रकाश प्रस्फुटित हो और उससे विश्व का अभ्युदय होता रहे, इसके लिए नितान्त आवश्यक है कि साधक की उपासना किसी प्रकार के अनाचार से पंकिल और रहस्य से आवृत न हो— यह बात गोस्वामी जी भली भाँति जानते थे, इसी से इन्होंने इनको रामोपासना में रंचमात्र भी स्थान नहीं दिया, प्रत्युत इन्हें मिटाने का प्रयास किया है।[१२७६]

'मानस के अनुसार धर्म के क्षेत्र में आडम्बर घातक है। उसके अनुसार मन की निर्मलता के बिना भगवत्प्राप्ति कदापि नहीं हो सकती।[१२७७] मानस में नैतिक भाविक और बौद्धिक आधार पर धर्म की स्थापना की गयी है। नैतिक का सम्बन्ध हमारे उन सभी कार्यों से है जो परस्पर व्यवहार के लिए आवश्यक हैं। भाविक तत्त्व की प्रधानता हमारे उन सभी कृत्यों में रहती है जिनमें हमारी अन्तर्वृत्तियों को भी खुल-खेलने का अवसर मिलता है। इष्टानिष्ट परिणाम की ओर दृष्टि रखकर साधक-बाधक तर्क-वितर्कों का मन्थन करके जो कार्य किया जाता है वह बौद्धिक कोटि में आता है।[१२७८] तुलसी ने जिस व्यापक धर्म का निर्देश किया, वह उनका कोई व्यक्तिगत नया धर्म न था। वह प्राचीन भारत का सनातन

१२७६. डा० राजपति दीक्षितः तुलसीदास और उनका युग, पृ० ७६

१२७७. 'मानस' ५।४३।५

१२७८. दे० डा० राजपति दीक्षित : तुलसीदास और उनका युग, पृ० ८३-८४।

धर्म ही है जो मनुष्य मात्र के लिए सामान्य धर्म के नाम से अनादिकाल से चला आ रहा है।[१२७९] नाना-पुराण-निगमागम के अध्ययन से उनके सारभूत धर्म को ही मानस में तुलसी ने प्रस्तुत किया है।

'मानस' में धर्मपालकों के प्रति अपार आस्था प्रदर्शित की गयी है।[१२८०] उसके अनुसार, धर्मशील के पीछे समस्त सुख सम्पति उसी प्रकार दौड़कर आती हैं जिस प्रकार समुद्र के पीछे सरिताएँ।[१२८१] परम पुरुषार्थ का प्रथम सोपान भी धर्म ही है[१२८२]। धर्म की महिमा के विषय में 'मानस' वैसे ही विचार देता है जैसे कि प्राचीन ब्राह्मण-धर्मग्रन्थ।[१२८३]

'मानस' में धर्म-भावना का स्वरूप उसी प्रकार निर्दिष्ट है जैसा कि मनुस्मृति, रामायण, महाभारत, भागवत आदि में कथित है।[१२८४] धर्म के अवयव ये हैं—शौर्य, धैर्य, सत्य, शील, विवेक, दम, परहित, क्षमा कृपा, समता, ईशभक्ति, विरति, सन्तोष, दान, बुद्धि, श्रेष्ठज्ञान, अचल पवित्र मन, सम, यम, नियम, विप्र-गुरु-पूजन आदि।[१२८५] मनुष्यमात्र इन गुणों को ग्रहण करने का अधिकारी है। इस व्यापक धर्म के विरोधी दुर्गुण ही अधर्म हैं और निन्दनीय हैं। धर्म के सभी अवयव प्रशंसा के पात्र हैं।

'मानस' के अनुसार—सत्य सभी सुकृतों का मूल है और उसके समान दूसरा धर्म नहीं है।[१२८६] शील वड़े भाग्य से प्राप्त होता है।[१२८७] मनोनिग्रह परम आवश्यक धर्मांग है। विना मन को वश में किये मनुष्य परम लक्ष्य को कदापि नहीं प्राप्त कर सकता। ईश्वर को मन की शुद्धता वड़ी प्यारी होती है।[१२८८]

असत्य के समान कोई पातक का पुंज नहीं है।[१२८९] ऐसे पातक और अधर्म से प्राणि मात्र को वचना चाहिए। पर-नारी को चौथ के चाँद के समान छोड़ देना चाहिए, उसे नहीं देखना चाहिए।[१२९०]

१२७९. वही, पृ० ८७
१२८०. मानस, २।९४।३, ४
१२८१. वही, १।२९३।२, ३
१२८२. वही, ३।१५।१
१२८३. दे० मनुस्मृति, ४।२४१
१२८४. दे० महाभारत, शान्ति ० २७०।५५, राज० १०९।१०, १२
मनुस्मृति, ६।२२, १०।६३ याज्ञवल्क्यस्मृति, १।१२२
महाभारत, शान्ति०, ६०।७ भागवत, ७।११।१२
१२८५. मानस, ६।७९।५-११
१२८६. वही, ७।८९।६
१२८७. वही, २।२७।५
१२८८. वही, २।२७।६, २।९४।५
१२८९. वही, १।२३०।५,
१२९०. वही, ५।३७।५, ६

'मानस' के अनुसार हिंसा पाप है।[१२९१] आसुरी प्रकृति वाले व्यक्ति ही सर्वभूत-द्रोहरत होते हैं। परद्रोह परम गर्हित पाप है।[१२९२] परोपकार परम धर्म है।[१२९३] परहित-व्रत-परायण को संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं है।[१२९४] परोपकार धर्म है और परपीड़न अधमता—**"परहित सरिस धरम नहिं भाई। परपीड़ा-सम नहिं अधमाई॥ निरनय सकल पुरान वेद कर। कहेउँ तात जानहिं कोविद नर॥"**[१२९५] दया का स्थान भी धर्म में अत्युच्च एवं उदात्त है।[१२९६]

'मानस' के अनुसार, वैष्णवधर्म का अहिंसावाद सर्वोच्च माना गया है। धर्म के कठिन विधि-विधानों की अपेक्षा राम-नाम जप सरलतम है।

मानस के अनुसार—भक्ति अति सुखदायिनी है। रामभक्त होने के लिए शिव की भक्ति भी अनिवार्य है।[१२९७]

सनातन धर्म की वर्णाश्रम-व्यवस्था एवं उसमें प्रतिष्ठित नियम, व्रत, उपवास, स्वाध्याय, यज्ञ, पूजा-पाठ, स्नान-ध्यान, तिलक-मुद्रा-प्रभृति धर्म के बाह्य स्वरूपों के प्रति भी 'मानस' में आस्था प्रकट की गयी है और भूलकर भी इनकी निन्दा नहीं की गयी है। संक्षेप में, 'मानस' में उस धर्म का प्रतिपादन किया गया है जो भक्ति-प्रधान लोक-धर्म कहा जा सकता है।

'पद्मपुराण' और 'मानस' का धार्मिक दृष्टि से अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि दोनों में ही मानव कल्याण के लिए धर्म का विधान किया गया है पद्मपुराण सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र-युक्त जैन-धर्म का एडवोकेट है और मानस वर्णाश्रम-व्यवस्था का। विचार करने पर दोनों ही धार्मिक दृष्टियाँ कल्याणकारी हैं और अपने युग की आवश्यक उपज हैं। किन्तु ये धर्मदृष्टियाँ एक दूसरे से भिन्न मानी मानी जाती रही हैं। यही कारण है कि रविषेण और तुलसी-दोनों की धार्मिक विचारधाराएँ भिन्न हैं। जहाँ 'पद्मपुराण' यज्ञादि का खण्डन करता है वहाँ 'मानस' उनका पोषण। जहाँ 'पद्मपुराण' का धर्म व्यावहारिक दृष्टि से अधिक कठिन है वहाँ 'मानस' का धर्म लोक-धर्म होने के कारण अधिक सुगम और ग्राह्य। 'पद्मपुराण' के धर्म को समझने के लिए दार्शनिक पृष्ठभूमि अपेक्षित है, 'मानस' के धर्म के अनुसरण के लिए सरल हृदय। 'पद्मपुराण' में ब्राह्मण धर्म की मिथ्यादर्शन के रूप में निन्दा करके अपने धर्म की प्रतिष्ठा की गयी है, 'मानस'

१२९१. वही, १।१८३, १।१८०-१८४, १।१८०।१

१२९२. वही, १।१८३।५

१२९३. वही, १।८३।१, २

१२९४. वही, ३।३०।९

१२९५. वही, ७।४०।१, २

१२९६. वही, ७।१११।१०

१२९७. वही, १।१०३।५

में धर्म की प्रतिष्ठा करके अधर्म की निन्दा की गयी है। 'पद्मपुराण' का आदर्श धर्म है—कट्टर, कठोर जैनधर्म और 'मानस' का लोक-धर्म, जिसकी समाज में रहकर सरलता से साधना की जा सकती है। 'पद्पुराण' का धर्म प्रचार की भावना से युक्त है और 'मानस' का धर्म सुधार का भावना से।

साहित्य और संस्कृति एक दूसरे के पूरक और स्मारक होते हैं। अतीत के गर्भ में विलान होने वाली मानव की जिजीविषा की सहचर क्रियाओं का पुनदर्शन साहित्य के माध्यम से अनागत तक में होता रहता है और शब्द और अर्थ में छिपी चिरन्तन मूल वृत्तियों की प्रायोगिक कक्षाएँ जीवन में लगती रहती हैं। यही है साहित्य और संस्कृति का अन्योन्याश्रय-सम्वन्ध। 'पद्पुराण' और ,मानस' सांस्कृतिक दृष्टि से भी हमें कुछ देते हैं। 'पद्मपुराण' में निविष्ट सांस्कृतिक सामग्री का परिचय पीछे दिया जा चुका है। यहाँ 'मानस' के सांकृतिक सूचना-दान का उल्लेख करके दोनों ग्रंथों के **सांस्कृतिक पक्ष** पर तुलनात्मक दृष्टि डाली जा रही है।

'रामचरितमानस' में संस्कृति : 'रामचरितमानस में उपनिवद्ध संस्कृति आदर्श हिन्दू-संस्कृति है। यहाँ संस्कृति का यथार्थ रूप अधिकतः प्रस्फुरित नहीं हो सका है। मर्यादावादी एवं लोकसंग्रहवादी होने के कारण तुलसी ने मानस में राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा अन्य क्षेत्रों में मर्यादा का आदर्श रखा है, अतः वहाँ तत्कालीन संस्कृति का यथार्थ दर्शन कठिन है। फिर भी व्यंजना से उन्होंने इसकी वहुत कुछ झलक दे दी है। डा० भगीरथ मिश्र के शब्दों में 'गोस्वामी तुलसीदास का काव्य लिखने वा वास्तविक उद्देश्य लोक-जीवन का यथार्थ चित्रण करना नहीं था, वरन् उसके आदर्श की ओर संकेत करना था। इसलिए राम के चरित्र का वर्णन करने में प्रधान रूप से लोक-जीवन का यथार्थ चित्रण कहीं भी नहीं मिलता। साथ ही-साथ अपने काव्य सम्वन्धी आदर्श स्पष्ट करते हुए उन्होंने प्राकृत जन के गुणगान न करने का भी संकल्प प्रकट कर दिया है। ऐसी दशा में वहुत विस्तारपूर्वक पूर्ण व्यापक और यथार्थ तथा निरपेक्ष जन-जीवन के वर्णन की आशा हम कर भी नहीं सकते, किन्तु तुलसी का उद्देश्य अपनी काव्य-रचना में जन-जीवन-सुलभ वस्तुओं को देना है। इसजिए गौणरूप में प्रकारान्तर से लोक-जीवन की झलक हमें मिल जाती है। पर संस्कृति जीवन का आदर्श रूप प्रस्तुत करती है, अतः उसका चित्रण गोस्वामी जी के ग्रन्थों में 'राम-चरितमानस' के माध्यम से बरावर हुआ है।[१२९८] भाव यह है कि पूर्वपक्ष के

१२९८. डा० भगीरथ मिश्र : तुलसी रसायन, पृ० १५८।

अन्तर्गत संस्कृति के यथार्थ चित्रण की झलक है और उत्तरपक्ष के अन्तर्गत आदर्श की। यहाँ हमें इस सांस्कृतिक चित्रण पर विचार करना है।

तुलसीदास ने 'मानस' में राजनीतिक आदर्शों को हमारे सम्मुख रखा है। उनके अनुसार जिस राजा के राज्य में प्रजा दुखारी हो वह राजा अवश्य ही नरक का अधिकारी है। इससे सिद्ध है कि तुलसी के समय राजा से प्रजा दुखी थी। **'नृप पाप परायन धर्म नहीं। कर दंड विडंब प्रजा नितही ॥'**[१२९९]——से तत्कालीन राजाओं की अन्यायपरता ध्वनित होती है। 'रामराज्य' की कल्पना आदर्श राज्य की कल्पना है जहाँ राजा प्रजा का हितकारी होकर यह कहता है——

'जो कछु अनुचित भाषौं भाई। तौ मोंहि बरनहु भय बिसराई ॥'

युद्ध आदि के वर्णनों से कोई विशेष निष्कर्ष नहीं निकलता। पारम्परिक बातें ही युद्ध के प्रसंगों में आयी हैं।

समाज-व्यवस्था के विषय में पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। गोस्वामीजी ने वर्णाश्रम-व्यवस्था को आदर्श रूप में रखा है जो प्राचीनकाल से वेदशास्त्रानुमोदित रही है।[१३००] वे ब्राह्मणों की बड़ी प्रशंसा करते हैं।[१३०१] किन्तु यह सब आदर्श ही है। गोस्वामीजी के समय समाज का स्तर बहुत नीचे गिरा प्रतीत होता है। वर्णाश्रम-व्यवस्था विलुप्त-सी लगती है—**'बरन धर्म नहिं आश्रम चारी। श्रुति विरोध रत सब नर नारी ॥'** मानस के उत्तरकाण्ड में ब्राह्मण से लेकर शूद्र तक की अव्यवस्था का संकेत है——

सूद्र द्विजन्ह उपदेसहिं ग्याना। मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना॥
सूद्र करहिं जप तप व्रत दाना। बैठि वरासन कहहिं पुराना॥
बिप्र निरन्तर लोलुप कामी। निराचार सठ वृषलीस्वामी॥

गोस्वामीजी ने ऐसे विश्रृंखल समाज को सुश्रृंखल बनाने के लिए समन्वय की भावना वाली आदर्श संस्कृति प्रस्तुत की।

'रामचरितमानस' में वर्णित जातियों के तीन वर्ग किये जा सकते हैं——दिव्य जातियाँ (गन्धर्व, अप्सरा आदि), मनुष्य जातियाँ (ब्राह्मण, भाट, वंदी, मागध, सूत आदि) तथा वन्य जातियाँ (निषाद, कोल, किरात आदि)। इन जातियों के

१२९९. 'मानस' ७।१००।६।

१३००. वर्णाश्रम-व्यवस्था की प्राचीनता के लिए देखिये—ऋग्वेद १०।९०।१२-१३, यजुर्वेद, २१।११-१२, अथर्ववेद १६।६।६-७, गीता ४।१३, भागवत २।५।३७। इनके अतिरिक्त 'मनुस्मृति' आदि ग्रन्थों में तो वर्णाश्रम धर्म की विशद व्यवस्था है ही।

१३०१. देखिये 'मानस' ३।३३।१,२१, ७।४४।७-८, १०८।१३-१४, ४।१६।८, १।१६४। ३६ आदि।

उल्लेख और वर्णन से उनकी संस्कृति का कुछ आभास मिलता है।[१३०२] मागध, बन्दी, और भाटों के विरुदावली-गान का उल्लेख है––

"वन्दी मागध सूतगन विरुद वदहि मति धीर।
करहिं निछावर लोग सब हय गय धन मनि चीर।"।[१३०३]
"कतहुँ विरिद बंदी उच्चरही।"[१३०४]
"मागध सूत विदुष वंदी जन।"[१३०५]
"वन्दि मागधन्हि गुनगन गाए।"[१३०६]

वन्य जातियों में उल्लेख तो बहुत सी जातियों का है जैसे कोल, किरात, भील, आदि परन्तु निषादों का चित्रण विशद रूप में मिलता है। निषादराज गुह ने अपनी जाति नीच बताई है––"मैं जनु नीच सहित परिवारा।" निषाद मछली पकड़ते तथा शिकार खेलते थे। मछली पकड़ने का संकेत इस बात से मिलता है कि भरत को भेंट देते समय निषाद मछलियाँ भी भेंट करता है–– **"मीन-पीठ पाठीन पुराने। भरि-भरि थार कहारन्ह आने।।"** प्रतीत होता है कि निषादों का जीवन कठोर था। उसमें कोमल भावनाओं के लिए कोई स्थान नहीं था। कठोर जीवन के साथ ही वह जाति इतनी नाच समझी जाती थी कि लोग उसकी छाया से भी घृणा करते थे––'लोक वेद सब भाँतिहिं नीचा। जासु छाँह छुइ लेइय सींचा।।" (मानस २।१९३।२)

गोस्वामी जी ने आदर्श परिवार की कल्पना की हैं। उसमें उन्होंने दाम्पत्य-प्रेम, भ्रातृ-स्नेह, पिता-पुत्र का आदर्श सम्बन्ध, सास-बहू और ससुर का प्रेम, गुरु-भक्ति आदि सभी कुछ दिखाया है। इस आदर्श की व्यंजना यही है कि इस समय ऐसा प्रायः नहीं था। यदि यह सब होता तो वे ऐसा आदर्श उपस्थित क्यों करते ?

'मानस' के उत्तरकाण्ड में तत्कालीन आर्थिक दशा के संकेत भी मिलते हैं। 'कलि बारहिं बार अकाल परे' से तत्कालीन दयनीय स्थिति की ध्वनि निकलती है। इसे सुधारने के लिए भा तुलसी आदर्श रामराज्य की कल्पना करते हैं जहाँ––

**"मणि दीप राजहिं भवन भ्राजहिं देहरी विद्रुम रची।
मनि स्वयं भीति बिरंचि बिरची कनक मनि मरकत खची।।"[१३०७] आदि**

१३०२. चन्द्रभान : रामचरितमानस में लोक वार्ता।
१३०३. 'मानस' १।२९२
१३०४. वही, १।२९६-२९७ के बीच।
१३०५. वही, १।३०८-३०९
१३०६. वही, १।३५७-३५८ के बीच।
१३०७. मानस, उत्तर०, २९वें दोहे के बाद का छन्द।

धार्मिक जीवन के संकेत भी मानस के उत्तरकाण्ड में मिलते हैं। धार्मिक आडम्वर और ढोंग समाज में अधिक फैल चुके प्रतीत होते हैं। धुने-जुलाहे धर्माचार्य बने लगे थे। 'मूँड मुँडाकर संन्यासी' होने वालों की भी कमी नहीं थी। तुलसी ने ऐसे धर्म को सुधारने के लिए लोकधर्म की स्थापना का।

संस्कृति का सर्वाधिक यथार्थ चित्रण 'मानस' में हमें विविध संस्कारों के प्रसंग में मिलता है। रामजन्म-संस्कार के अवसर पर लोक-संस्कृति का यथार्थ चित्रण हुआ है—

"नांदीमुख सराध करि, जात करम सब कीन्ह।
हाटक धेनु बसन मनि नृप बिप्रन्ह कहँ दीन्ह॥'[१३०८]

यहाँ 'जातकरम' करने से उन समस्त लौकिक कृत्यों की ओर निर्देश है जो 'जन्ति' के समय स्त्री-समाज की ओर से होते हैं। आगे चलकर कवि ने नगरवासियों के समारोह का वर्णन किया है। 'मंगलकलस' मंगलसूचक माना जाता था——

'वृंद-वृंद मिलि चली लोगाई। सहज सिंगार किएं उठि धाईं॥
कनक-कलस मंगल भरि थारा। गावत पैठहिं भूप दुआरा॥
करि आरति निवछावर करहीं।'[१३०९]

नाम संस्कार भी जन्म-संस्कार की एक प्रमुख घटना है। वसिष्ठजी ने श्रीराम का नाम रखा है। आगे चूडाकरण आदि का उल्लेख है। दूसरा प्रधान संस्कार विवाह-संस्कार है। 'मानस' में दो विवाह प्रमुख हैं—पहला शिव-पार्वती-विवाह और दूसरा राम-सीता-विवाह। शंकर की बारात के नगर के निकट पहुँचने पर उसकी अगवानी की जाती है। वह प्रथा आज भी है। साथ ही 'परिछन' लेने की प्रथा भी है। पार्वती की माता 'परिछन' करने चलती है :—

'मैनाँ सुभ आरती सँवारी। संग सुमंगल गावहिं नारी॥
कंचन थार सोह बर पानी। परिछन चली हरहि हरषानी॥'[१३१०]

मंगलगान के अतिरिक्त 'जेवनार' के समय 'गारी' का भी उल्लेख मिलता है। इन गारियों में नाम ले-लेकर परिहास किया जाता था—

'नारि वृन्द सुर जेवत जानी। लगी देन गारी मृदु बानी॥'[१३११]

राम-सीता-विवाह में भी 'गारी' देने का उल्लेख है—

१३०८. मानस, १।१९३।
१३०९. मानस, १।१९३।२-३।
१३१०. वही, १।९५।१-२।
१३११. वही, १।९८।४।

'जेवँत देहिं मधुर धुनि गारी। लै लै नाम पुरुष अरु नारी॥
समय सुहावनि गारि विराजा। हँसत राउ सुनि सहित समाजा॥'[१३१२]

आज भी पूर्वी प्रान्तों में यह 'गारी' देना प्रचलित है। विवाह के मण्डप के निर्माण में हरे बाँसों के उपयोग का उल्लेख हुआ है—

'बेनु हरित मनिमय सब कीन्हे। सरल सपरब परहिं नहिं चीन्हे॥'[१३१३]

सीताजी के द्वारा देवताओं की पूजा कराई गयी है और स्त्रियों के द्वारा विविध मनौतियों का उल्लेख किया गया है। आज भी ये प्रथाएँ विद्यमान हैं—

'आचारु करि गुरु गौरि गनपति मुदित विप्र पुजावहिं।
o o o
पुर नारि सकल पसारि अंचल विधिहि बचन सुनावहीं।
ब्याहिअहुँ चारिउ भाइ इहिं पुर हम सुमंगल गावहीं॥'[१३१४]

भाँवर पड़ने के बाद माँग में सेन्दुर देने की प्रथा का भी संकेत है—

'राम सीय सिर सेंदुर देहीं। सोभा कहि न जाति विधि केहीं॥'[१३१५]

कोहवर की प्रथा का भी उल्लेख आया है—

'कोहवरहिं आने कुँअरि-कुँअरि सुआसिसिन्ह सुख पाइ कै।
अति प्रीति लौकिक रीति लागी करन मंगल गाइ कै॥
लहकौरि गौरि सिखाव रामहि सीय-सन सारद कहैं।
रनिवासु हास-विलास रस बस जन्म को फलु सब लहैं॥'[१३१६]

इसी प्रकार 'जेवनार' का और 'पंच कवल' प्रथा का वर्णन भी आया है—

'पंच कवल करि जेवन लागे।'[१३१७]

इस प्रकार के वैवाहिक चित्रण से लोक-संस्कृति का पर्याप्त ज्ञान होता है।

इन संस्कारों के अतिरिक्त लोक-विश्वासों तथा शकुन-अपशकुनों का वर्णन भी आया है।—दाहिनी और कौआ बैठना, नकुल का दीखना आदि शुभ शकुन माने गये हैं, यथा—

'चारा चाषु वाम दिसि लेई। मनहुँ सकल मंगल कहि देई॥
दाहिन काग सुखेत सुहावा। नकुल दरसु सब काहूँ पावा॥
सानुकूल बह त्रिविध बयारी। सघट सबाल आव वर नारी॥
लोवा फिरि फिरि दरसु दिखावा। सुरभी सनमुख सिसुहि पियावा॥
मृगमाला फिरि दाहिनि आई। मंगल गन जनु दीन्हि देखाई॥

१३१२. वही, १।३६८।३-४
१३१३. वही, १।१८७।१
१३१४. वही, १।३२२।छन्द १, १।३२६।छन्द १
१३१५. वही, १।३२४।४
१३१६. वही, १।३२६।छन्द २
१३१७. वही, १।३२८।१

छेमकरी कह छेम बिसेषी। स्यामा वाम सुतरु पर देखी।।
सनमुख आयउ दधि अरु मीना। कर पुस्तक दुइ बिप्र प्रवीना।।[१३१८]

अपशकुनों का वर्णन रावण के रणप्रयाण के समय हुआ है। अशुभ समझे जाने वाले शकुनों में गिद्ध, उल्लू, कर्कशवाक् कौआ आदि पक्षी आते हैं। रिक्त घट का आना भी अपशकुन है––

'चलत होहिं अति असुभ भयंकर। बैठहिं गीध उड़ाइ सिरन्ह पर।।'[१३१९]

इन अपशकुनों की विश्वव्यापी स्थिति रावण-वध के समय दिखाई गयी है। आकाश और पृथ्वी के अपशकुनों का वर्णन निम्नलिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है––

'असुभ होन लागे तब नाना। रोवहिं खर सृकाल बहु स्वाना।।
बोलहिं खग जग आरति हेतू। प्रगट भए नभ जहँ तहँ केतू।।
दस दिसि दाह होन अति लागा। भयउ परबबिनु रवि उपरागा।।'[१३२०]

गीदड़ों और कुत्तों का रोना आदि देखकर मंदोदरी का हृदय काँपने लगता है। इस सबसे तत्कालान विश्वासों की व्यंजना होती है।

शरीर के अंगों के फड़कने से भी शुभ-अशुभ का आभास तुलसी के समय में माना जाता था, जैसा कि आज भी है। स्त्री के दाहिने अंग का फड़कना अशुभ समझा गया है। मंथरा के द्वारा भरी जाने पर कैकेयी अपने अशुभसूचक अंग-स्फुरण की बात कहती है––'सुनु मन्थरा बात फुरि तोरी। दहिनि आँखि नित फरकत मोरी।।' (२।१६-३) पुरुषों के वामांग फड़कने पर अशुभ की सूचना मिलने की बात कही गयी है। अभिषेक की चर्चा चलने पर राम के मंगल-अंग फड़कने लगते हैं जिनको वे भरतागमन के सूचक मानते हैं––

'सुनत राम अभिषेक सुहावा। वाज गहागह अवध बधावा।।
राम सीय तन सगुन जनाए। फरकहिं मंगल अंग सुहाए।।'[१३२१]

स्वप्नों के शुभाशुभफलदायकत्व की भी चर्चा हुई है। कैकेयी अपने कुसपनों की बात मंथरा से कहती है––'दिनप्रति देखउं राति कुसपने। कहहुं न तोहि मोहि वस अपने।।' लंकिनी को भी अशुभ स्वप्न दीखा है––

'सपनें बानर लंका जारी। जातुधान सेना सब मारी।।
खर आरूढ़ नगन दस सीसा। मुंडित सिर खंडित भुज बीसा।।'[१३२२]

१३१८. वही, १।३०२-३०३ के बीच।
१३१९ वही, ६।५५
१३२०. वही, ६।१०।१४
१३२१. वही, २।६।२
१३२२. वही, ५।१०।२

मानस की लोक-संस्कृति में काने, कूवरे और खोरे कुटिल, कुचाली और अशुभ माने गये हें। कैकेयी मंथरा से कहती है––

'काने खोरे कूवरे कुटिल कुचाली जानि।
तिय विसेषि पुनि चेरि कहि भरत मातु मुसकान ।।[१३२३]

छींक-सम्वन्धी-विश्वास का भी मानस में उल्लेख हुआ है। निषादराज जिस समय राम-मिलन के लिए चित्रकूट जाते हुए भरत से मोर्चा लेने के लिए सन्नद्ध होता है, उस समय छींक होती है––

'एतना कहत छींक भई बाएँ। कहेउ सगुनिअन्हि खेत सुहाए।।
बूढ़ एकु कह सगुन बिचारी। भरतहिं मिलिह न होइहि हारी ।।[१३२४]

'शिष्टाचार और कलात्मक सजधज का जो वर्णन तुलसा ने किया है उसमें भी उनके यथार्थवादी और आदर्शात्मक दृष्टिकोण का समन्वय है। शिष्टाचार में व्यक्ति के परिवार के विभिन्न जातियों से व्यवहार और अभिवादन के प्रसंग हैं या व्यक्ति के समाज के विभिन्न व्यक्तियों के साथ के व्यवहार हैं। इसमें सामान्यतया गुरु, मित्र. राजा, पुरोहित, सेवक, शत्रु आदि के वार्तालापों के प्रसंग आते हैं। सुमन्त्र सचिव और राजा की वातचीत में तुलसी ने शिष्टाचार सम्वन्धी अभिवादन सूचक शव्द 'जय जीव' का प्रयोग किया है जैसे––

'देखि सचिव जयजीव कहि कीन्हेउ दण्ड प्रणाम।'[१३२५]

अथवा

'कहि जय जीव सीस तिन्ह नाए।'[१३२६]

यह 'जयजीव' एक विशिष्ट शव्द है। 'जय' तो अव भी प्रचलित है, पर 'जयजीव' नहीं।'[१३२७]

माताओं के द्वारा वच्चों के प्रयाण या विलम्व के वाद आगमन पर उनके शिर सूँघने का उल्लेख भी तुलसी ने किया है।

'कलात्मक सज-धज के अनेक अवसर तुलसी द्वारा वर्णित रामचरित के भीतर आये हैं और सर्वत्र तुलसी की कलादृष्टि की वारीकी को स्पष्ट करते हैं। उन्होंने संकेत रूप से वस्तु, चित्र, नृत्य, संगीत, काव्य आदि कलाओं का उल्लेख किया है। परन्तु विशेष रूप से मोहक विवरण विवाह आदि संस्कारों में की गयी कलात्मक सजधज के हैं। तुलसी की कलासम्बन्धी सूझ का पूर्ण स्पष्टीकरण 'राम-

---

१३२३. वही, २।१४   १३२४. वही, २।१९१-२
१३२५. वही, २।१४८   ११२६. वही, २।४।१
१३२७. डा० भगीरथ मिश्र : तुलसी रसायन, पृ० १६३-६४।

चरितमानस' में वर्णित जनकपुरी-सजावट के प्रसंग में हो जाता है।'[१३२८] यथा--

'बिधिहि बंदि तिन कीन्ह अरंभा। बिरचे कनक कदलि कर खंभा।।
हरित मनिन्ह के पत्र फल, पद्मराग के फूल।
रचना देखि बिचित्र अति, मन बिरंचि के भूल।।
बेनु हरित मनिमय सब कीन्हें। सरल सपरब परहि नहि चीन्हें।।
कनक कलित अहिबेलि बनाई। लखि नहिं परइ सपरन सुनाई।।
तेहि के रचि पचि बंध बनाए। बिच बिच मुकता दाम सुहाए।।
मानिक मरकत कुलिस पिरोजा ... ...आदि।।'[१३२९]

शिव-पार्वती, वनदेवी-वनदेव, कुलदेवता आदि लोक देवताओं का भी तुलसी ने मानस में उल्लेख किया है। गिरिजा की सीता ने पूजा की है।[१३३०] गणेश की भी पूजा हुई है--**'आचारु करि गुर गौरि गनपति मुदित बिप्र पुजावहीं।'** कौशल्या ने वनदेवों की मनौती की है--**'पितु बनदेव मातु बनदेवी।'**[१३३१] सीता भी वनदेवों में विश्वास रखती है--**'बनदेवी बनदेव उदारा।'**[१३३२] पितरों की पूजा का भी संकेत है--**'देव पितर पूजे बिधि नीकी।'**[१३३३]

'मानस में 'भौगोलिक नाम ५० से अधिक नहीं हैं। कुछ नाम बार-बार आते हैं। अवध या उसके पर्यायवाची अवधपुर, अवधपुरी, अयोध्या, कोशल, कौशला, कौशलपुर, कौशलपुरी, रामपुर, रामपुरी या दशरथपुर--ये नाम सौ से अधिक वार आये हैं। अकेले अयोध्याकाण्ड में अवध का नाम ५४ बार आया है। सुरसरी और उसके पर्यायवाची सुरसरिता देवसरि, देव-धुनी, विबुध-नदी और गंग या गंगा का नाम ५० बार से अधिक मिलता है। ३५ बार लंका, २६ बार हिमगिरि, २३ बार प्रयाग, १८ बार चित्रकूट, १६ बार सरयू, ११ बार यमुना, १० वार कैलाश, ८ बार मिथिला, ७ बार काशी और त्रिवेणी, ६ बार दण्डक और पंचवटी, ५ बार शृंगवेरपुर या सिंगरौर, ४ बार मन्दाकिनी, विन्ध्याचल और गोदावरी, ३ बार तमसा, गोमती, प्रवर्षणगिरि, त्रिकूट गिरि, अशोकवन और २ बार से कम कर्मनाशा, मेकलसुता, सई, नीलगिरि, सेतुबन्ध और सुबेल के नाम नहीं आये। प्रसंगानुसार नन्दि-ग्राम, वदरी-वन, नैमिष, केकयदेश, मग, मरु-देश, मालव, उज्जैन, सोननद, मानस, पम्पा-सरोवर, ऋष्यमूक, रामेश्वर आदि

१३२८. डा० भगीरथ मिश्र : तुलसी रसायन, पृष्ठ १६४।
१३२९. मानस, २।२८७।१-२
१३३०. वही, १।२२७।१-३
१३३१. वही, २।५५-५६
१३३२. वही, २।६५।१
१३३३. वही, १।३५०।१

का नाम भी कम से कम एक बार तो आ ही गया है। कहीं-कहीं पौराणिक भूगोल के नाम भी आ गये हैं, सुमेरु, सरस्वती, सप्तद्वीप, भोगवती, अमरावती, मंदर, मैनाक, आदि। कई स्थलों में राजाओं आदि के नाम भौगोलिक नामों पर से वतलाए गये हैं। जैसे—अवधेश, अवधपति, कौशलेश, कौशलाधीश। 'लंकाकाण्ड' में तो कौशलाधीश की भरमार है। इसी प्रकार जनक के नाम मिथिलेश, तिरहुतिराउ, विदेह और उनकी लड़की का नाम मैथिली, वैदेही आदि से कई स्थलों में सूचित किया गया है। रावण के लिए लंकापति, लंकेश आदि का प्रयोग किया गया है।'[१३३४]

'पद्मपुराण' और 'मानस' का सांस्कृतिक दृष्टि से अध्ययन करने के उपरान्त यह निष्कर्ष निकलता है कि जहाँ 'पद्मपुराण' भारत के सुख-शान्ति-वैभव-आदि से समन्वित संस्कृति का यथार्थ परिचय देता है वहाँ 'मानस' आदर्श संस्कृति का रूप प्रस्तुत करता है। पहले में यदि 'क्या था' पर वल दिया गया है तो दूसरे में 'क्या होना चाहिए' पर। इसका यह आशय नहीं कि मानस में यथार्थ संस्कृति का रूप है ही नहीं। उसमें लोक संस्कृति का चित्रण पर्याप्त मात्रा में है परन्तु राजनीतिक रहन-सहन, स्थापत्यकला, व्यापार-व्यवस्था आदि का यथार्थ चित्रण 'पद्मपुराण' के सदृश नहीं है। जो कुछ भी इसका संकेत 'मानस में मिलता है वह सुने गये के आधार पर ही है यथा—युद्धवर्णन आदि। इसलिए यह करने में कोई कोई संकोच नहीं करना चाहिए कि तत्कालीन भारतीय संस्कृति का अध्ययन करने के लिए जितना महत्त्व 'पद्मपुराण' का है उतना 'मानस' का नहीं।

'पद्मपुराण' का 'रामचरितमानस' पर प्रभाव

'रामचरितमानस' पर 'पद्मपुराण' का प्रभाव अभी तक शब्दप्रमाण के आधार पर तो प्रतिपादित किया ही नहीं गया है, प्रत्यक्ष और अनुमान भी अभी तक मौन से ही हैं। हम प्रत्यक्ष और अनुमान के सहारे इस समस्या पर विचार करेंगे।

मानस के प्रारम्भ में आया **'नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि'**—श्लोक ही एक ऐसा स्रोत है जिसके आवार पर तुलसी के रामचरितमानस के उपजीव्य ग्रन्थों का अनुमान किया जा सकता है। **'नानापुराण'** और **'क्वचिदन्यतोऽपि'**—शब्द (ही) कथंचित् 'पद्मपुराण' के मानस पर प्रभाव की वकालत कर सकते हैं क्योंकि 'पद्मपुराण' 'पुराण' संज्ञा

१३३४. 'तुलसी और उनका काव्य' पृ० १६९-१७० पर उद्धृत पुरातत्त्वज्ञ स्व० हीरालाल जी का एक लेख जो 'माधुरी' सं० १८६० श्रावण में छपा था।

वाला भी है और यदि 'पंचलक्षण पुराण' भेद में पद्मपुराण का अन्तर्भाव न हो सकता हो तो फिर उपर्युक्त सूची में 'अन्यतोऽपि' के अन्तर्गत यह आ सकता है।

केवल इन्हीं दो शब्दों के आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि सम्भवतः तुलसी ने 'पद्मपुराण' को देखा हो।

दूसरी सरणि है प्रत्यक्ष दर्शन की। रविषेण और तुलसी के ग्रंथों में अनेक समानधर्मा पद्य आये हैं यथा—

'आचाराणां विघातेन कुदृष्टीनां च सम्पदा।
धर्मं ग्लानिपरिप्राप्तमुच्छ्रयन्ते जिनोत्तमाः॥'[१३३५] (रविषेण)

'जब जब होइ धरम कै हानी। बाढहिं असुर अधम अभिमानी।
० ० ०
तब तब प्रभु धरि विबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥'[१३३६]
(तुलसी)

अथवा—

'एवमुक्ता सती सीता पराचीनव्यवस्थिता।
अन्तरे तृणमाधाय जगादारुचिताक्षरम्॥'[१३३७] (रविषेण)

'तृन धरि ओट कहति बैदेही। सुमिरि अवधपति परम सनेही॥'[१३३८] (तुलसी)

इन समान उक्तियों से पद्मपुराण के मानस पर प्रभाव की बात कही जा सकती है। यह कहा जा सकता है कि 'पद्मपुराण' के आधार पर 'मानस' में ये उक्तियाँ लिखी गयी हैं। किन्तु वस्तुतः ऐसा कहना वस्तुस्थिति से मुँह मोड़ना है।

पहली बात तो यह है कि ये उक्तियाँ मानसकार ने रविषेण से नहीं ली हैं अपितु दोनों ने इन्हें किसी तीसरे ग्रंथ से ही सीधे लिया है। उदाहरणार्थ उपर्युक्त 'आचाराणां विघातेन……' एवं 'जब जब होइ धरम कै हानी……' आदि गीता के इन श्लोकों के रूपान्तर हैं :—

'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥'[१३३९]

इसी प्रकार 'अन्तरे तृणमाधाय और 'तृन धरि ओट' भी 'वाल्मीकिरामायण' अथवा 'अध्यात्मरामायण' का सीधा अनुकरण है:—

१३३५. पद्म०, ५।२०७ १३३६. मानस, १।१२०।३-४
१३३७. पद्म०, ४६।११ १३३८. मानस, ५।८।३
१३३९. गीता, ४।७-८

'उवाचाधोमुखी भूत्वा विधाय तृणमन्तरे' (अध्यात्म०)
'तृणमन्तरतः कृत्वा प्रत्युवाच शुचिस्मिता।
निवर्तय मनो मत्तः स्वजने प्रियतां मनः ।।'[१३४०] (वाल्मीकि)

ऐसे स्थलों के कारण पद्मपुराण का मानस पर प्रभाव सिद्ध करना साहस ही होगा।

दूसरी बात यह है कि जब हम किसी ग्रन्थ का किसी ग्रन्थ पर प्रभाव सिद्ध करते हैं तो हमारा आशय यह होता है कि उपजीव्य ग्रंथ का मनोयोगपूर्वक अनुकरण किया गया है। पद्मपुराण और मानस के विषय में ऐसा निर्णय कदापि नहीं दिया जा सकता। पद्मपुराण की कथावस्तु और पात्रों का पार्थक्य पीछे दिखाया जा चुका है। जब दोनों ग्रन्थों का 'वस्तु' तत्त्व ही पृथक् है तो फिर एक का दूसरे पर प्रभाव कैसा ? जैसा 'अध्यात्मरामायण' आदि ग्रन्थों का प्रभाव मानस पर है वैसा पद्मपुराण का तो त्रिकाल में भी सिद्ध नहीं किया जा सकता।

इस प्रकार अनुमान और प्रत्यक्ष भी पद्मपुराण के मानस पर सीधे और यथावस्थित प्रभाव को सिद्ध नहीं कर पाते। हाँ, एक बात अवश्य कही जा सकती है कि संभवतः गोस्वामी जी ने पद्मपुराण को देखा होगा क्योंकि जैन कवि बनारसी उनके परिचितों में थे। यह भी कथंचित् कहा जा सकता है कि उन्होंने इसकी कुछ सूक्तियों को पढ़कर या सुनकर अपने मानस में उनके भाव की सूक्तियाँ रखी होंगी किन्तु यह पद्मपुराण का मानस पर प्रभाव नहीं, अपितु गोस्वामी जी की मधुकरी वृत्ति का निदर्शन है। प्रभाव तो तब माना जाता जब वे मानस में पद्मपुराण के कथानक के किसी अंश को निविष्ट करते। उन्होंने लक्ष्मण-शक्ति पर अयोध्या की रणसज्जा तक का संकेत नहीं किया। यदि वे पद्मपुराण को आद्योपान्त ध्यान से पढ़ते तो कम-से-कम कुछ प्रसंगों को तो अवश्य वे मानस में स्थान देते। अयोध्या की रणसज्जा का प्रसंग तो उनके कथानक को और भी चारु बना देता और इसमें कोई सैद्धांतिक विरोध भी नहीं आता था। अतः पद्मपुराण के मानस पर यथावस्थित प्रभाव की चर्चा खपुष्पत्रोटन ही है। जो उक्तियाँ इन दोनों ग्रन्थों में समान भावों वाली मिलती हैं, वे प्रायः या तो 'घुणाक्षरन्यायसिद्ध' मानी जानी चाहिएँ अथवा उनका स्रोत कोई तीसरा ही ग्रन्थ मानना चाहिए यथा—वाल्मीकिरामायण, गीता, पंचतन्त्र आदि। यहाँ हम कुछ ऐसे तुलनात्मक उद्धरण प्रस्तुत कर रहे हैं—

१. रविषेण—'सत्कथाश्रवणौ यौ च श्रवणौ तौ मतौ मम।
अन्यौ विदूषकस्येव श्रवणाकारधारिणौ।।

१३४०. वाल्मीकिरामायण. ५।२१।३

सच्चेष्टावर्णना वर्णा घूर्णन्ते यत्र मूर्धनि।
अयं मूर्द्धाऽन्यमूर्द्धा तु नालिकेरकरंकवत्।।
सत्कीर्तनसुधास्वादसक्तं च रसनं स्मृतम्।
अन्यच्च दुर्वचोधारं कृपाणदुहितुः फलम्।।
श्रेष्ठावोष्ठौ च तावेव यौ सुकीर्तनवर्तिनौ।
न शम्बूकास्यसंयुक्तजलौकापृष्ठसन्निभौ।।
दन्तास्त एव ये शान्तकथासंगमरंजिताः।
शेषाः सश्लेष्मनिर्वाणद्वारवन्धाय केवलम्।।
मुखं श्रेयःपरिप्राप्तेर्मुखं मुख्यकथारतम्।
अन्यत्तु मलसम्पूर्णं दन्तकीटाकुलं विलम्।।
वदिता योऽथवा श्रोता श्रेयसां वचसां नरः।
पुमान् स एव शेषस्तु शिल्पिकल्पितकायवत्।।'[1341]

तुलसी—'जिन हरि कथा सुनहि नहिं काना।
स्रवन रंध्र अहि भवन समाना।।
० ० ०
जो नहिं करइँ राम गुनगाना।
जीह सो दादुर जीह समाना।।'[1344]

२. रविषेण—'संसारे पर्यटन्नेष बहुयोनिसमाकुले।
मनुष्यभावमायाति चिरेणात्यन्तदुःखतः।।'[1343]

तुलसी—'बड़े भाग मानस तन पावा।
सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा।।
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा।
पाइ न जेहिं परलोक सँवारा।।'[1344]

३. रविषेण—'प्रिये त्वं तिष्ठ चात्रैव गच्छाम्यहं पुरान्तरम्।
ततो जगाद साध्वी सा यत्र त्वं तत्र चाप्यहम्।।'[1345]

१३४१. पद्म०, ११२८-३४ १३४२. मानस, १।११२।२,६

ऐसे भाव भागवत में भी व्यक्त हुए हैं, यथा—

'विले वतोरुक्रमविक्रमान् ये न शृण्वतः कर्णपुटे नरस्य।
जिह्वा सती दार्दुरिकेव सूत न चोपगायत्युरुगायगाथाः।।' (श्रीमद्भागवत, २।३।२०)
'श्वविड्वराहोष्ट्रखरैः संस्तुतः पुरुषः पशुः।
न यत्कर्णपथोपेतो जातु नाम गदाग्रजः।।' (वही, २।३।१९)

१३४३. पद्म०, २।१६८ १३४४. मानस, ७।४२।४

१३४५. पद्म०, ३१।१८५

तुलसी–'आपन मोर नीक जौं चहहू । बचन हमार मान गृह रहहू ।।

० ० ०

प्राननाथ करुनायतन सुन्दर सुखद सुजान ।
तुम बिनु रघुकुल कुमुद बिधु सुरपुर नरक समान ।।[१३४६]
प्राननाथ तुम बिनु जग माही ।
मो कहुँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं ।।[१३४७]

४. रविषेण–'वितत्य सकलं लोकं शशांककरनिर्मला ।
कीर्तिर्व्यवस्थिता माभूत् सैवं सति मलीमसा ।।'[१३४८]

तुलसी–'रिसि पुलस्ति जसु बिमल मयंका ।
तेहि ससि महुँ जनि होहु कलंका ।।'[१३४९]

५. रविषेण–रन्ध्रं प्राप्य वने भीमे हा केनास्मि दुरात्मना ।
हरता जानकीं कष्टं हतो दुष्करकारिणा ।।
दर्शयंस्तामथोत्सृष्टां हरन् शोकमशेषतः ।
को नाम वान्धवत्वं मे वनेऽस्मिन् परमेष्यति ।।
भो वृक्षाश्चम्पकच्छाया सरोजदललोचना ।
सुकुमाराङ्गिका भीरुस्वभावा वरगामिनी ।।
चित्तोत्सवकरा पद्मरजोगन्धिमुखानिला ।
अपूर्वा यौषिती सृष्टिर्दृष्टा स्यात् काचिदंगना ।।
कथं निरुत्तरा यूयमित्युक्त्वा तद्गुणैर्हृतः ।
पुनर्मूर्छापरीतात्मा धरणीतलमागमत् ।।

० ० ०

भो भो महीधराधीश धातुर्भिर्विविधैश्चित ।
सूनुर्दशरथस्य त्वां पद्माख्यः परिपृच्छते ।।
विपुलस्तननम्रांगा विम्बौष्ठी हंसगामिनी ।
सन्नितम्वा भवेद् दृष्टा सीता मे मनसः प्रिया ।।
दृष्टादृष्टेति किं वक्षि ब्रूहि ब्रूहि क्व सा क्व सा ।
केवलं निगदस्येवं प्रतिशब्दोऽयमीदृशः ।।

० ० ०

१३४६. वही, २।६४   १३४७. मानस, २।६४।३
१३४८. पद्म०, ४४।७०   १३४९. वही, ५।२२।४

भूयो भूयो ब्रहु ध्यायन् क्षणनिश्चलविग्रहः।
निराशतां परिप्राप्तः सूत्कारमुखराननः॥[1350]

तुलसी–'आश्रम देखि जानकी हीना। भए विकल जस प्राकृत दीना॥
हा गुनखानि जनकी सीता। रूप सील व्रत नेम पुनीता॥
लछिमन समुझाए बहु भाँती। पूछत चले लता तरु पाँती॥
हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम्ह देखी सीता मृगनैनी॥
० ० ०
ऐहि बिधि खोजत विलपत स्वामी।
मनहुँ महा विरही अति कामी॥'[1351]

६. रविषेण–'भस्मभावंगते गेहे कूपखानश्रमो वृथा।'[1352]
तुलसी–'का बरषा जब कृषी सुखाने।

७. रविषेण–'भवत्कीर्तिलताजालैर्जटिलं वलयं दिशाम्।
मा धाक्षीदयशोदावः प्रसीद स्थितिकोविद॥
परदाराभिलाषोऽयमयुक्तोऽतिभयंकरः।
लज्जनीयो जुगुप्स्यश्च लोकद्वयनिषूदनः॥'[1353]

तुलसी–'जो आपन चाहै कल्याना।
सुजसु सुमति सुभ गति सुख नाना॥
सो परनारि लिलार गोसाईं।
तजउ चउथि के चंद कि नाईं॥'[1354]

८. रविषेण–'ता दुःखहेतवः सर्वा वैदेहीं हन्तुमुद्यताः। [1355]
तुलसी–'भवन गयउ दसकंधर इहाँ पिसाचिनि वृन्द।
सीतहि त्रास दिखावहिं धरहिं रूप बहु मंद॥'[1356]

९. रविषेण–'इत्युक्तेः रुदतीं सीतां समाश्वास्य प्रयत्नतः।
यथाज्ञापयसीत्युक्त्वा निरैत्सीताप्रदेशतः॥'[1357]

तुलसी–'जनकसुतहि समुझाइ करि बहु बिधि धीरजु दीन्ह।
चरन कमल सिरु नाइ कपि गवनु राम पहिं कीन्ह॥'[1358]

१०. रविषेण–'चूडामणिमिमं चोद्धं दृढप्रत्ययकारणम्।

१३५०. पद्म०, ४४।११४-१४९
१३५१. मानस, ३।२९।१-८
१३५२. पद्म०, ४६।६९
१३५३. पद्म०, ४६।१२२-१२३
१३५४. मानस, ५।३७।३
१३५५. वही, ५३।१२३
१३५६. वही, ५।१०
१३५७. वही, ५३।१७०
१३५८. वही, ५।२७

दर्शयिष्यसि नाथाय तस्यात्यन्तमयं प्रियः ।।'[१३५९]

तुलसी—'चूडामनि उतारि तब दयऊ।
हरष समेत पवनसुत लयऊ ।।'[१३६०]

११. रविषेण—'उत्पाट्य वायुपुत्रोऽपि निःशस्त्रो धीरपुंगवः।
संघातं तुंगवृक्षाणां शिलानां वारमक्षिपत् ।।[१३६१]

० ० ०

बभंज त्वरितं कांश्चिदपरानुदमूलयत्।
मुष्टिपादप्रहारेण पिपेषान्यान् महाबलः ।।'[१३६२]

तुलसी—'चलेउ नाइ सिरु पैठेउ बागा। फल खाएसि तरु तोरैं लागा ।।
रहे तहाँ बहु भट रखवारे। कछु मारेसि कछु जाइ पुकारे ।।

० ० ०

कछु मारेसि कछु मर्देसि कछु मिलएसि धरि धूर।
कछु पुनि जाइ पुकारे प्रभु मर्कट बल भूरि ।।[१३६३]

१२. रविषेण—सर्वस्वेनापि यः पूज्यो यद्यप्यसकृदागतः।
सुचिरादागतो द्रोही त्वं निग्राह्यस्तु वर्तसे ।।
इमैर्निगदितैः क्रोधात् प्रहस्योवाच मारुतिः।
को जानाति विना पुण्यैर्निग्राह्यः को विधेरिति ।।
स्वयं दुर्मतिना सार्द्धमनेनासन्नमृत्युना।
इतो दिनैः कतिपयैर्द्रक्ष्यामः क्व प्रयास्यथ ।।[१३६४]

तुलसी—'मृत्यु निकट आई खल तोही। लागेसि अधम सिखावन मोही ।।
उलटा होइहि कह हनुमाना। मतिभ्रम तोर प्रगट मैं जाना ।।[१३६५]

१३. रविषेण—'इत्युक्तः क्रोधसंरक्तः खड्गमालोक्य रावणः।
जगाद दुर्विनीतोऽयं सुदुर्वचननिर्भरः ।।
त्यक्तमृत्युभयो विभ्रत्प्रगल्भत्वं ममाग्रतः।
द्राक् खलीक्रियतां मध्ये नगरस्य दुरीहितः ।।'[१३६६]

तुलसी—'सुनि कपि वचन बहुत खिसिआना। बेगि न हरहु मूढ़ कर प्राना ।।
सुनत बिहसि बोला दसकंधर। अंग भंग करि पठइअ बंदर ।।[१३६७]

१३५९. वही, ५३।१६७
१३६०. वही, ५।२६।१
१३६१. पद्म०, ५३।१९४
१३६२. वही, ५३।१९८
१३६३. मानस, ५।१७।१४,१८
१३६४. पद्म०, ५३।२४२-२४३
१३६५. मानस, ५।२३।२
१३६६. पद्म०, ५३।२५६-२५७
१३६७. मानस, ५।२३।३, ५

१४. रविषेण—'प्रमोदं जानकी प्राप्ता विषादं च मुहुर्मुहुः ।'[१३६८]
'ययौ हर्षविषादं च जनः सक्ताश्रुलोचनः ।।'[१३६९]

तुलसी—'हरष विषाद हृदय अकुलानी ।'[१३७०]

१५. रविषेण—'प्रिया जीवति ते भद्रेत्येवमागत्य मारुतिः ।
वेदयिष्यति मे साधुरिति चिन्तामुपागतम् ।।
क्षीणमत्यभिराभागं क्षीयमाणं निरंकुशम् ।
वियोगवह्निना नागं दावेनैवाकुलीकृतम् ।।
० ० ०
किन्तु त्वद्विरहोदारदावमध्यविवर्त्तिनी ।
गुणौघनिम्नगा वाला नेत्राम्बुकृतदुर्दिना ।।
वेणीवन्धच्युतिच्छायमूर्द्धजात्यन्तदुःखिता ।
मुहुर्निःश्वसती दीनं चिन्तासागरवर्तिनी ।।'[१३७१]

तुलसी—'नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट ।
लोचन निज पद जंत्रित जाहिं प्रान केहिं बाट ।।'
'सीता कै अति बिपति बिसाला ।
बिनहिं कहें भलि दीनदयाला ।।'[१३७२]
'कृस तनु सीस जटा एक बेनी ।'[१३७३]

१६. रविषेण—'विस्तीर्णा प्रवरा सम्पन्महेन्द्रस्येव ते प्रभो ।
स्थिता च रोदसी व्याप्य कीर्तिः कुन्ददलामला ।।
स्त्रीहेतोः क्षणमात्रेण सेयं मागाः परिक्षयम् ।
स्वामिन् सन्ध्याभ्ररेखेव प्रसीद परमेश्वर ।।
क्षिप्रं समर्प्यतां सीता तव किं कार्यमेतया ।
दृश्यते न च दोषोऽत्र प्रस्पष्टः केवलो गुणः ।।'[१३७४]

तुलसी—'तात चरन गहि मागउँ राखहु मोर दुलार ।
सीता देहु राम कहुँ अहित न होइ तुम्हार ।।'[१३७५]

१७. रविषेण—'नैषा सीता समानीता पित्रा तव कुवुद्धिना ।
रक्षोभोगविलं लंकामेषानीता विषौषधिः ।।'[१३७६]

तुलसी—तव कुल कुमुद बिपिन दुखदाई । सीता सीत निसा सम आई ।।[१३७७]

१३६८. पद्म०, ५३।२६७
१३६९. वही, ११३।२१
१३७०. मानस, ५।१२।१
१३७१. पद्म०, ५४।५-२०
१३७२. मानस, ५।३०।५
१३७३. वही, ५।७।४
१३७४. पद्म०, ५।९-११
१३७५. मानस, ५।४०
१३७६. पद्म०, ५५।२५
१३७७. मानस, ५।३५।५

१८. रविषेण—'एवं प्रवदमानं तं क्रोधप्रेरितमानसः।
उत्खाय रावणः खड्गमुद्गतो हन्तुमुद्यतः ॥'[१३७८]

तुलसी—'अस कहि कीन्हेसि चरन प्रहारा।'[१३७९]

१९. रविषेण—'देवागमननिर्मुक्ते कालेऽतिशयवर्जिते।
प्रनष्टकेवलोत्पादे हलचक्रधरोज्झिते ॥
भवद्विधमहाराजगुणसंघातरिक्तके।
भविष्यन्ति प्रजा दुष्टा वंचनोद्यतमानसाः ॥
निश्लीला निर्व्रताः प्रायः क्लेशव्याधिसमन्विताः।
मिथ्यादृशो महाघोरा भविष्यन्त्यसुधारिणः ॥
अतिवृष्टिरवृष्टिश्च विषमा वृष्टिरीतयः।
विविधाश्च भविष्यन्ति दुस्सहाः प्राणधारिणाम् ॥
मोहकादम्बरीमत्ता रागद्वेषात्ममूर्तयः।
नर्तितभ्रूकराः पापा मुहुर्गर्वस्मिता नराः ॥
कुवाक्यमुखराः क्रूरा धनलाभपरायणाः।
विचरिष्यन्ति खद्योता रात्राविव महीतले ॥
गोदण्डपथतुल्येषु मूढास्ते पतिताः स्वयम्।
कुधर्मेषु जनानन्यान्पातयिष्यन्ति दुर्जनाः ॥
अपकारे समासक्ताः परस्य स्वस्य चानिशम्।
ज्ञास्यन्ति सिद्धमात्मानं नरा दुर्गतिगामिनः ॥
कुशास्त्रमुक्तहुंकारैः कर्मम्लेच्छैर्मदोद्धतैः।
अनर्थजनितोत्साहैर्मोहसंतमसावृतैः ॥
छेत्स्यन्ते सततोद्युक्तैर्मन्दकालानुभावतः।
हिंसाशास्त्रकुठारेण भव्येतरजनांध्रिपाः ॥'[१३८०]
'धर्मनन्दनकालेषु व्ययं यातेष्वनुक्रमात्।
भविष्यति प्रचण्डोऽत्र निर्धर्मसमयो महान् ॥
दुःपाषण्डैरिदं जैनं शासनं परमोन्नतम्।
तिरोधायिष्यते क्षुद्रै रंजोभिर्भानुबिम्बवत् ॥
श्मशानसदृशा ग्रामाः प्रेतलोकोपमाः पुरः।
क्लिष्टा जनपदाः कुत्स्या भविष्यन्ति दुरीहिताः ॥

१३७८. पद्म०, ५५।३१ १३७९. मानस, ५।४।३
१३८०. पद्मपुराण, २०।९२-१०१

कुकर्मनिरतैः क्रूरैश्चौरैरिव निरन्तरम्।
दुःपाषण्डैरयं लोको भविष्यति समाकुलः॥
महीतलं खलं द्रव्यपरिमुक्ताः कुटुम्बिनः।
हिंसाक्लेशसहस्राणि भविष्यन्तीह सन्ततम्॥
पितरौ प्रति निस्नेहाः पुत्रास्तौ च सुतान् प्रति।
चौरा इव च राजानो भविष्यन्ति कलौ सति॥
सुखिनोऽपि नराः केचिन् मोहयन्तः परस्पम्।
कथाभिर्दुर्गतीशाभी रंस्यन्ते पापमानसाः॥
नंक्ष्यन्त्यतिशयाः सर्वे त्रिदशागमनादयः।
कषायबहुले काले शत्रुघ्न समुपागते॥
जातरूपधरान् दृष्ट्वा साधून् व्रतगुणान्वितान्।
संजुगुप्सां करिष्यन्ति महामोहान्विता जनाः॥
अप्रशस्ते प्रशस्तत्वं मन्यमानाः कुचेतसः।
भयपक्षे पतिष्यन्ति पतंगा इव मानवाः॥
प्रशान्तहृदयान् सावून् निर्भर्त्स्य विहसोद्यताः।
मूढा मूढेषु दास्यन्ति केचिदन्नं प्रयत्नतः॥
इत्थमेतं निराकृत्य प्राहूयान्यं समागतम्।
यतिनो मोहिनो देयं दास्यन्त्यहितभावनाः॥[१३८१]

तुलसी—'सो कलिकाल कठिन उरगारी। पाप परायन सब नर नारी॥
कलिमल ग्रसे धर्म सब लुप्त भए सदग्रन्थ।
दंभिन्ह निज मति कल्पि करि प्रकट किए बहु पंथ॥
भए लोग सब मोह बस लोभ ग्रसे सुभ कर्म।
सुनु हरिजान ग्यान निधि कहउँ कछुक कलिधर्म॥
बरन धर्म नहिं आश्रम चारी। श्रुति बिरोध रत सब नर नारी॥
द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन। कोउ नहिं मान निगम अनुसासन॥
मारग सोइ जा कहुँ जोइ भावा। पंडित सोइ जो गाल बजावा॥
मिथ्यारंभ दंभ रत जोई। ता कहुँ संत कहइ सब कोई॥
सोइ सयान जो परधन हारी। जो कर दंभ सो बड़ आचारी॥
जो कह झूँठ मसखरी जाना। कलिजुग सोइ गुनवंत बखाना॥
निराचार जो श्रुति पथ त्यागी। कलिजुग सोइ ग्यानी सो बिरागी॥
जाकें नख अरु जटा बिसाला। सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला॥

१३८१. वही, ९२।५४-६५

असुभ बेष भूषन धरें भच्छाभच्छ जे खाहिं।
तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर पूज्य ते कलिजुग माहिं।।
जे अपकारी चार, तिन्ह कर गौरव मान्य तेइ।
मन क्रम वचन लवार, तेइ वकता कलिकाल महुँ।।
नारि बिबस नर सकल गोसाईं। नाचहिं नट मर्कट की नाईं।।
सूद्र द्विजन्ह उपदेसहिं ग्याना। मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना।।
सब नर काम लोभ रत क्रोधी। देव बिप्र श्रुति संत विरोधी।।
गुन मंदिर सुंदर पति त्यागी। भजहिं नारि पर पुरुष अभागी।।
सौभागिनीं बिभूषन हीना। बिधवन्ह के सिंगार नबीना।।
गुर सिष बधिर अंध का लेखा। एक न सुनइ एक नहिं देखा।।
हरइ सिष्य धन सोक न हरई। सो गुर घोर नरक महुँ परई।।
मातु पिता बालकन्हि बोलावहिं। उदर भरै सोइ धर्म सिखावहिं।।
ब्रह्म ग्यान बिनु नारि नर कहहिं न दूसरि बात।
कौड़ी लागि लोभ बस करहिं विप्र गुरु घात।।
बादहिं सूद्र द्विजन्ह सन हम तुम्ह ते कछु घाटि।
जानइ ब्रह्म सो विप्रवर आँखि देखावहिं डाटि।।
पर त्रिय लंपट कपट सयाने। मोह द्रोह ममता लपटाने।।
तेइ अभेदबादी ग्यानी नर। देखा मैं चरित्र कलिजुग कर।।
आपु गए अरु तिन्हहू घालहिं। जे कहुँ सत मारग प्रतिपालहिं।।
कल्प-कल्प भरि एक-एक नरका। परहिं जे दूषहिं श्रुति करि तरका।।
जे बरनाधम तेलि कुम्हारा। स्वपच किरात कोल कलवारा।।
नारि मुई गृह संपति नासी। मूड़ मुड़ाइ होहिं संन्यासी।।
ते विप्रन्ह सन आपु पुजावहिं। उभय लोक निज हाथ नसावहिं।।
बिप्र निरच्छर लोलुप कामी। निराचार सठ वृषली स्वामी।।
सूद्र करहिं जप तप ब्रत नाना। बैठि बरासन कहहिं पुराना।।
सब नर कल्पित करहिं अचारा। जाइ न बरनि अनीति अपारा।।
भए बरन संकर कलि भिन्नसेतु सब लोग।
करहिं पाप पावहिं दुख भय रुज सोक वियोग।।
श्रुति संमत हरि भक्ति पथ संजुत बिरति विवेक।
तेहिं न चलहिं नर मोह बस कल्पहिं पंथ अनेक।।
बहु दाम संवारहिं धाम जती। बिषया हरि लीन्हि न रही बिरती।।
तपसी धनवंत दरिद्र गृही। कलि कौतुक तात न जात कही।।

कुलवंति निकारहिं नारि सती। गृह आनहिं चेरि निबेरि गती ॥
सुत मानहिं मातु पिता तब लौं। अबलानन दीख नहीं जब लौं ॥
ससुरारि पिआरि लगी जब तें। रिपुरूप कुटुंब भए तब तें ॥
नृप पाप परायन धर्म नहीं। करि दंड बिडंब प्रजा नितहीं ॥
धनवंत कुलीन मलीन अपी। द्विज चिन्ह जनेउ उघार तपी ॥
नहिं मान पुरान न वेदहि जो। हरि सेवक संत सही कलि सो।
कबि बृंद उदार दुनी न सुनी। गुन दूषक ब्रात न कोपि गुनी ॥
कलि बारहिं बार दुकाल परै। बिनु अन्न ्खी सब लोग मरै ॥
सुनु खगेस कलि कपट हठ दंभ द्वेष पाखंड।
मान मोह मारादि मद ब्यापि रहे ब्रह्मंड ॥[१३८२]

२०. रविषेण—'अभिमानोन्नतिं त्यक्त्वा प्रसादय रघूत्तमन्।
मा कलंकं स्ववंशस्य कार्षीर्योषिन्निमित्तकम् ॥'[१३८३]

तुलसी—'रिषि पुलस्ति जसु बिमल मयंका।
तेहिं ससि महुँ जनि होहु कलंका ॥'[१३८४]
'परिहरि मान मोह मद भजहु कोसलाधीस।'[१३८५]

२१. रविषेण—'क्व सौमित्रिः क्व सौमित्रिरिति गाढं समुत्सुकः।
लोकोऽपि हि समस्तो मे प्रक्ष्यति प्रेमनिर्भरः ॥
रत्नं पुरुषवीराणां हारयित्वा त्वकामहम्।
मन्ये जीवितमात्मीयं हतं निहतपौरुषः ॥
कामार्थाः सुलभाः सर्वे पुरुषस्यागमास्तथा।
विविधाश्चैव सम्बन्धा विष्टपेऽस्मिन् यथा तथा ॥
पर्यट्य पृथिवीं सर्वा स्थानं पश्यामि तन्ननु।
यस्मिन्नवाप्यते भ्राता जननी जनकोऽपि वा ॥'[१३८६]

तुलसी—'सुत बित नारि भवन परिवारा।
होहिं जाहिं जग बारहिं बारा ॥
अस बिचारि जियँ जागहु ताता।
मिलइ न जगत सहोदर भ्राता ॥
जैहउँ अवध कौन मुहु लाई।
नारि हेतु प्रिय भाइ गँवाई ॥

१३८२. मानस, ७।९७-१०१
१३८३. पद्म०, ६२।२६
१३८४. मानस, ५।२२।१
१३८५. वही, ५।३९क
१३८६. पद्म०, ६३।९, १०, १३, १४

बरु अपजस सहतेउँ जग नाहीं।
नारि हानि विशेष छति माहीं ॥'[१३८७]

२२. रविषेण—'अथवा वेत्ति नारीणां चेतसः को विचेष्टितम्।
दोषाणां प्रभवो यासु साक्षाद्वसति मन्मथः ॥
धिक्स्त्रियं सर्वदोषाणामाकरं तापकारणम्।
विशुद्धकुलजातानां पुंसां पंकं सुदुत्यजम् ॥
अभिहन्त्रीं समस्तानां बलानां रागसंश्रयाम्।
स्मृतीनां परमं भ्रंशं सत्यस्खलनखातिकाम् ॥
विघ्नं निर्वाणसौख्यस्य ज्ञानप्रभवसूदनीम्।
भस्मच्छन्नाग्निसंकाशां दर्भसूचीसमानिकाम् ॥
दृङ्मात्ररमणीयां तां निर्मुक्तमिव पन्नगः।
तस्मात् त्यजामि वैदेहीं महादुःखजिहासया ॥'[१३८८]

तुलसी—'काम क्रोध लोभादि मद प्रबल मोह कै धारि।
तिन्ह महँ अति दारुन दुखद मायारूपी नारि ॥
सुनु मुनि कह पुरान श्रुति संता। मोह बिपिन कहुँ नारि बसंता ॥
जप तप नेम जलाश्रय भारी। होइ ग्रीषम सोषइ सब नारी ॥
काम क्रोध मद मत्सर भेका। इन्हिहि हरषप्रद बरषा एका ॥
दुर्वासना कुमुद समुदाई। तिन्ह कहँ सरद सदा सुखदाई ॥
धर्म सकल सरसीरुह बृंदा। होइ हिम तिन्हहि दहइ सुख मंदा ॥
पुनि ममता जवास बहुताई। पलुहइ नारि सिसिर ऋतु पाई ॥
पाप उलूक निकर सुखकारी। नारि निबिड़ रजनी अँधियारी ॥
बुधि बल सील सत्य सब मीना। बनसी सम त्रिय कहहिं प्रबीना ॥
अवगुन मूल सूलप्रद प्रमदा सब दुख खानि।
ताते कीन्ह निवारन मुनि मैं यह जियँ जानि ॥[१३९१]

२३. रविषेण—'सुकृतस्य फलेन जन्तुरुच्चैः पदमाप्नोति सुसम्पदां निधानम्।
दुरितस्य फलेन तत्तु दुःखं कुगतिस्थं समुपैत्ययं स्वभावः ॥'[१३८९]

तुलसी—'जहाँ सुमति तहँ संपति नाना।
जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना ॥'[१३९०]

१३८७. मानस, ६।६०।४, ६
१३८८. पद्म०, ९८।६१-६५
१३८९. मानस, ३।४३-४४
१३९०. पद्म०, १२३।१७६
१३९१. मानस, ५।३९।३

परिशिष्ट

परिशिष्ट--१

पद्मपुराण के सुभाषित

१. मत्तवारणसंक्षुण्णे व्रजन्ति हरिणाः पथि।
प्रविशन्ति भटा युद्धं महाभटपुरस्सराः ॥१।१६

२. भास्वता भासितानर्थान् सुखेनालोकते जनः।
सूचीमुखविनिर्भिन्नं मणिं विशति सूत्रकम् ॥१।२०

३. व्यक्ताकारादिवर्णा वाग् लम्भिता या न सत्कथाम्।
सा तस्य निष्फला जन्तोः पापादानाय केवलम् ॥१।२३

४. वृद्धिं व्रजति विज्ञानं यशश्चरति निर्मलम्।
प्रयाति दुरितं दूरं महापुरुषकीर्तनात् ॥१।२४

५. अल्पकालमिदं जन्तोः शरीरं रोगनिर्भरम्।
यशस्तु सत्कथाजन्म यावच्चन्द्रार्कतारकम् ॥१।२५
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पुरुषेणात्मवेदिना।
शरीरं स्थास्नु कर्त्तव्यं महापुरुषकीर्तनात् ॥१।२६

६. लोकद्वयफलं तेन लब्धं भवति जन्तुना।
यो विधत्ते कथां रम्यां सज्जनानन्ददायिनीम् ॥१।२७

७. सत्कथाश्रवणौ यौ च श्रवणौ तौ मतौ मम।
अन्यौ विदूषकस्येव श्रवणाकारधारिणौ ॥१।२८

८. सच्चेष्टवर्णना वर्णा घूर्णन्ते यत्र मूर्धनि।
अयं मूर्द्धाऽन्यमूर्द्धा तु नालिकेरकरंकवत् ॥१।२९

९. सत्कीर्तनसुधास्वादसक्तं च रसनं स्मृतम्।
अन्यच्च दुर्वचोधारं कृपाणदुहितुः फलम् ॥१।३०

१०. श्रेष्ठावोष्ठौ च तावेव यौ सुकीर्तनवर्तिनौ।
न शम्बूकास्यसंभुक्तजलौकापृष्ठसन्निभौ ॥१।३१

११. दन्तास्त एव ये शान्तकथासंगमरञ्जिताः।
शेषाः सश्लेष्मनिर्वाणद्वारबन्धाय केवलम् ॥ २।३२

१२. मुखं श्रेयःपरिप्राप्तेर्मुखं मुख्यकथारतम्।
अन्यत्तु मलसम्पूर्णं दन्तकीटाकुलं विलम् ॥२।३३

१३. वदिता योऽथवा श्रोता श्रेयसां वचसां नरः।
पुमान् स एव शेषस्तु शिल्पिकल्पितकायवत् ॥१।३४

१४. गुणदोषसमाहारे गुणान् गृह्णन्ति साधवः।
क्षीरवारिसमाहारे हंसाः क्षीरमिवाखिलम् ॥१।३५

१५. गुणदोषसमाहारे दोषान् गृह्णत्यसाधवः।
मुक्ताफलानि संत्यज्य काका मांसमिव द्विपात् ॥१।३७

१६. अदोषामपि दोषाक्तां पश्यन्ति रचनां खलाः।
रविमूर्तिमिवोलूकास्तमालदलकालिकाम् ॥१।३७

१७. सरोजलागमद्वारजालकानीव दुर्जनाः।
धारयन्ति सदा दोषान् गुणबन्धनवर्जिताः ॥१।३८

१८. स्वभावमिति संचिन्त्य सज्जनस्येतरस्य च।
प्रवर्तन्ते कथाबन्ध स्वार्थमुद्दिश्य साधवः ॥१।३९

१९. सत्कथाश्रवणाद् यच्च सुखं सम्पद्यते नृणाम्।
कृतिनां स्वार्थ एवासौ पुण्योपार्जनकारणम् ॥२।४०

२०. सन्मार्गे प्रकटीकृते हि रविणा कश्चारुदृष्टिः स्खलेत् ॥१।९०३

२१. मनुष्यभावमासाद्य सुकृतं ये न कुर्वते।
तेषां करतलप्राप्तममृतं नाशमागतम् ॥२।१६७

२२. सम्प्राप्तं रक्षितं द्रव्यं भुञ्जानस्यापि नो शमः।
प्रतिवासरसंवृद्धगर्द्धाग्निपरिवर्तनात् ॥२।१७७

२३. हिंसातः संसृतेर्मूलं दुःखं संसारसंज्ञकम् ॥२।१८१

२४. प्रष्टव्या गुरवो नित्यमर्थं ज्ञातमपि स्वयम्।
स तैर्निश्चयमानीतो ददाति परमं सुखम् ॥२।२५२

२५. न विना पीठबन्धेन विधातुं सद्म शक्यते।
कथाप्रस्तावहीनं च वचनं छिन्नमूलकम् ॥३।२८

२६. साधौ तपोऽगारे व्रतालङ्कृतविग्रहे।
सर्वग्रन्थविनिर्मुक्ते दत्तं दानं महाफलम् ॥३।६९

२७. यद्यदाधीयते वस्तु दर्पणे, तस्य दर्शनम् ॥३।७२

२८. अस्मिंस्त्रिभुवने कृत्स्ने जीवानां हितमिच्छताम्।
शरणं परमो धर्मस्तस्माच्च परमं सुखम् ॥४।३५

२९. सुखार्थं चेष्टितं सर्वं तच्च धर्मनिमित्तकम्।
एवं ज्ञात्वा जना यत्नात् कुरुध्वं धर्मसङ्गमम् ॥४।३६

३०. वृष्टिर्विना कुतो मेघैः क्व सस्यं बीजवर्जितम्।
जीवानां च विना धर्मात् सुखमुत्पद्यते कथम् ॥४।३७

३१. गन्तुकामो यथा पङ्गुर्मूको वक्तुं समुद्यतः।
अन्धो दर्शनकामश्च तथा धर्माद्दृते सुखम् ॥४।३८

३२. परमाणोः परं स्वल्पं न चान्यन्नभसो महत्।
धर्मादन्यश्च लोकेऽस्मिन् सुहृन्नास्ति शरीरिणाम् ॥४।३९

३३. न कल्पते। साधूनामीदृशी भिक्षा या तदुद्देशसंस्कृता ॥४।९५

३४. प्राणा धर्मस्य हेतवः ॥४।९७

३५. अहो बत महाकष्टं जैनेश्वरमिदं व्रतम् ॥४।९९

३६. प्राप्यते सुमहद् दुःखं जन्तुभिर्भवसागरे ॥५।१२१

३७. कष्टं यैरेव जीवोऽयं कर्मभिः परितप्यते।
तान्येवोत्सहते कर्तुं मोहितः कर्ममायया ॥
आपातमात्ररम्येषु विषवद् दुःखदायिषु।
विषयेषु रतिः का वा दुःखोत्पादनवृद्धिषु ॥
कृत्वापि हि चिरं सङ्गं धने कान्तासु बन्धुषु।
एकाकिनैव कर्त्तव्यं संसारे परिवर्तनम् ॥
तावदेव जनः सर्वः प्रियत्वेनानुवर्तते।
दानेन गृह्यते यावत्सारमेयशिशुर्यथा ॥
इयता चापि कालेन को गतः सह बन्धुभिः।
परलोकं कलत्रैर्वा सुहृद्भिर्बान्धवेन वा ॥
नागभोगोपमा भोगा भीमा नरकपातिनः।
तेषु कुर्यान्नरः सङ्गं को वा यः स्यात्सचेतनः ॥
अहो परमिदं चित्रं सद्भावेन यदाश्रितान्।
लक्ष्मीः प्रतारयत्येव दुष्टत्वं किमतः परम् ॥
स्वप्ने समागमो यद्वत्तद्वद् बन्धुसमागमः।
इन्द्रचापसमानं च क्षणमात्रं च तैः सुखम् ॥
जलबुदबुदवत्कायः सारेण परिवर्जितः।
विद्युल्लताविलासेन सदृशं जीवितं चलम् ॥५।२२९-२३७

३८. महातरौ यथैकस्मिन्नुषित्वा रजनीं पुनः।
प्रभाते प्रतिपद्यन्ते ककुभो दश पक्षिणः॥
एव कुटुम्ब एकस्मिन् सङ्गमं प्राप्य जन्तवः।
पुनः स्वां स्वां प्र पद्यन्ते गतिं कर्मवशानुगाः॥५।२६५-२६६

३९. बलवद्भ्यो हि सर्वेभ्यो मृत्युरेव महाबलः।
आनीता निधनं येन बलवन्तो बलीयसा॥५।२६८

४०. फेनोर्मीन्द्रधनुःस्वप्नविद्युद्बुद्बुदसन्निभाः।
सम्पदः प्रियसम्पर्का विग्रहाश्च शरीरिणाम्॥५।२७०

४१. नास्ति कश्चिन्नरो लोके यो व्रजेदुपमानताम्।
यथायममरस्तद्वद्वयं मृत्यूज्झिता इति॥५।२७१

४२. येऽपि शोषयितुं शक्ताः समुद्रं ग्राहसङ्कुलम्।
कुर्युर्वा करयुग्मेन चूर्णं मेरुमहीधरम्॥
उद्धर्तुं धरणीं शक्ता ग्रसितुं चन्द्रभास्करौ।
प्रविष्टास्तेऽपि कालेन कृतान्तवदनं नराः॥५।२७२-२७३

४३. मृत्योर्दुर्लङ्घितस्यास्य त्रैलोक्ये वशतां गते।
केवलं व्युज्झिताः सिद्धा जिनधर्मसमुद्भवाः॥५।२७४

४४. शोकं कुर्याद्विबुद्धात्मा को नरो भवकारणम्? ५।२७६

४५. सङ्घस्य निन्दनं कृत्वा मृत्युमेति भवे भवे॥५।२९३

४६. धिगिच्छामन्तवर्जिताम्।५।३०७

४७. मधुदिग्धासिधाराया लेहने कीदृशं सुखम्।
रसनं प्रत्युतायाति शतधा यत्र खण्डनम्॥५।३११
विषयेषु तथा सौख्यं कीदृशं नाम जायते।
यत्र प्रत्युत दुःखानामुपर्युपरि सन्ततिः॥५।३१२

४८. यथा स्वजीवितं कान्तं सर्वेषां प्राणिनां तथा॥५।३२८

४९. दुर्लभं सति जन्तुत्वे मनुष्यत्वं शरीरिणाम्।
तस्मादपि सुरूपत्वं ततो धनसमृद्धता॥
ततोऽप्यार्यत्वसम्भूतिस्ततो विद्यासमागमः।
ततोऽप्यर्थज्ञता तस्माद् दुर्लभो धर्मसङ्गमः॥५।३३३-३३४

५०. परपीडाकरं वाक्यं वर्जनीयं प्रयत्नतः।
हिंसायाः कारणं तद्धि सा च संसारकारणम्॥५।३४१
तथा स्तेयं स्त्रियाः सङ्गं महाद्रविणवाच्छनम्।
सर्वमेतत्परित्याज्यं पीडाकारणतां गतम्॥५।३४२

५१. भवान्तरकृतेन तपोवलेन सम्प्राप्नुवन्ति पुरुषा मनुजेषु भोगान् ।।५।४०५

५२. दुष्कर्मसक्तमतयः परमां लभन्ते निन्दां जना इह भवे मरणात्परं च ।५।४०६

५३. पापतमसो रवितां भजध्वम् ।।५।४०६

५४. आचाराणां विघातेन कुदृष्टीनां च सम्पदा ।
धर्मं ग्लानिपरिप्राप्तमुच्छ्रयन्ते जिनोत्तमाः ।।
ते तं प्राप्य पुनर्धर्मं जीवा बान्धवमुत्तमम् ।
प्रपद्यन्ते पुनर्मार्गं सिद्धस्थानाभिगामिनः ।।५।२०६-२०७

५५. कालप्राप्तं नयं सन्तो युञ्जाना यान्ति तुङ्गताम् ।।६।२५

५६. स्वभाव एव कन्यानां यत्परागारसेवनम् ।।६।४३

५७. शुद्धाभिजनता मुख्या गुणानां वरभाजिनाम् ।।६।४६

५८. स्वयमेव तु कन्यायै रोचते क्रियतेऽत्र किम् ? ६।५०

५९. हा कष्टं क्षुद्रशक्तीनां मनुष्याणां धिगुन्नतिम् ।।६।१४४

६०. मनोज्ञं प्रायशो रूपं धीरस्यापि मनोहरम् ।।६।१६७

६१. कान्ताभिप्रायसामर्थ्यात् सुरूपमपि नेष्यते ।।६।१७१

६२. मङ्गलं यस्य यत्पूर्वं पुरुषैः सेवितं कुले ।
प्रत्यवायेन सम्बन्धो निरासे तस्यं जायते ।।
क्रियमाणं तु तद्भक्त्या करोति शुभसम्पदम् ।।६।१८६

६३. अभिमानेन तुङ्गानां पुरुषाणामिदं व्रतम् ।
नमयन्त्येव यच्छत्रुं द्रविणे विगताशयाः ।।६।१९५

६४. प्रायशो विषवल्लीव दृष्टा पूर्वैर्नृपद्युतिः ।।६।२००

६५. पूर्वोपार्जितपुण्यानां पुरुषाणां प्रयत्नतः ।
संजातासु न लक्ष्मीषु भावः सञ्जायते महान् ।।
यथैव ताः समुत्पन्नास्तेषामल्पप्रयत्नतः ।
तथैव त्यजतामेषां पीडा तासु न जायते ।।
तथा कथञ्चिदासाद्य सन्तो विषयजं सुखम् ।
तेषु निर्वेदमागत्य वाञ्छन्ति परमं पदम् ।।६।२०१-२०३

६६. यत्नोपकरणैः साध्यमात्मायत्तं निरन्तरम् ।
महदन्तेन निर्मुक्तं सुखं तत् को न वाञ्छति ? ६।२०४

६७. लक्षणं यस्य यल्लोके स तेन परिकीर्त्यते ।।६।२०८

६८. तपो हि श्रम उच्यते ।।६।२११

६९. परां हि कुरुते प्रीतिं पूर्वाचरितसेवनम् ।।६।२१६

७०. आचार्ये म्रियमाणे यस्तिष्ठत्यन्तिकगोचरे ।

करोत्याचार्यकं मूढ़: शिष्यतां दूरमुत्सृजन् ।।
नासौ शिष्यो न चाचार्यो निर्धर्म: स कुमार्गग: ।
सर्वतो भ्रंशमायात: स्वचारात्साधुनिन्दित: ।।६।२६४-२६५

७१. अहो परममाहात्म्यं तपसो भुवनातिगम् ।।६।२६७

७२. मार्गोऽयमिति यो गच्छेद् दिशामज्ञाय मोहवान् ।
प्राधीयसापि कालेन नेष्टं स्थानं स गच्छति ।।६।२७८

७३. धर्मस्य हि दया मूलं तस्या मूलमहिंसनम् ।।६।२८६

७४. अन्य: कस्तस्य कथ्येत धर्मस्य परमो गुण: ।
त्रिलोकशिखरं येन प्राप्यते सुमहासुखम् ।।६।२९५

७५. अयं (मनुष्यभव:) हि दुर्लभो लोके धर्मोपादानकारणम् ।।६।३७६

७६. वाञ्छिते हि वरत्वेन दृष्टिश्चञ्चलतां व्रजेत् ।।६।३९४

७७. बीजं युद्धस्य योषित: ।।६।४५०

७८. दारजातं पराभवम् ।।६।४६३

७९. शोको हि पण्डितैर्दृष्ट: पिशाचो भिन्ननामक: ।।६।४८०

८०. कर्मणां विनियोगेन वियोग: सह बन्धुना ।
प्राप्ते तत्रापरं दु:खं शोको यच्छति सन्ततम् ।।६।४८१

८१. अविधाय नरा: कार्यं ये गर्जन्ति निरर्थकम् ।
महान्तं लाघवं लोके शक्तिमन्तोऽपि यान्ति ते ।।६।५४६

८२. प्रेक्षापूर्वप्रवृत्तेन जन्तुना सप्रयोजन: ।
व्यापार: सततं कृत्य: शोकश्चायमनर्थक: ।।६।४८१

८३. प्रत्यागम: कृते शोके प्रेतस्य यदि जायते ।
ततोऽन्यानपि संगृह्य विदधीत जन: शुचम् ।।६४८३

८४. शोक: प्रत्युत देहस्य शोषीकरणमुत्तमम् ।
पापानामग्रमुद्रेको महामोहप्रवेशन: ।।६।४८४

८४. (अ) नानुबन्धं (संस्कारं) त्यजत्यरि: ।।

८४. (आ) बलीयसि रिपौ गुप्तिं प्राप्य कालं नयेद् बुध: ।
तत्र तावदवाप्नोति न निकार (पा. विकार)-मरातिकम् ।।६४८८

८४. (इ) प्राप्य तत्र स्थित: कालं कुतश्चिद् द्विगुणं रिपुम् ।
साधयेन्नहि भूतानामेकस्मिन् सर्वदा रति: ।।६।४८९

८४. (ई) भग्ना: किलानुसर्तव्या: शत्रवो न ।।६।४९६

८४. (उ) अनुकम्पा हि कर्त्तव्या महता दु:खिते जने ।।६।४९८

८४. (ऊ) पृष्ठस्य दर्शनं येन कारितं कातरात्मना।
जीवन्मृतस्य तस्यान्यत् क्रियतां किं मनस्विना ? ६।४६६

८४. (ऋ) मनुष्यजन्म चात्यन्तदुर्लभं भवसङ्कटे ॥६।५०३

८५. अभिप्रेत्य वधं शत्रोरारुह्य जयिनं द्विपम्।
प्रस्थितः पौरुषं बिभ्रत्कथं भूयो निवर्त्तते ? ७।५०

८६. भटः किं विनिवर्त्तते ? ७।५२

८७. 'असौ पलायितो भीतो वराक' इतिभाषितम्।
कथमाकर्णयद्धीरो जनताया सुचेतसः ॥ ७।५६

८८. यत्नेन महतान्विष्य हन्तव्या लोककण्टकाः। ७।६६

८९. पक्षपातो भवत्येव योगिनापि सज्जने। ७।१६०

९०. ज्ञातव्येषु हि नारीणां प्रमाणं प्रियमानसाम्। ७।१८४

९१. भवेदमृतवल्लीतो विषस्य प्रसवः कथम् ? ७।१९७

९२. मूलं हि कारणं कर्म स्वरूपविनियोजने।
निमित्रमात्रमेवास्य जगतः पितरौ स्मृतौ। ७।१९९

९३. हेतुसमं फलम्। ७ २०२

९४. वितथं नैव जायते यतिभाषितम्। ७।२२०

९५. अवाप्तं मरणं पुंसा स्वस्थानभ्रंशतो वरम्।७।२४०

९६. कुर्वन्त्याराधनं यत्नात्साधवस्तपसो यथा।
आराधनं तथा कृत्यं विद्यायाः खग-गोत्रजैः ॥ ७।२५४

९७. कापुरुषा एव स्खलन्ति प्रस्तुताशयात्। ७।२८०

९८. स्वसरि प्रेम हि प्रायः पितृभ्यां सोदरे परम्। ७।३०३

९९. विद्या हि साध्यते पुत्राः ! स्वजनानां समृद्धये ॥ ७।३०४

१००. पुत्रा हि गदिताः पित्रोः प्ररोहा इव धारकाः। ७।३०६

१०१. निश्चयात् किं न लभ्यते ? ७।३१५

१०२. निश्चयोऽपि पुरोपात्ताल्लभ्यते कर्मणः सितात्।
कर्मण्येव हि यच्छन्ति विघ्नं दुःखानुभाविनः ॥ ७।३१६

१०३. काले दानविधि पात्रे क्षेमे चायुःस्थिति क्षयम्।
सम्यग्बोधिफलां विद्यां नाभव्यो लब्धुमर्हति ॥ ७।३१७

१०४. कस्यचिद्दशभिर्वर्षैर्विद्या मासेन कस्यचित्।
क्षणेन कस्यचित्सिद्धि यान्ति कर्मानुभावतः ॥७।३१८

१०५. धरण्यां स्वपितु त्यागं करोतु चिरमन्धसः।
मज्जत्वप्सु दिवानक्तं गिरेः पततु मस्तकात् ॥

विधत्तां पञ्चतायोग्यां क्रियां विग्रहशोषिणीम् ।
पुण्यैर्विरहितो जन्तुस्तथापि न कृती भवेत् ।। ७।३१९-३२०

१०६. अन्नमात्रं क्रियाः पुंसां सिद्धेः सुकृतकर्मणाम् ।
अकृतोत्तमकर्माणो यान्ति मृत्युं निरर्थकाः ।। ७।३२१

१०७. सर्वादरान्मनुष्येण तस्मादाचार्यसेवया ।
पुण्यमेव सदा कार्यं सिद्धिः पुण्यैर्विना कुतः ।। ७।३२२

१०८. पूर्वभवार्जितेन पुरुषाः पुण्येन यान्ति श्रियम् ।। ७।३९४

१०९. अग्नेः किं न कणः करोति विपुलं भस्म क्षणात् काननम् ? ७।३९४

११०. मत्तानां करिणां भिनत्ति निवहं सिंहस्य वा नार्भकः ? ७।३९४

१११. बोधं ह्याशु कुमुद्वतीषु कुरुते शीतांशुरोचिर्लवः
सन्तापं प्रणुदन् दिवाकरकरैरुत्पादितं प्राणिनाम् ।
निद्राविद्रुतिहेतुभिश्च समये जीमूतमालानिभं
ध्वान्तं दूरमपाकरोति किरणैरुद्योतमात्रो रविः ।। ७।३९५

११२. कन्यानां यौवनारम्भे सन्तापाग्निसमुद्भवे ।
इन्धनत्वं प्रपद्यन्ते पितरौ स्वजनैः समम् ।।८।६
एवमर्थं ददत्यस्या जन्मनोऽनन्तरं बुधाः ।
लोचनाञ्जलिभिस्तोयं दुःखाकुलितचेतसः ।।८।७

११३. कन्यानां देहपालने ।
जनन्य उपयुज्यन्ते पितरो दानकर्मणि ।।८।१०

११४. भर्तृछन्दानुवर्तिन्यो भवन्ति कुलबालिकाः ।।८।११

११५. प्रपद्यन्ते परिभ्रंशं कुलज्ञा नोपचारतः ।।८।३१

११६. कं न कुर्वन्ति सज्जनाः दर्शनोत्सुकम् ? ८।४८

११७. सता हि कुलविद्येयं यन्मनोहरभापणम् ।।८।४९

११८. प्रतिकूलसमाचारा न भवन्त्येव साधवः ।।८।५१

११९. नीयन्ते विषयैः प्रायः सत्त्ववन्तोऽपि वश्यताम् ।।८।७३

१२०. सह्यते तापत्रपा तावद् दुःसहाः स्मरवेदना ।।८।१०७

१२१. शशाङ्केन विमुक्तानां ताराणां काभिरूपता ? ।।८।११०

१२२. एकाकी पृथुकः सिंहः प्रस्फुरत्सितकेसरः ।
किं वा नानयते ध्वंसं यूथं समददन्तिनाम् ।।८।१२७

१२३. आनन्दं पुत्रतो नान्यत् प्रीतेरायतनं परम् ।।८।१५७

१२४. तिरश्चां मानुषाणां च प्रायो भेदोऽयमेव हि ।
कृत्याकृत्यं न जानन्ति यदेकेऽन्ये तु तद्विदः ।।८।१६९

१२५. विस्मरन्ति च नो पूर्वं वृत्तान्तं दृढ़मानसाः।
जातायामपि कस्याञ्चिद्भूतौ विद्युत्समद्युतौ ॥८।१७०

१२६. को हि स्वकुलनिर्मूलध्वंसहेतुक्रियां भजेत् ॥८।१७१

१२७. हृदयस्थेन नाथेन पिशाचेनेव चोदिताः।
दूता वाचि प्रवर्तन्ते यन्त्रदेहा इवावशाः ॥८।१८८

१२८. अकीर्तिरुद्रवत्युर्वीलोके क्षुद्रवधे कृते ॥८।१८९

१२९. नहि गण्डूपदान् हन्तुं वैनतेयः प्रवर्तते ॥८।१९०

१३०. धिग् भृत्यं दुःखनिर्मितम्! ८।१९२

१३१. धिक् कष्टं संसारं दुःखभाजनम्।
चक्रवत्परिवर्तन्ते प्राणिनो यत्र योनिषु ॥८।२२०

१३२. कृत्वा प्राणिवधं जन्तुर्मनोज्ञविषयाशया।
प्रयाति नरकं भीमं सुमहादुःखसङ्कुलम् ॥८।२२४

१३३. यथैकदिवसं राज्यं प्राप्तं संवत्सरं वधम्।
प्राप्नोति सदृशं तेन निश्चये विषयैः सुखम् ॥८।२२५

१३४. चक्षुःपक्ष्मपुटासङ्गक्षणिकं ननु जीवितम् ॥८।२२६

१३५. मत्तस्तम्वेरमारूढैर्मण्डलाग्रकरैर्नरैः।
क्रियते मारणं शत्रोर्न तु धर्मनिवेदनम् ॥८।२२८

१३६. कुर्वाणो हि निजं कर्म पुरुषो नैव लज्जते ॥८।२३०

१३७. वीर्यमक्षतकायानां शूराणां नहि वर्धते ॥८।२३३॥

१३८. वीराणां शत्रुभङ्गेन कृतत्वं न धनादिना ॥८।२४२

१३९. एतदर्थं न वाञ्छन्ति सन्तो विषयजं सुखम्।
यदेतदध्रुवं स्तोकं सान्तरायं सदुःखकम् ॥८।२४६

१४०. निमित्तमात्रतान्येषामसुखस्य सुखस्य वा।
बुधास्तेभ्यो न कुप्यन्ति संसारस्थितिवेदिनः ॥८।२४८

१४१. भव्यः कस्य न सम्मतः? ॥८।२९६

१४२. मृदुं पराभवत्येष लोकः प्रखलचेष्टितः।
उद्धृत्याप्यसुखं कर्त्तुं नाभिवाञ्छति कर्कशे ॥८।३३२

१४३. परकार्येषु यो रतः।
कार्ये तस्य कथं स्वस्मिन्नौदासीन्यं भविष्यति? ८।३७७

१४४. विविधरत्नसमागमसम्पदः प्रबलशत्रुसमूलविमर्दनम्।
सकलविष्टपगामि यशः सितं भवति निर्मितनिर्मलकर्मणाम् ॥८।५३०

१४५. रिपव उग्रतरा विषयाह्वया अपनयन्ति भुवस्त्रितये स्मृतिम् ।
वहिरवस्थितिशत्रुगणः पुनः सततमानमते यदनन्तरम् ॥८।५३१

१४६. इति विचिन्त्य न युक्तमुपासितुं विषयशत्रुगणं पुरुचेतसः ॥
अमरमेति जनस्तमसा ततं न तु रवेः किरणैरवभासितम् ॥८।३२

१४७. स्त्रीणां स्वाभाविकी त्रपा ॥९।३५

१४८. कन्या नाम प्रभो ! देया परस्मायेव निश्चयात् ।
उत्पत्तिरेव तासां हि तादृशी सार्वलौकिकी ॥९।३२

१४९. हिंसित्वा जन्तुसंघातं नितान्तं प्रियजीवितम् ।
दुःखं कृतसुखाभिख्यं प्राप्यते तेन को गुणः ? ॥९।८१

१५०. अरघट्टघटीयन्त्रसदृशाः प्राणधारिणः ।
शश्वद्भवमहाकूपे भ्रमन्त्यत्यन्तदुःखिताः ॥९।८२

१५१. क्व धर्मः क्व च संक्रोधः ? ॥१०।१३२

१५२. इन्द्राणामपि सामर्थ्यमीदृशं नाथ नेक्ष्यते ।
यादृक् तपःसमृद्धानां मुनीनामल्पयत्नजम् ॥९।१६३

१५३. पुण्यवन्तो महासत्त्वा मुक्तिलक्ष्मीसमीपगाः ।
तारुण्ये विषयांस्त्यक्त्वा स्थिता ये मुक्तिवर्त्मनि ॥९।१७२

१५४. जिनवन्दनया तुल्यं किमन्यद्विद्यते शुभम् ? ॥९।२०१

१५५. जिनेन्द्रवन्दनातुल्यं कल्याणं नैव विद्यते ॥९।२०२

१५६. ददाति परिनिर्वाणसुखं या समुपासिता ।
जिननत्या तया तुल्यं न भूतं न भविष्यति ॥९।२०६

१५७. असाध्यं जिनभक्तेर्यत्साधु तन्नैव विद्यते ॥९।२०५

१५८. आस्तां तावदिदं स्वल्पं व्याघाति भवजं सुखम् ।
मोक्षजं लभ्यते भक्त्या जिनानामुत्तमं सुखम् ॥९।२०७

१५९. एकया दशया कस्य कालो गच्छति सज्जन !
विपदोऽनन्तरा सम्पत् सम्पदोऽनन्तरा विपत् ॥९।२११

१६०. धिङ्मनोभवदूषितम् ! ॥१०।११३

१६१. महेच्छा हि तुष्यन्त्यानतिमात्रतः ॥१०।२१

१६२. वलानां हि समस्तानां वलं कर्मकृतं परम् ॥१०।२६

१६३. प्रायो हि सोदरस्नेहात् परः स्नेहो न विद्यते ॥१०।३२

१६४. पराभिभवमात्रेण क्षत्रियाणां कृतार्थता ॥१०।१४७

१६५. स्वर्गं धिक् च्युतियोगेन धिग् देहं दुःखभाजनम् ॥१०।६३

१६६. प्रवयसां नृणाम् । प्रव्रज्या शोभते ॥१०।१६५॥

१६७. नैव मृत्युर्विवेकवान् । शरद्घन इवाकस्माद्देहो नाशं प्रपद्यते ।।१०।६६६

१६८. येन केनचिदुदात्तकर्मणा कारणेन रिपुणेतरेण वा ।
निर्मितेन समवाप्यते मतिः श्रेयसी न तु निकृष्टकर्मणा ।।१०।१७७

१६९. यः प्रयोजयति मानसं शुभे यस्य तस्य परमः स बान्धवः ।
भोगवस्तुनि तु यस्य मानसं यः करोति परमारि कस्य सः ।।१०।१७८

१७०. निसर्गोऽयं यदाप्तस्य पुरः शोको विवर्द्धते । ११।३०

१७१. प्राणनाथपरित्यक्ता का वा स्त्री सुखमृच्छति ? ११।५४

१७२. सत्यं वदन्ति राजानः पृथिवीपालनोद्यताः ।
ऋषयस्ते हि भाष्यन्ते ये स्थिता जन्तुपालने ।। ११।५८

१७३. यतो धर्मस्ततो जयः ।। ११।७४

१७४. हिंसायज्ञमिमं घोरमाचरन्ति न ये जनाः ।
दुर्गतिं ते न गच्छन्ति महादुःखविधायिनीम् ।। ११।१०४

१७५. कष्टं पश्यत नर्त्यन्ते कर्मभिर्जन्तवः कथम् ? ११।१२३

१७६. यथा हि छर्दितं नान्नं भुज्यते मानुषैः पुनः ।
तथा त्यक्तेषु कामेषु न कुर्वन्ति मतिं बुधाः ।। ११।१२६

१७७. दह्यमाने यथागारे कथञ्चिदपि निःसृतः ।
तत्रैव पुनरात्मानं प्रक्षिपेन्मूढमानसः ।। ११।१३२
यथा च विवरं प्राप्य निष्क्रान्तः पञ्जरात् खगः ।
निवृत्य प्रविशेद् भूयस्तत्रैवाज्ञानचोदितः ।। ११।१३३
तथा प्रव्रजितो भूत्वा यो यातीन्द्रियवश्यताम् ।
निन्दितः स भवेल्लोके न च स्वार्थं समश्नुते ।। ११।१३४

१७८. प्राणिनो ग्रन्थसंगेन रागद्वेषसमुद्भवः ।
रागात् सञ्जायते कामो द्वेषाज्जन्तुविनाशनम् ।। ११।१३६
कामक्रोधाभिभूतस्य मोहेनाक्रम्यते मनः ।
कृत्याकृत्येषु मूढस्य मतिर्न स्याद्विवेकिनी ।। ११।१३७
यत्किञ्चित्कुर्वतस्तस्य कर्मोपार्जयतोऽशुभम् ।
संसारसागरे घोरे भ्रमणं न निवर्तते ।। ११।१३८
एतान् संसर्गजान् दोषान् विदित्वाशु विपश्चितः ।
वैराग्यमधिगच्छन्ति नियम्यात्मानमात्मना ।। ११।१३९

१७९. अरण्यान्यां समुद्रे वा स्थितं वारातिपञ्जरे ।
स्वयंकृतानि कर्माणि रक्षन्ति न परो जनः ।। ११।१४७

यः पुनः प्राप्तकालः स्याज्जनन्यङ्कगतोऽपि सः ।
म्रियते मृत्युना जीवः स्वकर्मवशतां गतः ॥ ११।१४८

१८०. अशुद्धैः कर्तृभिः प्रोक्तं वचनं स्यान्मलीमसम् ॥ ११।१६६

१८१. सति सर्वज्ञतायोगे वक्ता हि सुतरां भवेत् ॥ ११।१८५

१८२. गुणैर्वर्णव्यवस्थितिः ॥ ११।१९८

१८३. ब्राह्मण्यं गुणयोगेन न तु तद्योनिसम्भवात् ॥ ११।२००

१८४. न जातिर्गर्हिता काचिद् गुणाः कल्याणकारणम् । ११।२०३

१८५. विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥ ११।२०४

१८६. शास्त्रमुच्यते । तद्धि यन्मातृवच्छास्ति सर्वस्मै जगते हितम् । ११।२०९

१८७. प्रायश्चित्तं च निर्दोषे वक्तुं कर्मणि नोचितम् ॥ ११।२१०

१८८. किञ्चिन्न कृत्यं प्राणिहिंसया ॥ ११।३००

१८९. अज्ञानेन हि जन्तूनां भवत्येव दुरीहितम् ॥ ११।३०५

१९०. पुण्यसम्पूर्णदेहानां सौभाग्यं केन कथ्यते ? ११।३७१

१९१. नाम श्रुत्वा प्रणमति जनः पुण्यभाजां नराणाम् ॥ ११।३८३

१९२. पुण्यबन्धे यतध्वम् ॥ ११।३८३

१९३. ज्येष्ठो व्याधिसहस्राणां मदनो मतिसूदनः ।
येन सम्प्राप्यते दुःखं नरैरक्षतविग्रहैः ॥ १२।३३

१९४. प्रधानं दिवसाधीशः सर्वेषां ज्योतिषां यथा ।
तथा समस्तरोगाणां मदनो मूर्ध्नि वर्तते ॥ १२।३४

१९५. आमगर्भेषु दुःखानि प्राप्नुवन्ति चिरं जनाः ।
ये शरीरस्य कुर्वन्ति स्वस्याविधिनिपातनम् ॥ १२।४८

१९६. अहो कष्टः संसारः सारवर्जितः ॥ १२।५०

१९७. पृथक् पृथक् प्रपद्यन्ते सुखदुःखकरीं गतिम् ।
जीवाः स्वकर्मसंपन्नाः कोऽत्र कस्य सुहृज्जनः ? १२।५१

१९८. विजिगीषुत्वं क्रियते दीर्घदर्शिना ॥ १२।९४

१९९. समानं ख्याति येनातः सखिशब्दः प्रवर्तते ॥ १२।१००

२००. सख्यो हि जीवितालम्बनं परम् । १२।१०१

२०१. विधवा भर्तृसंयुक्ता प्रमदा कुलवालिका ।
वेश्या च रूपयुक्तापि परिहार्या प्रयत्नतः ॥ १२।१२४

२०२. लोकद्वयपरिभ्रष्टः कीदृशो वद मानवः ? १२।१२५

२०३. नरान्तरमुखक्लेदपूर्णेऽन्याङ्गविमर्दिते।
उच्छिष्टभोजने भोक्तुं (भद्रे !) वाञ्छति को नरः ? ८।१२६

२०४. उदारा भवन्ति हि दयापराः ॥ १२।१३१

२०५. प्राणिनां रक्षणे धर्मः श्रूयते प्रकटो भुवि ॥ १२।१३२

२०६. उत्तिष्ठतो मुखं भंक्तुमधरेणापि शक्यते।
कण्टकस्यापि यत्नेन परिणाममुपेयुषः ॥ १२।१६०

२०७. उत्पत्तावेव रोगस्य क्रियते ध्वसनं सुखम्।
व्यापी तु बद्धमूलः स्यादूर्ध्वं स क्षेत्रियोऽथवा ॥ १२।१६१

२०८. जायते विफलं कर्माप्रेक्षापूर्वकारिणाम् ॥ १२।१६५

२०९. भवत्यर्थस्य संसिद्ध्यै केवलं च न पौरुषम्।
कर्षकस्य विना वृष्ट्या का सिद्धिः कर्मयोगिनः ? १२।१६०

२१०. समानमहिमानानां पठतां च समादरम्।
अर्थभाजो भवन्त्येके नापरे कर्मणां वशात् ॥ १२।१६७

२११. प्रकृष्टवयसां पुंसां धीर्यात्येवाथवा क्षयम् ॥ १२।१७२

२१२. हतानेककुरंगं किं शबरो हन्ति नो हरिम् ॥ १२।१७६

२१२(क). संग्रामे शस्त्रसम्पातजातज्ज्वलनजालके।
वरं प्राणपरित्यागो न तु प्रतिनरानतिः ॥ १२।१७७

२१३. प्राणानभिमुखीभूता मुञ्चन्ति न तु सायकान् ॥ १२।२०४

२१४. नखेन प्राप्यते छेद्यं वस्तु यत्स्वल्पयत्नतः।
व्यापारः परशोस्तत्र ननु (तात !) निरर्थकः ॥ १२।२२८

२१५. तन्दुलेषु गृहीतेषु ननु शालिकलापतः।
त्यागस्तुषपलालस्य क्रियते कारणाद्विना ॥ १२।३५२

२१६. धिगतिचपलं मानुषसुखम्। १२।३७५

२१७. रविरुचिकरं यान्तु सुकृतम् ॥ १२।३७६

२१८. परगर्वापसादं हि समीहन्ते नराधिपाः ॥१३।४

२१९. (किन्तु) मातेव नो शक्या त्यक्तुं जन्मवसुन्धरा।
सा हि क्षणाद्वियोगेन कुरुते चित्तमाकुलम् ॥ १३।२८

२२०. जन्मभूमेः किमुच्यताम् ? १३।३०

२२१. धिग् विद्यागोचरैश्वर्यं विलीनं यदिति क्षणात्।
शारदानामिवाब्दानां वृन्दमत्यन्तमुन्नतम् ॥१३।४०

२२२. अथवा कर्मणामेतद्वैचित्र्यं कोऽन्यथा नरः।
कर्तुं शक्नोति तेषां हि सर्वमन्यद्बलाधरम् ॥१३।४२

२२३. कर्मणामुचितं तेषां जायते प्राणिनां फलम् ॥१३।६८

२२४. हेतुना न विना कार्यं भवतीति किमद्भुतम् ? १३।६९

२२५. लोकत्रयेऽपि तन्नास्ति तपसा यन्न साध्यते ।
बलानां हि समस्तानां स्थितं मूर्ध्नि तपोबलम् ॥१३।९२

२२६. न सा त्रिदशनाथस्य शक्तिः कान्तिर्द्युतिर्धृतिः ।
तपोधनस्य या साधोर्यथाभिमतकारिणः ॥१३।९३

२२७. विधाय साधुलोकस्य तिरस्कारं जना महत् ।
दुःखमत्र प्रपद्यन्ते तिर्यक्षु नरकेषु च ॥१३।९४

२२८. मनसापि हि साधूनां पराभूतिं करोति यः ।
तस्य सा परमं दुःखं परत्रेह च यच्छति ॥१३।९५

२२९. यस्त्वाक्रोशति निर्ग्रन्थं हन्ति वा क्रूरमानसः ।
तत्र किं शक्यते वक्तुं जन्तौ दुष्कृतकर्मणि ॥१३।९६

२३०. कायेन मनसा वाचा यानि कर्माणि मानवाः ।
कुर्वते तानि यच्छन्ति निकचानि फलं ध्रुवम् ॥१३।९७

२३१. साधोः सङ्गमनाल्लोके न किञ्चिद्दुर्लभं भवेत् ।
बहुजन्मसु न प्राप्ता बोधिर्येनाधिगम्यते ॥१३।१०१

२३२. प्रायेण महतां शक्तिर्यादृशी रौद्रकर्मणि ।
कर्मण्येवं विशुद्धेऽपि परमा चोपजायते ॥१३।१०८

२३३. स्तोकमपीह न चाद्भुतमस्ति न्यस्य समस्तपरिग्रहसङ्गम् ।
यत्क्षणतो दुरितस्य विनाशं ध्यानबलाज्जनयन्ति बृहन्तः ॥१३।१११

२३४. अर्जितमत्युरुकालविधानादिन्धनराशिमुदारमशेषम् ।
प्राप्य परं क्षणतो महिमानं किं न दहत्यनिलः कणमात्रः ॥१३।११२

(चतुर्दश पर्व में अनन्तबल केवली का उपदेश है। उसमें प्रायः विचारात्मक पद्य ही हैं जिन्हें धार्मिक सुभाषित कहा जा सकता है। उनमें कुछ यहाँ दिये जा रहे हैं।)

२३५. सुप्तमेतेन जीवेन स्थलेऽम्भसि गिरौ तरौ ।
गहनेषु च देशेषु भ्राम्यता भवसंकटे ॥१४।३६

२३६. तिलमात्रोऽपि देशोऽसौ नास्ति यत्र न जन्तुना ।
प्राप्तं जन्म विनाशो वा संसारावर्तपातिना ॥१४।३८

२३७. सर्वं तु दुःखमेवात्र सुखं तत्रापि कल्पितम् ॥१४।४६

२३८. कृत्वा चतुर्गतौ नित्यं भवे भ्राम्यन्ति जन्तवः।
अरघट्टघटीयन्त्रसमानत्वमुपागताः ॥१४।५०

२३९. सम्यग्दर्शनशक्त्या च त्रायन्ते मुनयो जनान् ॥१४।५५

२४०. दर्शनेन विशुद्धेन ज्ञानेन च यदन्वितम्।
चारित्रेण च तत्पात्रं परमं परिकीर्तितम् ॥१४।५६

२४१. दानं निन्दितमप्येति प्रशंसां पात्रभेदतः।
शुक्तिपीतं यथा वारि मुक्तीभवति निश्चयम् ॥१४।७७

२४२. अन्तरङ्गं हि संकल्पः कारणं पुण्यपापयोः।
विना तेन बहिर्दानं वर्षः पर्वतमूर्धनि ॥१४।७९

२४३. वाणिज्यसदृशो धर्मस्तत्रान्वेष्याल्पभूरिता।
बहुना हि पराभूति क्रियतेऽल्पस्य वस्तुनः ॥१४।९१

२४४. यथा विषकणः प्राप्तः सरसीं नैव दुष्यति।
जिनधर्मोद्यतस्यैवं हिंसालेशो वृथोद्भवः ॥१४।९२

२४५. आशापाशवशा जीवा मुच्यन्ते धर्मबन्धुना ॥१४।१०२

२४६. नैव किञ्चिदसाध्यत्वं धर्मस्य प्रतिपद्यते ॥१४।१२५

२४७. सारस्त्रिभुवने धर्मः सर्वेन्द्रियसुखप्रदः।
क्रियते मानुषे देहे ततो मनुजता परा ॥१४।१५५

२४८. तृणानां शालयः श्रेष्ठाः पादपानां च चन्दनाः।
उपलानां च रत्नानि भवानां मानुषो भवः ॥१४।१५६

२४९. पतितं तन्मनुष्यत्वं पुनर्दुर्लभसङ्गमम्।
समुद्रसलिले नष्टं यथा रत्नं महागुणम् ॥१४।१५९

२५०. इहैव मानुषे लोके कृत्वा धर्मं यथोचितम्।
स्वर्गादिषु प्रपद्यन्ते सर्वं प्राणभृतः फलम् ॥१४।१६०

२५१. न शीलं न च सम्यक्त्वं न त्यागः साधुगोचरः।
यस्य तस्य भवाम्भोधितरणं जायते कथम् ॥१४।२२९

२५२. संसारसागरे भीमे रत्नद्वीपोऽयमुत्तमः।
यदेतन्मानुषं क्षेत्रं तद्धि दुःखेन लभ्यते ॥१४।२३४

२५३. यथात्र सूत्रार्थं कश्चित् संचूर्णयेन्मणीन्।
विषयार्थं तथा धर्मरत्नानां चूर्णको जनः ॥१४।१३६

२५४. स्वल्पं स्वल्पमपि प्राज्ञैः कर्त्तव्यं सुकृतार्जनम्।
पतद्भिर्बिन्दुभिर्जाता महानद्यः समुद्रगाः ॥१४।२४४

२५५. वर्जनीया निशाभुक्तिरनेकापायसंगता ॥१४।३०८

२५६. धर्मो मूलं सुखोत्पत्तेरधर्मो दुःखकारणम् ।
इति ज्ञात्वा भजेद्धर्ममधर्मं च विवर्जयेत् ॥१४।३१०

२५७. आगोपालाङ्गनं लोके प्रसिद्धिमिदमागतम् ।
यथा धर्मेण शर्मेति विपरीतेन दुःखितम् ॥१४।३११

१५८. हुताशनशिखा पेया बद्धव्यो वायुरंशुके ।
उत्क्षेप्तव्यो धराधीशो निर्ग्रन्थत्वमभीप्सता ॥१४।३६३

२५९. भवन्ति कर्माणि यदा शरीरिणां प्रशान्तियुक्तानि विमुक्तिभाविनाम् ।
तदोपदेशं परमं गुरोर्मुखादवाप्नुवन्ति प्रभवं शुभस्य ते ॥१४।३८०

२६०. अत्यन्तव्याकुलप्रायः कन्यादुःखं मनस्विनाम् ॥१५।२३

२६१. गमिष्यति पतिं श्लाघ्यं रमयिष्यति तं चिरम् ।
भविष्यत्युज्झिता दोषैरतिचिन्ता नृणां सुता ॥१५।२४

२६२. स्त्रीहेतोः किं न वेष्यते ? १५।३५

२६३. अथवा वचनज्ञानमस्पष्टमुपजायते ॥१५।५२

२६४. हताशं धिगनङ्गकम् ॥१५।१०१

२६५. मृदुचित्ताः स्वभावेन भवन्ति किल योषितः ॥१५।११२

२६६. अथवा सर्वकार्येषु साधनीयेषु विष्टपे ।
मित्रं परममुज्झित्वा कारणं नान्यदीक्ष्यते ॥१५।११०

२६७. कुटुम्वी क्षितिपालाय, गुरुवेऽन्तेवसन्, प्रिया ।
पत्यै, वैद्याय रोगार्तो, मात्रे शैशवसङ्गतः॥१५।१२२
निवेद्य मुच्यते दुःखाद्यथात्यन्तपुरोरपि ।
मित्रायैवं नरः प्राज्ञः ॥१५।१२३

२६८. जीवितं ननु सर्वस्यादिष्टं सर्वशरीरिणाम् ।
सति तत्रान्यकार्याणामात्मलाभस्य सम्भवः ॥१५।१२७

२६९. श्लाघ्यसम्वन्धजस्तोषो वधूनामभवत्परः ॥१५।१५१

२७०. इतरस्यापि नो युक्तं कर्तुं नारीविपादनम् ॥१५।१७३

२७१. विचित्रा चेतसो वृत्तिर्जनस्यात्र न कुप्यते ॥१५।१७५

२७२. सन्देहविषमावर्त्ता दुर्भावग्रहसङ्कुला ।
दूरतः परिहर्तव्या पररक्ताङ्गनापगा ॥१५।१७९

२७३. कुभावगहनात्यन्तं हृषीकव्यालजालिनी ।
बुधेन नार्यरण्यानी सेवनीया न जातुचित् ॥१५।१८०

२७४. किं राजसेवनं शत्रुसमाश्रयसमागमम् ।
श्लथं मित्रं स्त्रियं चान्यसक्तां प्राप्य कुतः सुखम् ? १५।१८१

२७५. इष्टान् बन्धून् सुतान् दारान् बुधा मुञ्चन्त्यसत्कृताः ।
पराभवजलाध्माताः क्षुद्रा नश्यन्ति तत्र तु ॥१५।१८२

२७६. मदिरारागिणं वैद्यं द्विपं शिक्षाविवर्जितम् ।
अहेतुवैरिणं क्रूरं धर्मं हिंसनसङ्गतम् ॥१५।१८३
मूर्खगोष्ठीं कुमर्यादं देशं चण्डं शिशुं नृपम् ।
वनितां च परासक्तां सूरिर्दूरेण वर्जयेत् ॥१५।१८४

२७७. अविदिततत्त्वस्थितयो विदधति यज्जन्तवः परेऽशर्म ।
तत्तत्र मूलहेतौ कर्मरवौ तापके दृष्टम् ॥१५।२२७

२७८. अस्मत्प्रयतनासाध्यो गोचरो ह्येष कर्मणाम् ॥१६।३०

२७९. नोदाराणां यतः कृत्ये मुच्यते चेतसा रसः ॥१६।५४

२८०. भर्तापि तेजसां कृत्यं कुरुतेऽरुणसङ्गतः ॥१६।६९

२८१. जगद्दाहे स्फुलिङ्गस्य किं वा वीर्यं परीक्ष्यते ? १६।७६

२८२. रमणेन वियुक्तायाः पल्लवोऽप्येति खड्गताम् ।
चन्द्रांशुरपि वज्रत्वं स्वर्गोऽपि नरकायते ॥१६।११६

२८३. धिगस्मत्सदृशान् मूर्खानप्रेक्षापूर्वकारिणः ।
जनस्य ये विना हेतुं यत्कुर्वन्त्यसुखासनम् ॥१६।१२१

२८४. निश्चित्य विहिते कार्ये लभन्ते प्राणिनः सुखम् ॥५६।१२६

२८५. कर्मवशीकृतम् ।
जगत्सर्वमवाप्नोति दुःखं वा यदि वा सुखम् ॥१६।१५९

२८६. ननु चन्द्रेण शर्वर्याः संगमे का न चारुता ? १६।१६३

२८७. भवत्यन्यथवा काले कल्याणं कर्मचोदितम् ॥१६।१६५

२८८. क्षेमाय दीर्घदर्शित्वं कल्पते प्राणधारिणाम् ॥१६।२३२

२८९. कदाचिदिह जायते स्वकृतकर्मपाकोदयात्,
सुखं जगति संगमादभिमतस्य सद्वस्तुनः ।
कदाचिदपि संभवत्यसुभृतामसौख्यं परम्,
भवे भवति न स्थितिः समगुणा यतः सर्वदा ॥१६।२४२

२९०. यत्रैव जनकः क्रुद्धो विदधाति निराकृतिम् ।
तत्र शेषजने काऽऽस्था तच्छन्दकृतचेष्टिते ॥१७।६१

२९१. नेत्रे निमील्य सोढव्यं कर्म पाकमुपागतम् ॥१७।८१

२९२. सर्वेषामेव जन्तूनां पृष्ठतः पार्श्वतोऽग्रतः ।
कर्म तिष्ठति ॥१७।८२

२९३. अप्सरःशतनेत्रालीनिलयीभूतविग्रहाः ।
प्राप्नुवन्ति परं दुःखं सुकृतान्ते, सुरा अपि ।।१७।८३

२९४. चिन्तयत्यन्यथा लोकः प्राप्नोति फलमन्यथा ।
लोकव्यापारसक्तात्मा परमो हि गुरुर्विधिः ।।१७।८४

२९५. हितङ्कुरमपि प्राप्तं विधिर्नाशयति क्षणात् ।
कदाचिदन्यदा धत्ते मानसस्याप्यगोचरम् ।।१७।८५

२९६. गतयः कर्मणां कस्य विचित्रा परिनिश्चिताः ।।१७।८६

२९७. साधुवर्गो हि सर्वेभ्यः प्राणिभ्यः शुभमिच्छति ।।१७।१७१

२९८. भवे चतुर्गतौ भ्राम्यन् जीवो दुःखैश्चितः सदा ।
सुमानुषत्वमायाति शमे कटुककर्मणः ।।१७।१७५

२९९. यानि यानि हि सौख्यानि जायन्ते चात्र भूतले ।
तानि तानि हि सर्वाणि जिनभक्ते विशेषतः ।।१७।२०५

३००. रोगमूलस्य हि च्छाया न स्निग्धा जायते तरोः ।।१७।३३२

३०१. दुःखं हि नाशमायाति सज्जनाय निवेदितम् ।
महतां ननु शैलीयं यदापद्गततारणम् ।।१७।३३४

३०२ स्खलन्ति न विधातव्ये वनेऽपि गुणिनो जनाः ।।१७।३५७

३०२. सम्भवतीह भूधररिपुः पविरपि कुसुमं,
वह्निरपीन्दुपादशिशिरं पृथु कमलवनम् ।
खड्गलतापि चारुवनिता सुमृदुभुजलता,
प्राणिषु पूर्वजन्मजनितात्सुचरितवलतः ।।१७।४०५

३०४. एष तपत्यहो परिदृढं जगदनवरतं
व्याधिसहस्ररश्मिनिकरो ननु जननरविः ।।१७.४०६

३०५. विवेकेन हि निर्युक्ता जायन्ते दुःखिनो जनाः । १८।४७

३०६. अपरीक्षणशीलानां सहसा कार्यकारिणाम् ।
पाश्चात्तापो भवत्येव जनानां प्राणधारिणाम् ।। १८।६२

३०७. न त्वापन्नहितोन्मुक्ता महात्मानो भवन्ति हिं ।। १८।७९

३०८. उपायेभ्यो हि सर्वेभ्यो वशीकरणवस्तुनि ।
कामिनीसङ्गमुज्झित्वा नापरं विद्यते परम् ।। १८।९९

३०९. किं शिवस्थानं कदाचिल्लब्धमाप्यते ? १९।११

३१०. पुण्यस्य पश्यतौदार्यं यदुद्भवति तद्वति ।
बहूनामुद्भवः पुंसां पतिते पतनं तथा ।। १९।६८

३११. कर्मवैचित्र्याल्लोकोऽयं चित्रचेष्टितः ।। १९।७९

३१२. पालिका मुग्धलोकस्य शत्रुलोकस्य नाशिका।
गुरुशुश्रूषिणी चेष्टा ननु चेष्टा महात्मनाम् ॥१६।८६

३१३. ग्रहणं ननु वीराणां रणे सत्कीर्तिकारणम्। १६।८६

३१४. द्वयमेव रणे वीरैः प्राप्यते मानशालिभिः।
ग्रहणं मरणं वापि कातरैश्च पलायितुम् ॥ १६।६०

३१५. एकापि यस्येह भवेद् विरूपा
नरस्य जाया प्रतिकूलचेष्टा।
रतेः पतित्वं स नरः करोति
स्थितः सुखे संसृतिधर्मजाते ॥ १६।१३१

३१६. विषयवशमुपेतैर्नष्टतत्त्वार्थवोधैः
कविभिरतिकुशीलैर्नित्यपापानुरक्तैः ।
कुरचितगरहेतुग्रन्थवाग्वागुराभिः
प्रगुणजनमृगौघो वध्यते मन्दभाग्यः ॥ १६।१३६

३१७. कुलानामिति सर्वेषां श्रावकाणां कुलं स्तुतम्।
आचारेण हि तत्पूतं सुगत्यर्जनतत्परम् ॥ २०।१४०

३१८. असारां धिगिमां शोभां मर्त्यानां क्षणिकामिति ॥ २०।१६०

३१९. न पाथेयमपूपादि गृहीत्वा कश्चिदृच्छति।
लोकान्तरं न चायाति किन्तु तत्सुकृतेतरम् ॥ २०।१९६

३२०. कैलासकूटकल्पेषु वरस्त्रीपूर्णकुक्षिषु।
यद्वसन्ति स्वगारेषु तत्फलं पुण्यवृक्षजम् ॥ २०।१९७

३२१. शीतोष्णवासयुक्तेषु कुगृहेषु वसन्ति यत्।
दारिद्रचपङ्कनिर्मग्नास्तदधर्मतरोः फलम् ॥ २०।१९८

३२२. विन्ध्यकूटसमाकारैर्वारणेन्द्रैर्व्रजन्ति यत्।
नरेन्द्राश्चामरोद्धूताः पुण्यशालेरिदं फलम् ॥ २०।१९९

३२३. तुरङ्गैर्यदलं स्वङ्गैर्गम्यते चलचामरैः।
पादातमध्यगैः पुण्यनृपतेस्तद्विचेष्टितम् ॥ २०।२००

३२४. कल्पप्रासादसङ्काशं रथमारुह्य यज्जनाः।
व्रजन्ति पुण्यशैलेन्द्रात् स्रुतोऽसौ स्वादुनिर्झरः ॥ २०।२०१

३२५. स्फुटिताभ्यां पदाङ्घ्रिभ्यां मलग्रस्तपटच्चरैः।
भ्रम्यते पुरुषैः पापविषवृक्षस्य तत्फलम् ॥ २०।२०२

३२६. अन्नं यदमृतप्रायं हेमपात्रेषु भुज्यते।
स प्रभावो मुनिश्रेष्ठैरुक्तो धर्मरसायनः ॥ २०।२०३

३२७. देवाधिपतिता चक्रचुम्बिता यच्च राज़ता।
लभ्यते भव्यशार्दूलैस्तदहिंसालताफलम् ॥ २०।२०४

३२८. रामकेशवयोर्लक्ष्मीर्लभ्यते यच्च पुङ्गवैः।
तद्धर्मफलम् ॥ २०।२०५

३२९. सनिदानं तपस्तस्माद्वर्जनीयं प्रयत्नतः।
तद्धि पश्चान्महाघोरदुःखदानसुशिक्षितम् ॥ २०।२१५

३३०. केचिद्गच्छन्ति मोक्षं कृतपुरुतपसः स्तोकपङ्काश्च केचित्।
केचिद्भ्राम्यन्ति भूयो बहुभवगहनां संसृतिं निर्विरामाः ॥ २०।२४६

३३१. चक्रवत्परिवर्तन्ते व्यसनानि महोत्सवैः।
शनैर्मार्यादयो दोषाः प्रयान्ति परिवर्द्धनम् ॥२१।५६

३३२. शुभाशुभसमासक्ता व्यतिक्रामन्ति मानवाः ॥२१।७१

३३३. जातस्य सुन्दरावश्यं मृत्युः प्रेतस्य सम्भवः ॥२१।११३

३३४. मृत्युजन्मघटीयन्त्रमेतद् भ्रात्म्यत्यनारतम्।
विद्युत्तरङ्गदुष्टाहिरसनेभ्योऽपि चञ्चलम् ॥२१।११४

३३५. स्वप्नभोगोपमा भोगा जीवितं बुद्बुदोपमम् ॥२१।११५

३३६. सन्ध्यारागोपमः स्नेहस्तारुण्यं कुसुमोपमम् ॥२१।११६

३३७. परिहासेन किं पीतं नौषधं हरते रुजम् ॥२१।११७

३३८. अर्थो धर्मश्च कामश्च त्रयस्ते तरुणोचिताः।
जरापरीतकायस्य दुष्कराः प्राणधारिणः ॥२१।१३६

३३९. कष्टमहो न शक्यते
विधिर्विनेतुं प्रकटीकृतोदयः।·२१।१४६

३४०. उत्सार्य यो भीषणमन्धकारं
करोति निष्कान्तिकमिन्दुबिम्बम्।
असौ रविः पद्मवनप्रबोधः
स्वर्भानुमुत्सारयितुं न शक्तः ॥२१।१४७
तारुण्यसूर्योऽप्ययमेवमेव
प्रणश्यति प्राप्तजरोपसंगः।
जन्तुर्वराको वरपाशबद्धो
मृत्योरवश्यं मुखमभ्युपैति ॥२१।१४८

३४१. धर्मे विनष्टे वद किं न नष्टम् ? २१।१५५

३४२. पश्य श्रेणिक ! संसारे संमोहस्य विचेष्टितम्।
यत्राभीष्टस्य पुत्रस्य माता गात्राणि खादति ॥२२।६३

किमतोऽन्यत्परं कष्टं यज्जन्मान्तरमोहिताः ।
वान्धवा एव गच्छन्ति वैरितां पापकारिणः ॥२२।९४

३४३. कर्मभूमिमिमां प्राप्य धन्यास्ते युवपुङ्गवाः ।
व्रतपोतं समारुह्य तेरुर्ये भवसागरम् ॥२२।१११

३४४. अधोगति (र्यतो) राज्यादत्यक्तादुपजायते ।
सम्यग्दर्शनयोगात्तु गतिरूर्ध्वमसंशया ॥२२।१७८

३४५. जीवितायाखिलं कृत्यं क्रियते (नाथ !) जन्तुभिः ।
त्रैलोक्येशत्वलाभोऽपि (वद) तेनोज्झितस्य कः ? २३।३८

३४६. उपर्युपरि हि प्रायश्चलन्ति विदुषां धियः ॥२३।४५

३३७. जन्तुभ्यो यो ददात्यभयं नरः ।
किं न तेन भवेद्दत्तं साधूनां धुरि तिष्ठता ? २३।४६

३४८. यद्यत्र यावच्च यतश्च येन
दुःखं सुखं वा पुरुषेण लभ्यम् ।
तत्तत्र तावच्च ततश्च तेन
सम्प्राप्यते कर्मवशानुगेन ॥२३।६२

३४९. दुःशिक्षितार्थैर्मनुजैरकार्ये
प्रवर्तते जन्तुरसारबुद्धिः ॥२३।६४

३५० आशीविषाङ्गप्रभवोऽपि सर्प-
स्तार्क्ष्यस्य शक्नोति किमु प्रहर्त्तुम् ? २३।६०

३५१. क्वेभः सशङ्को मदमन्दगाभी
क्व केसरी वायुसमानवेगः ? २३।६१

३५२. कालज्ञानं हि सर्वेषां नयानां मूर्धनि स्थितम् ॥२४।१००

३५३. अवस्थितं जगद्व्याप्य नुदेदर्कः कथं तमः ।
सव्येष्टा चेद्भवेदस्य न मूर्तिररुणात्मिका ॥२४।१२८

३५४. दुराचारयुक्ताः परं यान्ति दुःखं
सुखं साधुवृत्ता रविप्रख्यभासः ॥२४।१३५

३५५. द्रविणोपार्जनं विद्याग्रहणं धर्मसंग्रहः ।
स्वाधीनमपि तत्प्रायो विदेशे सिद्धिमश्नुते ॥२५।४४

३५६. ज्ञानं सम्प्राप्य किञ्चिद् व्रजति परमतां तुल्यमन्यत्र यातं
तावत्त्वेनापि नैति क्वचिदपि पुरुषे कर्मवैषम्ययोगात् ।
अत्यन्तं स्फीतिमेति स्फटिकगिरितटे तुल्यमन्यत्र देशे
यात्येकान्तेन नाशं तिमिरवति रवेरंशुवृन्दं खगौघैः ॥२५।५९

३५७. विद्याधर्मावगाहश्च जायतेऽव्यहितात्मनाम् । २६।७

३५८. पुरा संसर्गतः प्रीतिः प्राणिनामुपजायते ।
प्रीतितोऽभिरतिप्राप्ती रतेर्विश्रम्भसम्भवः ।।
सद्भावात्प्रणयोत्पत्तिः प्रेमैवं पञ्चहेतुकम् ।
दुर्मोचं वध्यते कर्म पातकैरिव पञ्चभिः ।। २६।८-९

३५९. भीषितानां दरिद्राणामार्तानां च विशेषतः ।
नारीणां पुरुषाणां च सर्वेषां शरणं नृपः ।। २६।२२

३६०. स्नेहस्य किमु दुष्करम् । २६।४२

३६१. आखोर्गिरिविलस्थस्य किं करोतु मृगाधिपः । २६।४९

३६२. दुःखितानां दरिद्राणां वर्जितानां च बान्धवैः ।
व्याधिसंपीडितानां च प्रायो भवति धर्मधीः ।। २६।६१

३६३. माता पिता च पुत्रश्च मित्राणि च सहोदराः ।
भक्षितास्तेन यो मांसं भक्षयत्यधमो नरः ।। २६।७४

३६४. ननु रविकरसङ्गस्योचिता पद्मलक्ष्मीः । २६।१७१

३६५. न ह्याखूनां विरोधेन क्षुभ्यन्ति वरवारणाः ।
न चापि तूलदाहार्थं सन्नह्यति विभावसुः ।। २७।३७

३६६. सद्य उत्पन्नो भृशमल्पोऽपि पावकः ।
कथं दहति विस्तीर्णं महद्भिः किं प्रयोजनम् ।। २७।४०

३६७. बालः सूर्यस्तमो घोरं द्युतीर् ऋक्षगणस्य च ।
एको नाशयति क्षिप्रं भूतिभिः किं प्रयोजनम् ।। २७।४१

३६८. सत्त्वत्यागादिवृत्तीनां क्षत्रियाणामियं स्थितिः ।
उत्सहन्ते प्रयातुं यद्विहातुमपि जीवितम् ।। २७।४३

३६९. अथवा क्षयमप्राप्ते जन्तुरायुपि नाश्नुते ।
मरणं गहनं प्राप्तः परं यद्यपि जायते ।। २७।४४

३७०. स्वं ननु कर्म पुंसाम् ।
समागमे गच्छति हेतुभावं वियोजने वा सुजनेन साकम् ।। २७।९३

३७१. शिशोर्विषफले प्रीतिर्निःस्वस्य बदरादिषु ।
ध्वाङ्क्षस्य पादपे शुष्के स्वभावः खलु दुस्त्यजः ।। २८।१४३

३७२. अत्यन्तविपुलः क्षारसागरः ।
न तत्करोति यद्वाप्यः स्तोकस्वादुपयोभृतः ।। २८।१४६

३७३. अत्यन्तघनबन्धेन तमसा भूयसापि किम् ।
अल्पेन तु प्रदीपेन जन्यते लोकचेष्टितम् ।। २८।१४७

३७४. असंख्या अपि मातङ्गा मदिनः कुर्वते न तत् ।
केशरी यत्किशोरः संश्चन्द्रनिर्मलकेसरः ॥ २८।१४८

३७५. अर्हन्तस्त्रिजगत्पूज्याश्चक्रिणो हरयो बलाः ।
उत्पद्यन्ते नरा यस्यां सा कथं निन्दिता मही ॥ २८।१५४

३७६. वायसा अपि गच्छन्ति नभसा तेन किं भवेत् ।
गुणेष्वत्र मनः कृत्यमिन्द्रजालेन को गुणः ॥ २८।१६५

३७७. शरीरे सति कामिन्यो भविष्यन्ति मनीषिताः ॥ २८।१८४

३७८. ननु कर्मार्जितं पुरा ।
नर्तयत्यखिलं लोकं नृत्ताचार्यो ह्यसौ परः ॥ २८।२०२

३७९. पद्मगर्भदलच्छाया साक्षाल्लक्ष्मीरिवोज्ज्वला ।
ईदृशी पुरुपुण्यस्य पुंसो भवति भामिनी ॥ २८।२५५

३८०. यादृग् येन कृतं कर्म भुङ्क्ते तादृक् स तत्फलम् ।
न ह्युप्तान् कोद्रवान् कश्चिदश्नुते शालिसम्पदम् ॥ २८।२६५

३८१. समवगम्य जनाः शुभकर्मणः फलमुदारमशोभनतोऽन्यथा ।
कुरुत कर्म बुधैरभिनन्दितं भवत येन रवेरधिकप्रभाः ।२८।२७५

३८२. सर्वतो मरणं दुःखम् ।।२९।२६

३८३. प्रसादध्वनिपर्यन्तप्रकोपा हि महास्त्रियः ।।२९।२९

३८४. प्रणयादपराधेऽपि ननु तुष्यन्ति योषितः ।।२९।३७

३८५. दयिते क्रियते यावत्कोपो दारुणमानसे ।
तावत्संसारसौख्यस्य विघ्नं जानीहि शोभने ।।२९।३८

३८६. यत्प्राप्तव्यं यदा येन यत्र यावद्यतोऽपि वा ।
तत्प्राप्यते तदा तेन तत्र तावत्ततो ध्रुवम् ।।२९।८३

३८७. असिधाराव्रतं जैनो जनोऽसक्तं निषेवते ।।२९।९७

३८८. शक्नोति न सुरेन्द्रोऽपि विधातुं विधिमन्यथा ।।३०।२४

३८९. शासनस्य जिनेन्द्राणामहो माहात्म्यमुत्तमम् ।।३०।४७

३९०. करणं यदतिक्रान्तं मृतमिष्टं च बान्धवम् ।
हृतं विनिर्गतं नष्टं न शोचन्ति विचक्षणाः ।।३०।७२

३९१. कातरस्य विषादोऽस्ति दयिते प्राकृतस्य च ।
न कदाचिद्विषादोऽस्ति विक्रान्तस्य बुधस्य च ।।३०।७३

३९२. चरितं निरगाराणां शूराणां शान्तमीहितम् ।
शिवं सुदुर्लभं सिद्धं सारं क्षुद्रभयावहम् ।।३०।८३

३९३. कुतः श्रद्धाविमुक्तस्य धर्मो धर्मफलानि च ? ३१।२०

३९४. पुण्येन लभते सौख्यमपुण्येन च दुःखिता।
कर्मणामुचितं लोकः सर्वं फलमुपाश्नुते ॥३१।७६

३९५. अहो कष्टं दुश्छेद्यं स्नेहबन्धनम् ॥३१।९५

३९६. जन्तुरेकक एवायं भवपादपसङ्कुले।
मोहान्धो दुःखविपिने कुरुते परिवर्तनम् ॥३१।९९

३९७. अत्यतं दुर्धरोद्दिष्टा प्रव्रज्या जिनसत्तमैः ।:३१।१०९

३९८. मृत्युः प्रतीक्षते नैवं बालं तरुणमेव वा ॥३१।१३३

३९९. गृहाश्रमे महावत्स ! श्रूयते धर्मसञ्चयः।
अशक्यः कुनरैः कर्त्तुं कुरुते राज्यसंगतः ॥३१।१३४

४००. कामक्रोधादिपूर्णस्य का मुक्तिर्गृहसेविनः ॥३१।१३५

४०१. न करोति यतः पातं पित्रोः शोकमहोदधौ।
अपत्यत्वमपत्यस्य तद्वदन्ति सुमेधसः ॥३१।१५३

४०२. न हि सागररत्नानामुत्पत्तिः सरसो भवेत् ॥३१।१५५

४०३. भ्राजते त्रायमानः सन् वाक्यं तत्पितृकस्य यत्।
लब्धवर्णैरिदं भ्रातुर्भ्रातृत्वं परिकीर्तितम् ॥३१।१६३

४०४. स्वार्थ संसक्तनित्याशं धिक् स्त्रैणमनपेक्षितम् ॥३१।१९३

४०५. सर्वासामेव शुद्धीनां मनःशुद्धिः प्रशस्यते।

४०६. अन्यथालिङ्गयतेऽपत्यमन्यथालिङ्गयते पतिः ॥३१।२३३

४०७. नानाकर्मस्थितौ त्वस्यां को नु शोचति कोविदः ॥३१।२३७

४०८. असमाप्तेन्द्रियसुखं कदाचित्स्थितिसंक्षये।
पक्षी वृक्षमिव त्यक्त्वा देहं जन्तुर्गमिष्यति ॥३१।२३९

४०९. धिग्भोगान्भोगिभोगाभान् भङ्गुरान्भीतिभाविनः ॥३२।५९

४१०. वियोगमरणव्याधिजराव्यसनभाजनम्।
जलबुद्बुदनिःसारं कृतघ्नं धिक् शरीरकम् ॥३२।६१

४११. भाग्यवन्तो महासत्त्वास्ते नराः श्लाघ्यचेष्टिताः।
कपिभ्रूभङ्गुरां लक्ष्मीं ये तिरस्कृत्य दीक्षिताः ॥३२।६२

४१२. धिक् स्नेहं भवदुःखानां मूलम् ॥ ३२।८३

४१३. नहि भक्तेर्जिनेन्द्राणां विद्यते परमुत्तमम् ॥३२।१८२

४१४. हितं करोत्यसौ स्वस्य भूतानां यो दयापरः।
दीक्षितो गृहयातो वा बुधो निर्मलमानसः ॥३३।१०२

४१५. साहसं कुरुते किं न मानवो योषितां कृते ॥३३।१४९

४१६. यथा किलाविनीतानां भृत्यानां विनयाहृतौ।
कुर्वन्ति स्वामिनो यत्नं विरोधः कोऽत्र दृश्यते ॥३३।२१६

४१७. ननु योषित्सु कारुण्यं कुर्वन्ति पुरुषोत्तमाः ॥३३।२७३

४१८. प्रणम्य त्रिजगद्वन्द्यं जिनेन्द्रं परमं शिवम्।
तुङ्गेन शिरसा तेन कथमन्यः प्रणम्यते ॥३३।२६५

४१९. मकरन्दरसास्वादलब्धवर्णो मधुव्रतः।
रासभस्य पदं पुच्छे प्रमत्तोऽपि करोति किम्? ३३।२६६

४२०. अपकारिणि कारुण्यं यः करोति स सज्जनः।
मध्ये कृतोपकारे वा प्रीतिः कस्य न जायते ॥३३।३०६

४२१. प्रायो माङ्गलिके लोको व्यवहारे प्रवर्तते ॥३४।४३

४२२. श्रमणा ब्राह्मणा गावः पशुस्त्रीबालवृद्धकाः।
सदोषा अपि शूराणां नैते वध्याः किलोदिताः ॥३५।२८

४२३. धिग् धिग् नीचसमासङ्गं दुर्वचःश्रुतिकारणम्।
मनोविकारकरणं महापुरुषवर्जितम् ॥३५।३०

४२४. वरं तरुतले शीते दुर्गमे विपिने स्थितम्।
परित्यज्याखिलं ग्रन्थं विहृतं भुवने वरम् ॥
वरमाहारमुत्सृज्य मरणं सेवितुं सुखम्।
अवज्ञातेन नान्यस्य गृहे क्षणमपि स्थितम् ॥३५।३१-३२

४२५. अणुव्रतधरो यो ना गुणशीलविभूषितः।
तं रामः परया प्रीत्या वाञ्छितेन समर्चति ॥३५।८०

४२६. धनवान् पूज्यते नित्यं यथादित्यो हिमागमे ॥३५।१८

४२७. द्रविणानीह पूज्यन्ते ॥३५।१५६

४२८. यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः।
यस्यार्थाः स पुमाँल्लोके यस्यार्थाः स च पण्डितः ॥३५।१६१

४२९. अर्थेन विप्रहीनस्य न मित्रं न सहोदरः।
तस्यैवार्थसमेतस्य परोऽपि स्वजनायते ॥३५।६२

४३०. सार्थो धर्मेण यो युक्तो सो धर्मो यो दयान्वितः।
सा दया निर्मला ज्ञेया मांसं यस्यां न भुज्यते ॥३५।१६३

४३१. मांसाशनान्निवृत्तानां सर्वेषां प्राणधारिणाम्।
अन्या मूलेन सम्पन्नाः प्रशस्यन्ते निवृत्तयः ॥३५।१६४

४३२. अनभिज्ञो विशेषस्य विशेषं कमवाप्तवान्? ३५।१७१

४३३. अयमन्यश्च विवशो जनैः स्वकृतभोगिभिः ।
न योऽवगम्यते यत्र न स तत्र जनोऽर्च्यते ।।३५।७२

४३४. सर्वेषामेव जीवानां धनमिष्टसमागमः ।
जायते पुण्ययोगेन यच्चात्मसुखकारणम् ।।३५।७८

४३५. योजनानां शतेनापि परिच्छिन्ने श्रुतान्तरे ।
इष्टो मुहूर्त्तमात्रेण लभ्यते पुण्यभागिभिः ।।३६।७६

४३६. ये पुण्येन विनिर्मुक्ताः प्राणिनो दुःखभागिनः ।
तेषां हस्तमपि प्राप्तमिष्टवस्तु पलायते ।।३६।८०

४३७. अरण्यानां गिरेर्मूर्ध्नि विषमे पथि सागरे ।
जायन्ते पुण्ययुक्तानां प्राणिनामिष्टसङ्गमाः ।।३६।८१

४३८. सिंहे करीन्द्रकीलालपङ्कलोहितकेसरे ।
शान्तेऽपि शावकस्तस्य कुरुते करिपातनम् ।।३७।४४

४३९. किं तारा भान्ति भास्करे ? ३७।६४

४४०. जातो वंशलतातोऽपि मणिः संगृह्यते ननु ।।३७।६५

४४१. सहसारभ्यमाणं हि कार्यं व्रजति संशयम् ।। ३७।६७

४४२. प्रस्तुतमत्यक्त्वा समारब्धं प्रशस्यते ।।३७।६८

४४३. कष्टमेककयोर्जार्ते विरोधे कारणं विना ।
पक्षद्वयं मनुष्याणां जायते विवशक्षयम् ।।३७।७९

४४४. अज्ञाता एव ये कार्यं कुर्वन्ति पुरुषाद्भुतम् ।
तेऽतिश्लाघ्या यथात्यन्तं निवृष्य जलदा गताः ।। ३७।९१

४४५. चकासति रवौ पापलक्ष्मीर्दोषाकरस्य का ।। ३७।१२२

४४६. को दोषः कर्मसामर्थ्याद्यदायान्त्यापदं नराः ।
रक्ष्या एव तथाप्येते दधतामतिसाधुताम् ।। ३७।१४१

१४७. इतरो ऽपि खलीकर्तुं साधूनां नोचितो जनः । ३७।१४२

४४८. महतामेव जायन्ते सम्पदो विपदन्विताः ।३७।१५०

४४९. पट्खण्डा यैरपि क्षोणी पालितेयं महानरैः ।
न तृप्तास्ते ऽपि ।। ३७।१५५

४५०. प्रभावं तपसः पश्य त्रिदशेष्वपि दुर्लभम् ।।३८।७

४५१. समस्तेभ्यो हि वस्तुभ्यः प्रियं जगति जीवितम् ।
तदर्थमितरत् सर्वमिति को नावगच्छति ।।३८।६६

४५२. वर्तिकाग्रहणे को वा बहुमानो गरुत्मतः ।।३८।१०२

४५३. ये जन्मान्तरसञ्चितातिसुकृताः सर्वासुभाजां प्रियाः
यं यं देशमुपव्रजन्ति विविधं कृत्यं भजन्तः परम् ।
तस्मिन् सर्वहृषीकसौख्यचतुरस्तेषां विना चिन्तया
मृष्टान्नादिविधिर्भवत्यनुपमो यो विष्टपे दुर्लभः ॥३८।१४२

४५४. भोगैर्नास्ति मम प्रयोजनमिमे गच्छन्तु नाशं खलाः
इत्येषां यदि सर्वदापि कुरुते निन्दामलं द्वेषकः ।
एतैः सर्वगुणोपपत्तिपटुभिर्यातोऽपि शृङ्गं गिरेः
नित्यं याति तथापि निर्जितरविर्दीप्त्या जनः सङ्गमम् ॥३८।१४३

४५५. कालं देशं च विज्ञाय नीतिशास्त्रविशारदैः ।
क्रियते पौरुषं तेन न जातु विपदाप्यते ॥३६।२२

४५६. निःसारमीहितं सर्वं संसारे दुःखकारणम् ॥३६।३६

४५७. मित्राणि द्रविणं दाराः पुत्राः सर्वे च बान्धवाः ।
सुखदुःखमिदं सर्वं धर्म एक सुखावहः ॥३६।३७

४५८. नैव वारयितुं शक्यास्तपस्तेजोऽतिदुर्गमाः ।
त्रिदशैरपि दिग्वस्त्राः किमुतास्मादृशैर्जनैः ॥३६।१०३

४५९. करिबालककर्णान्तचपलं ननु जीवितम् ।
मानुष्यकं च कदलीसारसाम्यं बिभर्त्यदः ॥३६।११३

४६०. स्वप्नप्रतिममैश्वर्यं सक्तं च सह बान्धवैः ॥३६।११४

४६१. धिगत्यन्ताशुचि देहं सर्वाशुभनिधानकम् ।
क्षणनश्वरमत्राणं कृतघ्नं मोहपूरितम् ॥३६।११७

४६२. शरीरसार्थं एतस्मिन् परलोकप्रवासिनि ।
मुष्णन्तः प्रसभं लोकं तिष्ठन्तीन्द्रियदस्यवः ॥३६।१२०

४६३. रमते जीवनृपतिः कुमतिप्रमदावृतः ।
अवस्कन्देन मृत्युस्तं कदर्थयितुमिच्छति ॥३६।१२१

४६४. मनो विषयमार्गेषु मत्तद्विरदविभ्रमम् ।
वैराग्यनलिना शक्यं रोद्धुं ज्ञानांकुशश्रिता ॥३६।१२२

४६५. परस्त्रीरूपसस्येषु बिभ्राणा लोभमुत्तमम् ।
अमी हृषीकतुरगा धृतमोहमहाजवाः ॥
शरीररथमुन्मुक्ताः पातयन्ति कुवर्त्मसु ।
चित्तप्रग्रहमत्यन्तं योग्यं कुरुत तद्दृढम् ॥३६।१२३-१२४

४६६. यद्यथा निर्मितं पूर्वं तद्योग्यं जायतेऽधुना ।
संसारवाससक्तानां जीवानां गतिरीदृशी ॥३६।१४२

४६७. किमधीतैरिहानर्थग्रन्थैरौशसनादिभिः ।
एकमेव हि कर्तव्यं सुकृतं सुखकारणम् ॥३६।१४३

४६८. न शृणोति स्मरग्रस्तो न जिघ्रति न पश्यति ।
न जानात्यपरस्पर्शं न बिभेति न लज्जते ॥३६।२०८

४६९. आश्चर्यं मोहतः कष्टमनुतापं प्रपद्यते ।
अन्धो निपतितः कूपे यथा पन्नगसेविते ॥३६।२०६

४७०. इह यत् क्रियते कर्म तत्परत्रोपभुज्यते ।
पुराकृतानां पुण्यानामिह सम्पद्यते फलम् ॥४०।३७

४७१. अस्माकमत्र वसतां बिभ्रतां सुखसम्पदाम् ।
अमी ये दिवसा यान्ति न तेषां पुनरागमः ॥४०।३८

४७२. नदीनां चण्डवेगानामायुषो दिवसस्य च ।
यौवनस्य च सौमित्रे यद्गतं गतमेव तत् ॥४०।३९

४७३. स्त्रीचित्तहरणोद्युक्ताः किं न कुर्वन्ति मानवाः ॥४१।६२

४७४. दृष्टान्तः परकीयोऽपि शान्तेर्भवति कारणम् ।
असमञ्जसमात्मीयं किं पुनः स्मृतिमागतम् ॥४१।१०१

४७५. इदं कर्मविचित्रत्वाद् विचित्रं परमं जगत् ॥४१।१०५

४७६. तिर्यञ्चोऽपि ह्यते रम्यं परुपकृतिरहितमनसां विन्दन्ति समीहितम् ॥४२।८१

४७७. यथावस्थितभावानां श्रद्धानं परमं सुखम् ।
मिथ्याविकल्पितार्थानां ग्रहणं दुःखमुत्तमम् ॥४३।३०

४७८. जनोऽविदितपूर्वो यो जने वघ्नाति सौहृदम् ।
अनाहूतश्च सामीप्यं व्रजति त्रपयोज्झितः ॥
अनादृतः प्रभूतं च भाषते शून्यमानसः ।
उत्पादयति विद्वेषं कस्य नासौ क्रमोज्झितः ॥४३।१०५-१०६

४७९. न्यायेन सङ्गतां साध्वीं सर्वोपप्लववर्जिताम् ।
को वा नेच्छति लोकेऽस्मिन् कल्याणप्रकृतिस्थितम् ॥४३।१०८

४८०. दधति परमशोकं बालवद् बुद्धिहीनाः ॥४३।१२२

४८१. किमिदमिह मनो मे किं नियोज्यं तदिष्टं कथमनुगतकृत्यैः प्राप्यते शं मनुष्यैः ।
इति कृतमतिरुच्चैर्यो विवेकस्य कर्ता रविरिव विमलोऽसौ राजते लोकमार्गे ॥
४३।१२३

४८२. क्वाबला क्व पुमान् बली ॥४४।२०

४८३. धिगिदं शौर्यमस्माकं सहायान् यदि वाञ्छति ॥४४।३५

४८४. चित्रा हि मनसो गतिः ॥४४।६५

४८५. लोको हि परमो गुरुः ॥४४।७१

४८६. महाप्रकृष्टपूरस्य नदस्योदाररंहसः।
तटयोः पातने शक्तिः केन न प्रतिपद्यते ॥४४।७६

४८७. न प्रसादयितुं शक्यः क्रुद्धः शीघ्रं नरेश्वरः।
अभीष्टं लब्धुमथवा द्युतिर्वा कीर्तिरेव वा॥
विद्या वाभिमता लब्धुं परलोकक्रियाऽपि वा।
प्रिया वा मनसो भार्या यद्वा किञ्चित् समीहितम् ॥४४।९६-९७

४८८. प्रतीक्षते हि तत्कालं मृत्युः कर्मप्रचोदितः ॥४४।१००

४८९. मानुषत्वं परिभ्रष्टं गहने भवसङ्कटे।
प्राप्तुमत्यद्भुतं भूयः प्राणिनाशुभकर्मणा॥
त्रैलोक्यगुणवद्रत्नं पतितं निम्नगापतौ
लभेत कः पुनर्धन्यः कालेन महताप्यलम् ॥ ४४।१२३-१२४

४९०. अहो दुःखस्य चित्रता ॥४४।१४४

४९१. अहो दुःखार्णवो महान् ॥४४।१४५

४९२. प्रायोऽनर्था वहुत्वगाः ॥१४६

४९३. न ये भवप्रभवविकारसङ्गतेः पराङ्मुखा जिनवचनान्युपासते।
वशीकृतान् शरणविवर्जितानमून् तपत्यलं स्वकृतरविः सुदुस्सहः ॥४४।१५१

४९४. कृत्स्नं विधिवशं जगत् ॥४५।५२

४९५. शोको हि नाम कोऽप्येप विषभेदो महत्तमः।
नाशयत्याश्रितं देहं का कथान्येषु वस्तुषु ॥४५।८१

४९६. जीवन् पश्यति भद्राणि धीरश्चिरतरादपि।
ग्रही ह्रस्वमतिर्भद्रं कृच्छादपि न पश्यति ॥४५।८३

४९७. औदासीन्यमिहानर्थं कुरुते परमं पुरा ॥४५।८४

४९८. अरण्यमपि रम्यत्वं याति कान्तासमागमे।
कान्तावियोगदग्धस्य सर्वं विन्ध्यवनायते ॥४५।९९

४९९. यद्यप्याशा पूर्वकर्मानुभावात् सङ्गं कर्तुं जायते प्राणभाजाम्।
प्राप्य ज्ञानं साधुवर्गोपदेशाद् गन्त्री नाशं सा रवेः शर्वरीव ॥४५।१०५

५००. राजते चारुभावानां सर्वथैव हि चारुता ॥४६।५

५०१. शक्नोति सुखधीः पातुं कः शिखामाशुशुक्षणेः।
को वा नागवधूमूर्ध्नि स्पृशेद् रत्नशलाकिकाम् ॥४६।२१

५०२. जगत्प्राग्विहितं सर्वं प्राप्नोत्यत्र न संशयः ॥४६।३२

५०३. प्राणा मूलं सर्वस्य वस्तुनः ॥ ४६।६४

५०४. निवृत्तिरेकापि ददाति परमं फलम् ।।४६।५६

५०५. जन्तूनां दुःखभूयिष्ठभवसन्ततिसारिणाम् ।
पापान्निवृत्तिरल्पाऽपि संसारोत्तारकारणम् ।।४६।५७

५०६. येषां विरतिरेकापि कुतश्चिन्नोपजायते ।
नरास्ते जर्जरीभूतकलशा इव निर्गुणाः ।।४६।५८

५०७. कर्मानुभावतः सर्वे न भवन्ति समक्रियाः ।।४६।६२

५०८. भस्मभावङ्गते गेहे कूपखानश्रमो वृथा ।।४६।६६

५०९. आत्मार्थं कुर्वतः कर्म सुमहासुखसाधनम् ।
दोषो न विद्यते कश्चित्सर्वं हि सुखकारणम् ।।४६।७७

५१०. सज्जनस्याग्रे नूनं शोकः प्रवर्द्धते ।।४६।११४

५११. परदाराभिलाषोऽयमयुक्तोऽतिभयङ्करः ।
लज्जनीयो जुगुप्स्यश्च लोकद्वयनिषूदनः ।।४६।१२३

५१२. धिक्शब्दः प्राप्यते योऽयं सज्जनेभ्यः समन्ततः ।
सोऽयं विदारणे शक्तो हृदयस्य सुचेतसाम् ।।४६।१२४

५१३. यो ना परकलत्राणि पापबुद्धिर्निषेवते ।
नरकं स विशत्येष लोहपिण्डो यथा जलम् ।।४६।१२६

५१४. सर्वथा प्रातरुत्थाय पुरुषेण सुचेतसा ।
कुशलाकुशलं स्वस्य चिन्तनीयं विवेकतः ।।४६।१२०

५१५. चित्रं हि स्मरचेष्टितम् ।।४६।१८६

५१६. मन्त्रणीयं हि सम्बद्धं स्वामिने हितमिच्छता ।।४६।२११

५१७. उद्योगेन विमुक्तानां जनानां सुखिता कुतः ।।४७।११

५१८. नवोऽनुरागवन्द्यो हि चन्द्रो लोकस्य नान्यदा ।।४७।१२

५१९. मन्त्रदोषमसत्कारं दानं पुण्यं स्वशूरताम् ।
दुःशीलत्वं मनोदाहं दुर्मित्रेभ्यो न वेदयेत् ।।४७।१५

५२०. सद्भावं हि प्रपद्यन्ते तुल्यावस्था जना भुवि ।।४७।१७

५२१. अथवाश्रयसामर्थ्यात् पुंसां किं नोपजायते ।।४७।२०

५२२. मद्यपस्यातिवृद्धस्य वेश्याव्यसनिनः शिशोः ।
प्रमदानां च वाक्यानि जातु कार्याणि नो बुधैः ।।४७।६३

५२३. अत्यन्तदुर्लभा लोके गोत्रशुद्धिः ।।४७।६४

५२४. समानेषु प्रायः प्रेमोपजायते ।।४७।९१

५२५. मानसानि मुनीनां हि सुदिग्धान्यनुकम्पया ।।४८।४८

५२६. मोहो जयति पापिनाम् ।।४८।४५

५२७. शक्ति दधताऽपि परां प्राप्यापि परं प्रवोधमारभ्ये।
भवितव्यं नयरतिना रविरिव काले स यात्युदयम् ॥४८।२५०

५२८. क्षुद्रशक्तिसमासक्ता मानुपास्तावदासताम्।
न सुरैरपि कर्माणि शक्यन्ते कर्तुमन्यथा ॥४६।७

५२९. श्वपाकादपि पापीयान् लुब्धकादपि निर्घृणः।
असम्भाष्यः सतां नित्यं योऽकृतज्ञो नराधमः ॥४६।६४

५३०. दुर्लभः सङ्गमो भूयः पूजितः सर्ववस्तुषु।
ततोऽपि दुर्लभो धर्मो जिनेन्द्रवदनोद्गतः ॥४६।१०६

५३१. महात्मनामुन्नतगर्वशालिनो भवन्ति वश्याः पुरुषा बलान्विताः ॥५०।५४

५३२. अहो नो भवितव्यता ॥५१।२३

५३३. न मुनेर्वाक्यं कदाचिज्जायतेऽनृतम् ॥५१।३३

५३४. गुणान्वितैर्भवति जनैरलङ्कृता समस्तभूः शुभललितैः सुसुन्दरैः।
विना जनं मनसि कृतास्पदं सदा व्रजत्यसौ गहनवनेन तुल्यताम् ॥५१।५०

५३५. पुराकृतादतिनिचितात्समुत्कटाज्जनः परां रतिमनुयाति कर्मणः।
ततो जगत्सकलमिदं स्वगोचरे प्रवर्तते विधिरविणा प्रकाशते ॥५१।५१

५३६. राज्यविधौ स्थिताः।
पित्रादीनपि निघ्नन्ति नराः कर्मवलेरिताः ॥५२।६४

५६७. अस्मिन् हि सकले लोके विहितं भुज्यते ॥५२।६५

५३८. कृत्यं प्रत्युपकारस्य बान्धवैरनुमोदितम् ॥५२।७५

५३९. चित्रमिदं परमत्र नृलोके, यत्परिहाय भृशं रसमेकम्।
तत्क्षणमेव विशुद्धशरीरं जन्तुरुपैति रसान्तरसङ्गम् ॥५२।८४

५४०. उचितं किमिदं कर्त्तुं यद्वास्यार्द्धपतिः स्वयम्।
कुरुते क्षुद्रवत्कश्चिच्चोरणं परयोषितः ॥५३।४

५४२. मर्यादानां नृपो मूलमापगानां यथा नगः।
अनाचारे स्थिते तस्मिन् लोकस्तत्र प्रवर्तते ॥५३।५

५४२. विमलं चरितं लोके न केवलमिहेष्यते।
किन्तु गीर्वाणलोकेऽपि रचिताञ्जलिभिः सुरैः ॥५३।६

५४३. परार्थं यः पुरस्कृत्य पुनः स्वं विनिगूहति।
सोऽतिभीरुतयात्यन्तं जायते निकृतो नरः ५३।३६

५४४. परमापदि सीदन्तं जनं सन्धारयन्ति ये।
अनुकम्पनशीलानां तेषां जन्म सुनिर्म्मलम् ॥५३।४०

५४५. हानिः पुरुषकारस्य न चात्मनि निदर्शिते।
प्रकाश्ये गुरुतां याति जगति श्रीर्यशस्विनी ।।५३।४१

५४६. विग्रहो निःप्रयोजनः ।।५३।८५

५४७. कार्यसिद्धिरिहाभीष्टा सर्वथा नयशालिभिः ।।५३।८५

५४८. शूराः सत्त्वयशोऽन्विताः।
गुणोत्कटा न शंसन्ति धीराः स्वं स्वयमुत्तमाः ।।५३।६१

५४९. सुखं प्रसादतो यस्य जीव्यते विभवान्वितः।
अकार्यं वाञ्छतस्तस्य दीयते न मतिः कथम् ।।५३।१०१

५५०. आहारम् भोक्तुकामस्य विज्ञातं विषमिश्रितम्।
मित्रस्य कृतकामस्य कथं न प्रतिषिध्यते ? ५३।१०२

५५१. रविरश्मिकृतोद्योतं सुपवित्रं मनोहरम्।
पुण्यवर्द्धनमारोग्यं दिवाभुक्तं प्रशस्यते ।।५३।१४१

५५२. सहायैर्मृगराजस्य कुर्वतो मृगशासनम्।
कियद्भिरपरैः कृत्यं त्यक्त्वा सत्त्वं सहोद्भवम् ।।५३।२००

५५३. चिह्नानि विटजातस्य सन्ति नाङ्गेषु कानिचित्।
अनार्यमाचरन् किञ्चिज्जायते नीचगोचरः ।।५३।२३९

५५४. मत्ताः केसरिणोऽरण्ये शृगालानाश्रयन्ति किम् ?
नहि नीचं समाश्रित्य जीवन्ति कुलजा नराः ।।५३।२४०

५५५. को जानाति विना पुण्यैर्निग्राह्यः को विधेरिति ।।५३।२४२

५५६. या येन भाविता बुद्धिः शुभाशुभगता दृढ़म्।
न सा शक्याऽन्यथाकर्तुं पुरन्दरसमैरपि ।।५३।२४७

५५७. निरर्थकं प्रियशतैर्दुर्मतौ दीयते मतिः ।।५३।२४२

५५८. विहितेन हतो हतः ।।५३।२४८

५५९. प्राप्ते विनाशकालेऽपि बुद्धिर्जन्तोर्विनश्यति।
विधिना प्रेरितस्तेन कर्मपाकं विचेष्टते ।।५३।२४९

५६०. इति सुविहितवृत्ताः पूर्वजन्मन्युदाराः
सकलभुवनरोधिव्याप्यकीर्तिप्रधानाः ।
अभिसरपरिमुक्ताः कर्म तत्कर्त्तुमीशाः
जनयति परमं तद्विस्मयं दुर्विचिन्त्यम् ।।५३।२७३

५६१. भजत सुकृतसङ्गं तेन निर्मुच्य सर्वं
विरसफलविधायि क्षुद्रकर्म प्रयत्नात्।

भवत परमसौख्यास्वादलोभप्रसक्ताः
परिजितरविभासो जन्तवः कान्तलीलाः ॥५३।२७४

५६२. यं यं देशं विहितसुकृताः प्राणभाजः श्रयन्ते,
तस्मिंस्तस्मिन् विजितरिपवो भोगसङ्गं भजन्ते।
न ह्येतेषां परजनमतं किञ्चिदापद्युतानाम्
सर्वं तेषां भवति मनसि स्थापितं हस्तसक्तम् ॥५४।७९

५६३. तस्माद् भोगं भुवनविकटं भोक्तुकामेन कृत्यः,
श्लाघ्यो धर्मो जिनवरमुखादुद्गतः सर्वसारः।
आस्तां तावत्क्षयपरिचितो भोगसङ्गोऽपि मोक्षम्
धर्मादस्माद् व्रजति रवितोऽप्युज्ज्वलं भव्यलोक ? ॥५४।८०

५६४. यदर्थे मत्तमातङ्गमहावृन्दान्धकारिणि ।
पतद्विविधशस्त्रौघे सङ्ग्रामेऽत्यन्तभीषणे ॥
हत्वा शत्रून् समुद्वृत्तास्तीक्ष्णया खड्गधारया।
भुजेनोपार्ज्यते लक्ष्मीः सुकृच्छ्राद् वीरसुन्दरी ॥
सुदुर्लभमिदं प्राप्य तत्स्त्रीरत्नमनुत्तमम्।
मूढवन्मुच्यते कस्मात् ? ५५।१७-१९

५६५. परस्पराभिघाताद्वा कलुषत्वमुपागतम्।
प्रसादं पुनरप्येति कुलं जलमिव ध्रुवम् ॥५५।५३

५६६. द्रव्यादिलोभेन भ्रात्रादीनामपि स्फुटम्।
संसारे जायते वैरं यौनबन्धो न कारणम् ॥५५।६८

५६७. भ्राता ममायं सुहृदेष वश्यो
ममैव बन्धुः सुखदः सदेति।
संसारवैचित्र्यविदा नरेण
नैतन्मनीषारविणा विचिन्त्या ॥५५।६५

५६८. लोकं स्वचरितरविरेव प्रेरयत्यात्मकार्ये ॥५६।३६

५६९. आभिमुख्यगतं मृत्युं वरं प्राप्ता महाभटाः।
पराङ्मुखा न जीवन्तो धिक्शब्दमलिनीकृताः ॥५७।८

५७०. नरास्ते (दयिते !) श्लाघ्या ये गता रणमस्तकम्।
त्यजन्त्यभिमुखा जीवं शत्रूणां लब्धकीर्त्तयः ॥५७।२१

५७१. उद्भिन्नदन्तिदन्ताग्रदोलादुर्लंडितं भटाः।
कुर्वन्ति न विना पुण्यैः शत्रुभिर्घोषितस्तवाः ॥५७।२२

५७२. गजदन्ताग्रभिन्नस्य कुम्भदारणकारिणः ।
यत्सुखं नरसिंहस्य तत् कः कथयितुं क्षमः ? ५७।२३

५७३. दोषोऽपि हि गुणीभावं प्रस्तावे प्रतिपद्यते ।।५७।४४

५७४. प्राप्ते काले कर्मणामानुरूप्याद्
दातुं योग्यं तत्फलं निश्चयाप्यम् ।
शक्तो रोद्धुं नैव शक्रोऽपि लोके
वार्तान्येषां कैव वाङ्मात्रभाजाम् ? ५७।७३

५७५. बिभर्ति तावद् दृढ़निश्चयं जनः, प्रभोर्मुखं पश्यति यावदुन्नतम् ।
गते विनाशं स्वपतौ विशीर्यते, यथारचक्रं परिशीर्णतुम्बकम् ।।५८।४७

५७६. सुनिश्चितानामपि सन्नराणां, विना प्रधानेन न कार्ययोगः ।
शिरस्यपेते हि शरीरबन्धः, प्रपद्यते सर्वत एव नाशम् ।।५८।४८

५७७. प्रधानसम्बन्धमिदं हि सर्वं, जगद्यथेष्टं फलमभ्युपैति ।
राहूपसृष्टस्य रवेर्विनाशं, प्रयाति मन्दो निकरः कराणाम् ।।५८।४९

५७८. पूर्वकर्मानुभावेन स्थितिर्दुःकृतिनामियम् ।
असौ मारयिता तस्य यो येन निहतः पुरा ।।५९।४
असौ मोचयिता तस्य बन्धनव्यसनादिषु ।
यो येन मोचिता पूर्वमनर्थे पातितो नरः ।।५९।५

५७९. हतवान् हन्यते पूर्वं पालकः पाल्यतेऽधुना ।
औदासीन्यमुदासीने जायते प्राणधारिणाम् ।।५९।२१

५८०. यं वीक्ष्य जायते कोपो दृष्टकारणवर्जितः ।
निःसन्दिग्धं परिज्ञेयः स रिपुः पारलौकिकः ।।५९।२२

५८१. यं वीक्ष्य जायते चित्तं प्रह्लादि सह चक्षुषा ।
असन्दिग्धं सुविज्ञेयो मित्रमन्यत्र जन्मनि ।।५९।२३

५८२. क्षुब्धोर्मिणि जले सिन्धोः शीर्णपोतं झषादयः ।
स्थले म्लेच्छाश्च बाधन्ते यत्तद् दुःकृतजं फलम् ।।५९।२४

५८३. मत्तैर्गिरिनिभैर्नागैर्योधैर्बहुविधायुधैः ।
सुवेगैर्वाजिभिर्दृप्तैर्भृत्यैश्च कवचावृतैः ।।५९।२५

५८४. विग्रहेऽविग्रहे वापि निःप्रमादस्य सन्ततम् ।
जन्तोः स्वपुण्यहीनस्य रक्षा नैवोपजायते ।।५९।२६

५८५. निरस्तमपि निर्यन्तं यत्र तत्र स्थितं परम् ।
तपोदानानि रक्षन्ति न देवा न च बान्धवाः ।।५९।२७

५८६. दृश्यते वन्धुमध्यस्थः पित्राप्यालिङ्गितो धनी।
म्रियमाणोऽतिशूरश्च कोऽन्यः शक्तोऽभिरक्षितुम् ॥५६।१८

५८७. पात्रदानैः व्रतैः शीलैः सम्यक्त्वपरितोषितैः।
विग्रहेऽविग्रहे वापि रक्ष्यते रक्षितैर्नरः ॥५६।२६

५८८. दयादानादिना येन धर्मो नोपार्जितः पुरा।
जीवितं चेष्यते दीर्घं वाञ्छा तस्यातिनिःफला ॥५६।३०

५८९. न विनश्यन्ति कर्माणि जनानां तपसा विना।
इति ज्ञात्वा क्षमा कार्या विपश्चिद्भिररिष्वपि ॥५६।३१

५९०. एष ममोपकरोति सुचेताः दुष्टतरोऽपकरोति ममायम्।
बुद्धिरियं निपुणा न जनानां कारणमत्र निजार्जितकर्म ॥५६।३५

५९१. इत्यधिगम्य विचक्षणमुख्यैर्वाह्यसुखासुखगौणनिमित्तैः।
रागतरं कलुषं च निमित्तं कृत्यमयोज्झितकुत्सित चेष्टैः ॥५६।३३

५९२. भूविवरेषु निपातमुपैति ग्रावणि सज्जति गच्छति सर्पम्।
सन्तमसा पिहिते पथि नेत्री नो रविणा जनितप्रकटत्वे ॥५६।३४

५९३. नखच्छेद्ये तृणे किं वा परशोरुचिता गतिः? ६०।६८

५९४. विना हि प्रतिदानेन महती जायते त्रपा ॥६०।८७

५९५. पुण्यानुकूलितानां हि नैरन्तर्यं न जायते ॥६०।६०

५९६. धर्मस्यैतद्विधियुतकृतस्यानवद्यस्य धीरै-
र्ज्ञेयं स्तुत्यं फलमनुपमं युक्तकालोपजातम्।
यत्सम्प्राप्य प्रमदकलिताः दूरमुक्तोपसर्गाः
सञ्जायन्ते स्वपरकुशलं कर्त्तुमुद्भूतवीर्याः ॥६०।१४२

५९७. आस्तां तावन्मनुजजनिताः सम्पदः कांक्षितानां
यच्छन्तीष्टादधिकमतुलं वस्तु नाकश्रितोऽपि।
तस्मात्पुण्यं कुरुत सततं हे जनाः सौख्यकांक्षाः।
येनानेकं रविसमरुचः प्राप्नुताश्चर्ययोगम् ॥६०।१४३

५९८. इहैवलोके विकटं परं यशो, मतिप्रगल्भत्वमुदारचेष्टितम्।
अवाप्यते पुण्यविधिश्च निर्मलो नरेण भक्त्यार्पितसाधुसेवया ॥६१।२०

५९९. तथा न माता न पिता न वा सुहृत् सहोदरो वा कुरुते नृणां प्रियम्।
प्रदाय धर्मे मतिमुत्तमां यथा हितं परं साधुजनः शुभोदयाम् ॥२१।२१

६००. उपात्तपुण्यो जननान्तरे जनः करोति योगं परमैरिहोत्सवैः।
न केवलं स्वस्य परस्य भूयसा रविर्यथा सर्वपदार्थदर्शनात् ॥६१।२४

६०१. मोहस्य दुस्तरं किं वा वलिनो बलिनामपि ? ६२।२७

६०२. इति निजचरितस्यानेकरूपस्य हेतो–
व्यंतिगतभवजस्यावश्यलभ्योदयस्य ।
इह जनुषु विचित्रं कर्मणो भावयन्ते
फलमविरतयोगाज्जन्तवो भूरिभावाः ।।६२।६६

६०३. व्रजति विधिनियोगात्कश्चिदेवेह नाशं
हतरिपुरपरश्च स्वं पदं याति धीरः ।
विफलितपृथुशक्तिर्बन्धनं सेवतेऽन्यो
रविरुचितपदार्थोद्भासने हि प्रवीणः ।।६२।१००

६०४. कामार्थाः सुलभाः सर्वे पुरुषस्यागमास्तथा ।
विविधाश्चैव सम्बन्धा विष्टपेऽस्मिन् यथा तथा ।।१३।१३
पर्यट्य पृथिवीं सर्वां स्थानं पश्यामि तन्ननु ।
यस्मिन्नवाप्यते भ्राता जननी जनकोऽथवा ।।६३।१४

६०५. उत्तमा उपकुर्वन्ति पूर्वं पश्चात्तु मध्यमाः ।
पश्चादपि न ये तेषामधमत्वं हतात्मनाम् ।।६३।१८

६०६. भवन्तीह प्रतीकाराः प्रायो विपदमीयुषाम् ।।६३।२३

६०७. भवन्ति च प्रतीकाराश्चित्रं हि जगतीहितम् ।।६४।१६

६०८. भवन्ति हि बलीयांसो बलिनामपि विष्टपे ।।६४।१११

६०९. इति स्थितानामपि मृत्युमार्गे जनैरशेषैरपि निश्चितानाम् ।
महात्मनां पुण्यफलोदयेन भवत्युपायो विदितोऽसुदाया ।।६४।११४

६१०. अहो महान्तः परमा जनास्ते येषां महापत्तिसमागतानाम् ।
जनो वदत्युद्भवनाभ्युपायं रवे समस्तत्वनिवेदनेन ।।६४।११५

६११. नीतिज्ञैः सततं भाव्यमप्रमत्तैः सुपण्डितैः ।।६५।१६

६१२. एतावतैव संसारः सुसारः प्रतिभाति मे ।
ईदृशानि प्रसाध्यन्ते यत्तपांसीह जन्तुभिः ।।६५।५१

६१३. प्राप्यते येन निर्वाणं किमन्यन्तस्य दुष्करम् ।।६५।५५

६१४. इति विहितसुचेष्टाः पूर्वजन्मन्युदाराः
परमपि परिजित्य प्राप्तमायुर्विनाशम् ।
द्रुतमुपगतचारुद्रव्यसम्बन्धभाजो
विधुरविगुणतुल्यां स्वामवस्थां भजन्ते ।।६५।८१

६१५. परमार्थो हि निर्भीकैरुपदेशोऽनुजीविभिः ।।६६।३

६१६. प्रीत्यैव शोभना सिद्धिर्युद्धतस्तु जनक्षयः ।
असिद्धिश्च महान् दोषः सापवादाश्च सिद्धयः ।।६६।२४

६१७. ननु सिंहो गुहां प्राप्य महाद्रेर्जायते सुखी ।।६६।२६

६१८. नरेण सर्वथा स्वस्य कर्त्तव्यं बुद्धिशालिना ।
रक्षणं सततं यत्नाद्दारैरपि धनैरपि ।।६६।४०

६१९. नाखौ संक्षोभमायाति सिंहः प्रचलकेसरः ।।६६।५३

६२०. प्रतिशब्देषु कः कोपः छायापुरुषकेऽपि वा ।
तिर्यक्षु वा शुकाद्येषु यन्त्रविम्बेषु वा सताम् ।।६६।५४

६२१. न पद्मवातेन सुमेरुरुह्यते न सागरः शुष्यति सूर्यरश्मिभिः ।
गवेन्द्रशृङ्गैर्धरणी न कम्पते न साध्यते त्वत्सदृशैर्दशाननः ।।६६।८७

६२२. न जम्बुके कोपमुपैति सिंहः ।
गजेन्द्र कुम्भस्थलदारणेन क्रीडां स मुक्तानिकरैः करोति ।।६६।८९

६२३. नरेश्वरा अर्जितशौर्यचेष्टा न भीतिभाजां प्रहरन्ति जातु ।
न ब्राह्मणं न श्रमणं न शून्यं स्त्रियं न बालं न पशुं न दूतम् ।।६६।९०

६२४. बहु विदितमलं सुशास्त्रजालं नयविषयेषु सुमन्त्रिणोऽभियुक्ताः ।
अखिलमिदमुपैति मोहभावं पुरुषरवौ घनमोहमेघरुद्धे ।।६६।९५

६२५. धन्याः सद्युति कारयन्ति परमं लोके जिनानां गृहम् ।।६७।२७

६२६. वित्तस्य जातस्य फलं विशालं वदन्ति सुज्ञाः सुकृतोपलम्भम् ।
धर्मश्च जैनः परमोऽखिलेऽस्मिञ्जगत्यभीष्टस्य रविप्रकाशे ।।६७।२८

६२७. समुचितविभवयुतानां जिनेन्द्रचन्द्रान् सुभक्तिभारधराणाम् ।
पूजयतां पुरुषाणां कः शक्तः पुण्यसञ्चयान् प्रचोदयितुम् ।।६८।२३

६२८. भुक्त्वा देवविभूतिं लब्ध्वा चक्राङ्कभोगसंयोगम् ।
रवितोऽपि तपस्तीव्रं कृत्वा जैनं व्रजन्ति मुक्तिं परमाम् ।।६८।२४

६२९. भीतादिष्वपि नो तावत् कर्तुं युक्तं विहिंसनम् ।
किं पुनर्नियमावस्थे जने जिनगृहस्थिते ।।७०।९

६३०. यो यस्य हरते द्रव्यं प्रयत्नेन समर्जितम् ।
स तस्य हरते प्राणान् बाह्यमेतद्धि जीवितम् ।।७०।८३

६३१. तावद् भवति जनानामधिका प्रीतिः समाश्रयासन्ना ।
यावन्निर्दोषत्वं रविमिच्छति कः सहोत्पातम् ।।७०।१०१

६३२. प्रमादाद्विकृतिं प्राप्तं मनः समुपदेशतः ।
प्रायः पुण्यवतां पुंसा वशीभावेऽवतिष्ठते ।। ७२।६२

६३३. योद्धव्यं करुणा चेति द्वयमेतद्विरुध्यते । ७२।६४

६३४. यत् किञ्चित्करणोन्मुक्तः सुखं जीवति निर्घृणः ।
जीवत्यस्मद्विधो दुःखं करुणामृदुमानसः ।। ७२।६६

६३५. क्षीणेष्वात्मीयपुण्येषु याति शक्रोऽपि विच्युतिम् ।
जनता कर्मतन्त्रेयं गुणभूतं हि पौरुषम् ।। ७२।८६

६३६. लभ्यते खलु लब्धव्यं नातः शक्यं पलायितुम् ।
न काचिच्छूरता दैवे प्राणिनां स्वकृताशिनाम् ।। ७२।८७

६३७. मरणात्परमं दुःखं न लोके विद्यते परम् । ७२।९०

६३८. निकाचितं कर्म नरेण येन यत्तस्य भुंक्ते स फलं नियोगात् ।
कस्यान्यथा शास्त्ररवौ सुदीप्ते तमो भवेन्मानुषकौशिकस्य ।। ६२।९७

६३९. या काचिद्भविता बुद्धिर्नृणां कर्मानुवर्त्तिनाम् ।
अशक्या साऽन्यथाकर्त्तुं सेन्द्रैः सुरगणैरपि ।। ७३।२७

६४०. अर्थसाराणि शास्त्राणि नयमौशनसं परम् ।
जानन्नपि त्रिकूटेन्द्रःपश्य मोहेन बाध्यते ।। ७३।२८

६४१. महापूरकृतोत्पीडः पयोवाहसमागमे ।
दुष्करो हि नदो धर्तुं जीवो वा कर्मचोदितः ।। ७३।३०

६४२. अविरुद्धं स्वभावस्थं परिणामसुखावहम् ।
वचोऽप्रियमपि ग्राह्यं सुहृदामौषधं यथा ।। ७३।४८

६४३. कज्जलोपमकारीषु परनारीषु लोलुपः ।
मेरुगौरवयुक्तोऽपि तृणलाघवमेति ना ।। ७३।५९

६४४. देवैरनुगृहीतोऽपि चक्रवर्त्तिसुतोऽपि वा ।
परस्त्रीसङ्गपङ्केन दिग्धोऽकीर्त्तिं व्रजेत्पराम् ।। ७३।६०

६४५. योऽन्यप्रमदया साकं कुरुते मूढको रतिम् ।
आशीविषभुजङ्ग्याऽसौ रमते पापमानसः ।। ७३।६१

६४६. न कश्चित्स्वयमात्मानं शंसन्नाप्नोति गौरवम् ।
गुणा हि गुणतां यांति गुण्यमानाः पराननैः ।। ७३।७४

६४७. विषयाऽऽमिषसक्तात्मन् पापभाजन चञ्चल ।
धिगस्तु हृदयत्वं ते हृदय क्षुद्रचेष्टिता ।। ७३।८४

६४८. अयं पुमानियं स्त्रीति विकल्पोऽयममेधसाम् ।
सर्वतो वचनं साधु समीहन्ते सुमेधसः ।। ७३।९१

६४९. किं भूरिजनहिंसया ।। ७३।९४

६५०. तदेव वस्तु संसर्गाद्धत्ते परमचारुताम् । ७३।१३९

६५१. धर्मो रक्षति मर्माणि धर्मो जयति दुर्जयम् ।
धर्मः सञ्जायते पक्षः धर्मः पश्यति सर्वतः ।। ७४।५६

६५२. न गजस्योचिता घण्टा सारमेयस्य शोभते ।। ७४।९३

६५३. कर्मण्युपेतेऽभ्युदयं पुराणे संप्रेरके सत्यतिदारुणाङ्गे ।
तस्योचितं प्राप्तफलं मनुष्याः क्रियापवर्गप्रकृतं भजन्ते ॥ ७४।११५

६५४. उदारसंरंभवशं प्रपन्नाः प्रारब्धकार्यार्थनियुक्तचित्ताः ।
नरा न तीव्रं गणयन्ति शस्त्रं न पावकं नैव रविं न वायुम् ॥ ७४।११६

६५५. धिगिमां नृपतेर्लक्ष्मीं कुलटासमचेष्टिताम् ।
भोक्तुमेकपदे पापान् त्यजन्ती चिरसंस्तुतान् ॥ ७६।१२

६५६. किम्पाकफलवद्भोगा विपाकविरसा भृशम् ।
अनन्तदुःखसम्बन्धकारिणः साधुगर्हिताः ॥ ७६।१३

६५७. क्षुद्रजन्तूनां खलेनाऽपि महोत्सवम् ॥ ७६।२६

६५८. धिगीदृशीं श्रियमतिचञ्चलात्मिकां विवर्जितां सुकृतसमागमाशया ।
इति स्फुटं मनसि निधाय भो जनास्तपोधना भवत रवेर्जितौजसः ॥७६।४३

६५९. योनिं यामश्नुते जन्तुस्तत्रैव रतिमेति सः ॥ ७७।६८

६६०. ननु स्वकृतसम्प्राप्तिप्रवणाः सर्वदेहिनः ॥ ७७।६९

६६१. मरणान्तानि वैराणि जायन्ते हि विपश्चिताम् ॥ ७८।१

६६२. परं कृतापकारोऽपि मानी निर्व्यूढभाषितः ।
अत्युन्नतगुणः शत्रुः श्लाघनीयो विपश्चिताम् ॥ ७८।२९

६६३. अमूर्तत्वं यथा व्योम्नश्चलत्वमनिलस्य च ।
महामुनेर्निसर्गेण लोकस्याह्लादनं तथा ॥ ७८।५७

६६४. पञ्चानामर्थयुक्तत्वमिन्द्रियाणां तदैव हि ।
यदाभीष्टसमायोगे जायते कृतनिर्वृतिः ॥८०।८०

६६५. विषयः स्वर्गतुल्योऽपि विरहे नरकायते ।
स्वर्गायते महारण्यमपि प्रियसमागमे ॥८०।८२

६६६. एकेन व्रतरत्नेन पुरुषान्तरवर्जिना ।
स्वर्गारोहणसामर्थ्यं योषितामपि विद्यते ॥८०।१४७

६६७. वीरुदश्वेभलोहानामुपलद्रुमवाससाम् ।
योषितां पुरुषाणां च विशेषोऽस्ति महान् नृप ! ॥८०।१५३

६६८. नहि चित्रभृतं वल्ल्यां वल्ल्यां कूष्माण्डमेव वा ।
एवं न सर्वनारीषु सद्वृत्तं नृप विद्यते ॥८०।१५४

६६९. पूर्वभाग्योदयाद्राजन् संसारे चित्रकर्मणि ।
राज्यं कश्चिदवाप्नोति प्राप्तं नश्यति कस्यचित् ॥८०।२०३

६७०. अप्येकस्माद् गुरोः प्राप्य जन्तूनां धर्मसङ्गतिम् ।
निदानर्निर्निदानाभ्यां मरणाभ्यां पृथग्गतिः ॥८०।२०४

६७१. उत्तरन्त्युदधिं केचिद्रत्नपूर्णाः सुखान्विताः।
मध्ये केचिद्विशीर्यन्ते तटे केचिद्धनाधिपाः ॥८०।२०५

६७२. पुण्यवान् स नरो लोके यो मातुर्विनये स्थितः।
कुरुते परिशुश्रूषां किंकरत्वमुपागतः ॥८१।०९

६७३. एकोऽपि कृतो नियमः प्राप्तोऽभ्युदयं जनस्य सद्बुद्धेः।
कुरुते प्रकाशमुच्चै रविरिव तस्मादिमं कुरुत ॥८२६६

६७४. कृतानि कर्माण्यशुभानि पूर्वं सन्तापमुग्रं जनयन्ति पश्चात्।
तस्माज्जनाः कर्म शुभं कुरुध्वं रवौ सति प्रस्खलनं न युक्तम् ॥८३।१३४

६७५. चिरं संसारकान्तारे भ्राम्यता पुण्यकर्मतः।
मानुष्यकमिदं कृच्छ्रात् प्राप्यते प्राणधारिणा ॥८५।१०९

६७६. जानानः को जनः कूपे क्षिपति स्वं महाशयः।
विषं वा कः पिबेत् को वा भृगौ निद्रां निषेवते ॥८५।१११

६७७. को वा रत्नेप्सया नागमस्तकं पाणिना स्पृशेत्।
विनाशकेषु कामेषु धृतिर्जायेत कस्य वा ॥८५।१११

६७८. सुकृतासक्तिरेकैव श्लाघ्या मुक्तिसुखावहा।
जनानां चञ्चलेऽत्यन्तं जीविते निस्पृहात्मनाम् ॥८५।११२

६७९. ईदृशी कर्मणां शक्तिर्यज्जीवाः सर्वयोनिषु।
वस्तुतो दुःखयुक्तासु प्राप्नुवन्ति परां रतिम् ॥ ८५।१६५

६८०. कर्मारण्यमिदं विहाय विषमं धर्मे रमध्वं बुधाः ॥८५।१७४

६८१. समुद्गते भव्यजनस्य कस्य रवौ प्रकाशेन न युक्तिरस्ति ॥ ८६।२७

६८२. तस्यैकस्य मतिः शुद्धा तस्य जन्मार्थसंगतम्।
विषान्नमिव यस्त्यक्त्वा राज्यं प्राव्रज्यमास्थितः ॥ ८८।१६

६८३. पूज्यता वर्ण्यतां तस्य कथं परमयोगिनः।
देवेन्द्रा अपि नो शक्ता यस्य वक्तुं गुणाकरम् ॥ ८८।१७

६८४. स्वेच्छाविधानमात्रं हि ननु राज्यमुदाहृतम् ॥ ८८।२४

६८५. तावदेव प्रपद्यन्ते भङ्गं भीत्यानुगामिनः।
यावत्स्वामिनमीक्षन्ते न पुरो विकचाननम् ॥ ८९।८५

६८६. प्रदीप्ते भवने कीदृक् तडागखननादरः।
को वा भुजङ्गदष्टस्य कालो मन्त्रस्य साधने ॥ ८९।१०२

६८७. नियताचारयुक्तानां प्रभवन्ति मनीषिणाम्।
भावा निरतिचाराणां श्लाघ्याः पूर्वकपुण्यजाः ॥ ९०।१०

६८८. सुरासुरपिशाचाद्या विभ्यति व्रतचारिणाम् ।
तावद् यावन्न ते तीक्ष्णं निश्चयासिं जहत्यहो ।। ९०।१२

६८९. मद्यामिषनिवृत्तस्य तावद्व्वस्तशतान्तरम् ।
लङ्घयन्ति न दुःसत्त्वा यावत् सालोऽस्य नैयमः ।। ९०।१३

६९०. प्रवीरः कातरैः शूरसहस्रेण च पण्डितः ।
सेव्यः किञ्चिद्भजेन्मूर्खमकृतज्ञं परित्यजेत् ।। ९०।१९

६९१. स्वप्न इव भवति चारुसंयोगः प्राणिनां यदा तनुकालः ।
जनयति परम तापं निदाघरविरश्मिजनिताधिकम् ।। ९०।२९

६९२. गृहस्थ शाखिनो वाऽपि यस्य च्छायां समाश्रयेत् ।
स्थीयते दिनमप्येकं प्रीतिस्तत्रापि जायते ।। ९१।४५

६९३. किं पुनर्यत्र भूयोऽपि जन्मभिः संगतिः कृता ।
संसारभावयुक्तानां जीवानामीदृशी गतिः ।। ९१।४६

६९४. धर्मेण रहितैर्लभ्यं न हि किञ्चित्सुखावहम् ।।९१।४८

६९५. अनेकमपि सञ्चित्य जन्तुर्दुःखमलक्षये ।
धर्मतीर्थे श्रुते (श्रयेत्) शुद्धिं जलतीर्थमनर्थकम् ।।९१।४९

६९६. श्रुत्वा परमं धर्मं न भवति येषां सदीहिते प्रीतिः ।
शुभनेत्राणां तेषां रविरुदितोऽनर्थकीभवति ।।९१।५१

६९७. साधुरूपं समालोक्य न मुञ्चत्यासनं तु यः ।
दृष्ट्वाऽपमन्यते यश्च स मिथ्यादृष्टिरुच्यते ।।९२।३४

६९८. बीजं शिलातले न्यस्तं सिच्यमानं सदापि हि ।
अनर्थकं यथा दानं तथा शीलेषु गेहिनाम् ।।९२।६६

६९९. साधुसमागमसक्ताः पुरुषाः सर्वमनीषितं सेवन्ते ।।९२।९२

७००. पूर्वं जनितपुण्यानां प्राणिनां शुभचेतसाम् ।
आरभ्य जन्मतः सर्वं जायते सुमनोहरम् ।।९४।३८

७०१. निर्मितानां स्वयं शश्वत् कर्मणामुचितं फलम् ।
ध्रुवं प्राणिभिराप्तव्यं न तच्छक्यनिवारणम् ।।९६।५

७०२. अथवा वेत्ति नारीणां चेतसः को विचेष्टितम् ।
दोषाणां प्रभवो यासु साक्षाद्वसति मन्मथः ।।९६।६१

७०३. धिक् स्त्रियं सर्वदोषाणामाकरं तापकारणम् ।
विशुद्धकुलजातानां पुंसां पङ्कं सुदुस्त्यजम् ।।९६।६२

७०४. अभिहन्त्रीं समस्तानां बलानां रागसंश्रयाम् ।
स्मृतीनां परमं भ्रंशं सत्यस्खलनखातिकाम् ।।९६।६३

७०५. विघ्नं निर्वाणसौख्यस्य ज्ञानप्रभवसूदनीम् ।
भस्मच्छन्नाग्निसङ्काशां दर्भसूचीसमानिकाम् ।।६६।६४

७०६. अकीर्त्तिः परमल्पापि याति वृद्धिमुपेक्षिता ।
कीर्त्तिरल्पापि देवानामपि नाथैः प्रयुज्यते ।।६७।१६

७०७. पश्याम्भोजवनानन्दकारिणस्तिग्मतेजसः ।
अस्तं यातस्य को रात्रौ सत्यामस्ति निवर्तकः ।।६७।१६

७०८. असत्त्वं वक्तु दुर्लोकः प्राणिनां शीलधारिणाम् ।
न हि तद्वचनात्तेषां परमार्थत्वमश्नुते ।।६७।२७

७०९. गृह्यमाणोऽतिकृष्णोऽपि विपद्‌दूषितलोचनैः ।
सितत्वं परमार्थेन न विमुञ्चति चन्द्रमाः ।।६७।२८

७१०. आत्मा शीलसमृद्धस्य जन्तोर्व्रजति साक्षिताम् ।
परमार्थाय पर्याप्तं वस्तुतत्त्वं न बाह्यतः ।।६७।२९

७११. नो पृथग्जनवादेन संक्षोभं यान्ति कोविदाः ।
न शुनो भषणाद्दन्ती वैलक्ष्यं प्रतिपद्यते ।।६७।३०

७१२. शिलामुत्पाट्य शीतांशुं जिघांसुर्मोहवत्सलः ।
स्वयमेव नरो नाशमसन्दिग्धं प्रपद्यते ।।६७।३२

७१३. किमनर्थकृतार्थेन सविषेणौषधेन किम् ।
किं वीर्येण न रक्ष्यन्ते प्राणिनो येन भीगताः ।।६७।३७

७१४. चारित्रेण न तेनार्थो येन नात्मा हितोद्भवः ।
ज्ञानेन तेन किं येन ज्ञातो नाध्यात्मगोचरः ।।६०।३८

७१५. प्रशस्तं जन्म नो तस्य यस्य कीर्त्तिवधूं वराम् ।
वली हरति दुर्वादस्ततस्तु मरणं वरम् ।।६७।३९

७१६. दर्शनं चिरसौख्यदम् ।।६७।१२१

७१७. रत्नं पाणितलं प्राप्तं परिभ्रष्टं महोदधौ ।
उपायेन पुनः केन सङ्गति प्रतिपद्यते ।।६७।१२३

७१८. क्षिप्त्वामृतफलं कूपे महाऽऽपत्तिभयङ्करे ।
परं प्रपद्यते दुःखं पश्चात्तापहतः शिशुः ।।६७।१२४

७१९. यस्य यत्सदृशं तस्य प्रवदत्वनिवारितः ।
को ह्यस्य जगतः कर्तुं शक्नोति मुखबन्धनम् ।।६७।१२५

७२०. धिग् भृत्यतां जगन्निद्यां यत्किञ्चनविधायिनीम् ।
परायत्तीकृतात्मानं क्षुद्रमानवसेविताम् ।।६७।१४०

७२१. यन्त्रचेष्टिततुल्यस्य दुःखैकनिहितात्मनः।
भृत्यस्य जीविताद् दूरं वरं कुक्कुरजीवितम् ।।६७।१४१

७२२. नरेन्द्रशक्तिवश्यः सन् निन्द्यनामा पिशाचवत्।
विदधाति न किं भृत्यः किं वा न परिभाषते ।।६७।१४२

७२३. चित्रचापसमानस्य निःकृत्यगुणधारिणः।
नित्यनम्रशरीरस्य निन्द्यं भृत्यस्य जीवितम् ।।६७।१४३

७२४. सङ्कारकूटकस्येव पश्चान्निर्वृत्तचेतसः।
निर्माल्यवाहिनो धिग्धिग्भृत्यनाम्नोऽसुधारणम् ।।६७।१४४

७२५. उन्नत्या त्रपया दीप्त्या वर्जितस्य निजेच्छया।
मा स्म भूज्जन्म भृत्यस्य पुस्तकर्मसमात्मनः ।।६७।१४६

७२६. विमानस्यापि मुक्तस्य गत्या गुरुतया समम्।
अधस्ताद् गच्छतो नित्यं धिग्भृत्यस्यासुधारणम् ।।६७।१४७

७२७. निःसत्त्वस्य महामांसविक्रयं कुर्वतः सदा।
निर्मदस्यास्वतन्त्रस्य धिग्भृत्यस्यासुधारणम् ।।६७।१४८

७२८. तिर्यगूर्ध्वमधस्ताद्वा स्थानं तन्नास्ति विष्टपे।
जीवेन यत्र न प्राप्ता जन्ममृत्युजरादयः ।।६८।८६

७२९. परिभ्रष्टं प्रमादेन महार्घगुणमुज्ज्वलम्।
रत्नं को न पुनर्विद्वानन्विष्यति महादरः ।।६८।१००

७३०. चरितं सत्पुरुषस्य व्यपगतदोषं परोपकारनिर्युक्तम्।
क्षपयति कस्य न शोकं जिनमतनिरतप्रगाढचेतस्य ।।६८।१०४

७३१. प्राप्तव्यं येन यल्लोके दुःखं कल्याणमेव वा।
स तं स्वयमवाप्नोति कुतश्चिद्व्यपदेशतः ।।६९।८६

७३२. आकाशमपि नीतः सन् वनं वा श्वापदाकुलम्।
मूर्धानं वा महीध्रस्य पुण्येन स्वेन रक्ष्यते ।।६९।८७

७३३. भास्करेण विना का द्यौः का निशा शशिना विना ? ६९।९५

७३४. नोपायः पश्चात्तापो मनीषिते ।।६९।१०३

७३५. उपदेशं ददत्पात्रे गुरुर्याति कृतार्थताम्।
अनर्थकः समुद्योतो रवेः कौशिकगोचरः ।।१००।५२

७३६. ईदृगेव हि धीराणां कुलशीलनिवेदनम्।
शस्यते न तु भारत्या तद्धि सन्देहभाजनम् ।।१०१।६०

७३७. प्रणाममात्रतः प्रीता जायन्ते मानशालिनः।
नोन्मूलयन्ति नद्योघा वेतसान् प्रणतात्मकान् ।।१०१।६५

७३८. रणे पृष्ठं न दीयते ॥१०३।२२

७३९. अनाथानामबन्धूनां दरिद्राणां सुदुःखिनम् ।
जिनशासनमेतद्धि शरणं परमं मतम् ॥१०४।७०

७४०. वरं हि मरणं श्लाघ्यं न वियोगः सुदुःसहः ।
द्युतिस्मृतिहरोऽसौ हि परमः कोऽपि निन्दितः ॥१०५।११

७४१. यावज्जीवं हि विरहस्तापं यच्छति चेतसः ।
मृतेति छिद्यते स्वैरं कथाकांक्षा च तद्गता ॥१०५।१२

७४२. रसनस्पर्शनासक्ता जीवास्तत्कर्म कुर्वते ।
गरिष्ठा नरके येन पतन्त्यायसपिण्डवत् ॥१०५।११६

७४३. हिंसावितथचौर्यान्यस्त्रीसङ्गादनिवर्तनाः ।
नरकेषूपजायन्ते पापभारगुरूकृताः ॥१०५।११७

७४४. मनुष्यजन्म सम्प्राप्य सततं भोगसङ्गताः ।
जनाः प्रचण्डकर्माणो गच्छन्ति नरकावनिम् ॥१०५।११८

७४५. विधाय कारयित्वा च पापं समनुमोद्य च ।
रौद्रार्त्तप्रवणा जीवा यान्ति नारकवीजताम् ॥१०५।११९

७४६. तस्मात्फलमधर्मस्य ज्ञात्वेदमतिदुःसहम् ।
प्रशान्तहृदयाः सन्तः सेवध्वं जिनशासनम् ॥१०५।१३९

७४७. यथा सुवर्णपिण्डस्य वेष्टितस्यायसा भृशम् ।
आत्मीया नश्यति च्छाया तथा जीवस्य कर्मणः ॥१०५।१७८

७४८. मृत्युजन्मजराव्याधिसहस्रैः सततं जनाः ।
मानसैश्च महादुःखैः पीड्यन्ते सुखमत्र किम् ॥१०५।१७९

७४९. असिधारामधुस्वादसमं विषयजं सुखम् ।
दग्धे चन्दनवद्दिव्यं चक्रिणां सविषान्नवत् ॥१०५।१८०

७५०. ध्रुवं परमनाबाधमुपमानविवर्जितम् ।
आत्मस्वाभाविकं सौख्यं सिद्धानां परिकीर्त्तितम् ॥१०५।१८१

७५१. सुप्त्या किं ध्वस्तनिद्राणां नीरोगाणां किमौषधैः ?
सर्वज्ञानां कृतार्थानां किं दीपतपनादिना ? १०५।१८२

७५२. आयुधैः किमभीतानां निर्मुक्तानामरातिभिः ।
पश्यतां विपुलं सर्वसिद्धार्थानां किमीहया ॥१०५।१८३

७५३. महात्मसुखतृप्तानां किं कृत्यं भोजनादिना ।
देवेन्द्रा अपि यत्सौख्यं वाञ्छन्ति सततोन्मुखाः ॥१०५।१८४

७५४. सुखं नापरमुत्कृष्टं विद्यते सिद्धसौख्यतः ॥१०५।१९०

७५५. गत्यागतिविमुक्तानां प्रक्षीणक्लेशसम्पदाम् ।
लोकशेखरभूतानां सिद्धानामसमं सुखम् ।।१०५।१९४

७५६. जिनेन्द्रशासनादन्यशासने रघुनन्दन ।
न सर्वयत्नयोगेऽपि विद्यते कर्मणां क्षयः ।।१०५।२०४

७५७. भार्यावाटीप्रविष्टः सन् मनुष्यो वनवारणः ।
विषयामिषसक्तश्च मत्स्यो वन्धं समश्नुते ।।१०५।२५७

७५८. मोक्षो निगडवद्धस्य भवेदन्धाच्च कूपतः ।
निवद्धः स्नेहपाशैस्तु ततः कृच्छ्रेण मुच्यते ।।१०५।२५९

७५९. बोधिं मनुष्यलोकेऽपि जैनेन्द्रीं सुष्ठु दुर्लभाम् ।
प्राप्नुमर्हत्यभव्यस्तु नैव मार्गं जिनोदितम् ।।१०५।२६०

७६०. घनकर्मकलङ्काक्ता अभव्या नित्यमेव हि ।
संसारचक्रमारूढा भ्राम्यन्ति क्लेशवाहिताः ।।१०५।२६१

७६१. सन्धावतोऽस्य संसारे कर्मयोगेन देहिनः ।
कृच्छ्रेण महता प्राप्तिर्मुक्तिमार्गस्य जायते ।।१०६।९४

७६२. सन्ध्याबुद्बुदफेनोर्मिविद्युदिन्द्रधनुःसमः ।
भङ्गुरत्वेन लोकोऽयं न किञ्चिदिह सारकम् ।।१०६।९५

७६३. नरके दुःखमेकान्तादेति तिर्यक्षु वाऽसुमान् ।
मनुष्यत्रिदशानां च सुखेनैवैष तृप्यति ।। १०६।९६

७६४. माहेन्द्रभोगसम्पद्भिर्यो न तृप्तिमुपागतः ।
स कथं क्षुद्रकैस्तृप्तिं व्रजेन्मनुजभोगकैः ।। १०६।९७

७६५. कथञ्चिद् दुर्लभं लब्ध्वा निधानमधनो यथा ।
नरत्वं मुह्यति व्यर्थं विषयास्वादलोभतः ।। १०६।९८

७६६. काग्नेः शुष्केन्धनैस्तृप्तिः काम्बुधेरापगाजलैः ।
विषयास्वादसौख्यैः का तृप्तिरस्य शरीरिणः ।। १०६।९९

७६७. मज्जन्निव जले खिन्नो विषयामिषमोहितः ।
दक्षोऽपि मन्दतामेति तमोऽन्धीकृतमानसः ।। १०६।१००

७६८. दिवा तपति तिग्मांशुर्मदनस्तु दिवानिशम् ।
समस्ति वारणं भानोर्मदनस्य न विद्यते ।। १०६।१०१

७६९. जन्ममृत्युजरादुःखं संसारे स्मृतिभीतिदम् ।
अरहट्टघटीयन्त्रसन्ततं कर्मसम्भवम् ।। १०६।१०२

७७०. अजङ्गमं यथाऽन्येन यन्त्रं कृतपरिभ्रमम् ।
शरीरमध्रुवं पूति तथा स्नेहोऽत्र मोहतः ।। १०६।१०३

७७१. जलबुद्बुदनिःसारं ज्ञात्वा मनुजसम्भवम् ।
निर्विण्णाः कुलजा मार्गं प्रपद्यन्ते जिनोदितम् ।। १०६।१०४

७७२. उत्साहकवचच्छन्ना निश्चयाश्वस्थसादिनः ।
ध्यानखड्गधरा धीराः प्रस्थिताः सुगतिं प्रति ।। १०६।१०५

७७३. अन्यच्छरीरमन्योऽहमिति सञ्चिन्त्य निश्चिताः ।
त्यक्त्वा शरीरके स्नेहं धर्मं कुरुत मानवाः ।। १०६।१०६

७७४. सुखदुःखादयस्तुल्याः स्वजनेतरयोः समाः ।
रागद्वेषविनिर्मुक्ताः श्रमणाः पुरुषोत्तमाः ।। १०६।१०७

७७५. भारत्यपि न वक्तव्या दुरितादानकारिणी ।। १०६।२२४

७७६. धारयन्ति न निर्यातं वह्निज्वालाकुलालयात् ।
दयावन्तो यथा तद्वद् दुःखतप्ताद् भवादपि ।। १०७।१०

७७७. कदाचिच्चलति प्रेम न्यस्तं भर्त्तरि योषिताम् ।
स्वस्तन्यकृतपोषेषु जातेषु न तु जातुचित् ।। १०७।६२

७७८. एवं विदित्वा सुलभौ नितान्तं जीवस्य लोके पितरौ सदैव ।
कर्त्तव्यमेतद् विदुषां प्रयत्नाद्विमुच्यते येन शरीरदुःखात् ।। १०८।५१

७७९. विमुच्य सर्वं भववृद्धिहेतुं कर्मोरुदुःखप्रभवं जुगुप्सम् ।
कृत्वा तपो जैनमतोपदिष्टं रविं तिरस्कृत्य शिवं प्रयांत ।। १०८।५२

७८०. संसारस्य स्वभावोऽयं रङ्गमध्ये यथा नरः ।
राजा भूत्वा भवेद्भृत्यः प्रेष्यश्च प्रभुतां व्रजेत् ।। १०९।६७

७८१. एवं पिताऽपि तोकत्वमेति तोकश्च तातताम् ।
माता पत्नीत्वमायाति पत्नी चायाति मातृताम् ।। १०९।६८

७८२. उद्घाटनघटीयन्त्रसदृशेऽस्मिन् भवात्मनि ।
उपर्यधरतां यान्ति जीवाः कर्मवशं गताः ।। १०९।६९

७८३. साधून्वीक्ष्य जुगुप्सन्ते सद्योऽनर्थं प्रयान्ति ते ।
न पश्यन्त्यात्मनो दौष्ट्यं दोषं कुर्वन्ति साधुषु ।। १०९।११२

७८४. यथाऽऽदर्शतले कश्चिदात्मानमवलोकयन् ।
यादृशं कुरुते वक्त्रं तादृशं पश्यति ध्रुवम् ।।
तद्वत्साधुं समालोक्य प्रस्थानादिक्रियोद्यतः ।
यादृशं कुरुते भावं तादृक्षं लभते फलम् ।। १०९।११३-११४

७८५. प्ररोदनं प्रहासेन कलहं परुषोक्तितः ।
वधेन मरणं प्रोक्तं विद्वेषेण च पातकम् ।। १०९।११५

७८६. साधोर्नियुक्तेन परिनिन्द्येन वस्तुना।
फलेन तादृशेनैव कर्त्ता योगमुपाश्नुते ॥ १०६।११६

७८६. (अ) को दोषोऽन्यप्रियारतौ ? १०६।१५३

७८७. ये पारदारिका दुष्टा निग्राह्यास्ते न संशयः ॥ १०६।१५४

७८८. दण्ड्याः पञ्चकदण्डेन निर्वास्याः पुरुषाधमाः।
स्पृशन्तोऽप्यबलामन्यां भाषयन्तोऽपि दुर्मताः ॥
सन्मूढाः परदारेषु ये पापादनिवर्त्तिनः।
अधःप्रपतनं येषां ते पूज्याः कथमीदृशाः ॥ १०६।१५५-१५६

७८९. यथा राजा तथा प्रजा ॥ १०६।१५६

७९०. येन बीजा प्ररोहन्ति जगतो यच्च जीवनम्।
जातस्ततो जलाद्वह्निः किमिहापरमुच्यताम् ॥ १०६।११६

७९१. भोगसंवर्तनो (येन) कर्मणा नावमुच्यते ॥ १०६।१६३

७९२. सतां हि साधुसम्बन्धाच्चित्तमानन्दमीयते ॥ ११०।२५

७९३. स्वभावाद्वनिता जिह्मा विशेषादन्यचेतसः।
ततः सुहृदयस्तासामर्थे को विकृतिं भजेत् ॥ ११०।३१

७९४. अथवा विस्मयः कोऽत्र किमपीदं जगद्गतम्।
कर्मवैचित्र्ययोगेन विचित्रं यच्चराचरम् ॥ ११०।३९

७९५. प्रागेव यदवाप्तव्यं येन यत्र यथा यतः।
तत्परिप्राप्यतेऽवश्यं तेन तत्र तथा ततः ॥ ११०।४०

७९६. रम्भास्तम्भसमानानां निःसाराणां हतात्मनाम्।
कामानां वशगाः शोकं हास्यं नो कर्त्तुमर्हथ ॥ ११०।४४

७९७. सर्वे शरीरिणः कर्मवशे वृत्तिमुपाश्रिताः।
न तत्कुरुथ किं येन तत्कर्म परिणश्यति ॥ ११०।४५

७९८. गहने भवकान्तारे प्रणष्टाः प्राणधारिणः।
ईदृक्षि यान्ति दुःखानि निरस्यत ततस्तकम् ॥ ११०।४६

७९९. भवानां किल सर्वेषां दुर्लभो मानुषो भवः।
प्राप्य तं स्वहितं यो न कुरुते स तु वञ्चितः ॥ ११०।४९

८००. ऐश्वर्यं पात्रदानेन तपसा लभते दिवम्।
ज्ञानेन च शिवं जीवो दुःखदां गतिमंहसा ॥ ११०।५०

८०१. विद्युदाकालिकं ह्येतज्जगत्सारविवर्जितम् ॥ ११०।५५

८०२. नास्य माता पिता भ्राता बान्धवाः सुहृदोऽपि वा।
सहायाः कर्मतन्त्रस्य परित्राणं शरीरिणः ॥ ११०।५८

८०३. अतृप्त एव भोगेषु जीवो दुर्मित्रविभ्रमः ।
इमं विमोक्ष्यते देहं किं प्राप्तं जायते तदा ।। ११०।६१

८०४. मातरः पितरोऽन्ये च संसारेऽनन्तशो गताः ।
स्नेहबन्धनमेतानामेतद्धि चारकं गृहम् ।। ११०।७२

८०५. पापस्य परमारम्भं नानादुःखाभिवर्द्धनम् ।
गृहपञ्जरकं मूढाः सेवन्ते न प्रवोधिनः ।। ११०।७३

८०६. शारीरं मानसं दुःखं मा भूद् भूयोऽपि नो यथा ।
तथा सुनिश्चिताः कुर्मः किं वयं स्वस्य वैरिणः ।। ११०।७४

८०७. निर्दोषोऽहं न मे पापमस्तीत्यपि विचिन्तयन् ।
मलिनत्वं गृही याति शुक्लांशुकमिव स्थितम् ।। ११०।७५

८०८. उत्थायोत्थाय यन्नृणां गृहाश्रमनिवासिनाम् ।
पापे रतिस्ततस्त्यक्तो गृहिधर्मो महात्मभिः ।।११०।७६

८१०. पिवन्तं मृगकं यद्वद् व्याधो हन्ति तृषा जलम् ।
तथैव पुरुषः मृत्युर्हन्ति भोगैरतृप्तकम् ।।११०।७८

८११. विषयप्राप्तिसंसक्तमस्वतन्त्रमिदं जगत् ।
कामैराशीविषैः साकं क्रीडत्यज्ञानमौषधम् ।।११०।७९

८१२. जगत्स्वकर्मणां वश्यम् ।११०।८१

८१३. ध्रुवं यदा समासाद्यो विरहो वन्धुभिः समम् ।
असमञ्जसरूपेऽस्मिन्संसारे का रतिस्तदा ।।११०।८३

८१४. अयं मे प्रिय इत्याऽऽस्था व्यामोहोपनिवन्धना ।
एक एव यतो जन्तुर्गत्यागमनदुःखभाक् ।।११०।८४

८१५. नानायोनिषु संभ्रम्य कृच्छ्रात्प्राप्ता मनुष्यताम् ।
कुर्मस्तथा यथा भूयो मज्जामो नात्र सागरे ।।११०।८६

८१६. सर्वारम्भविरहिता विहरन्ति नित्यं निरम्बरा विधियुक्तम् ।
क्षान्ता दान्ता मुक्ता निरपेक्षाः परमयोगिनो ध्यानरताः ।।११०९३

८१७. तृष्णाविषादहन्तृणां क्षणमप्यस्ति नो शमः ।
मूर्धोपकण्ठदत्ताङ्घ्रिर्मृत्युः कालमुदीक्षते ।।१११।१४

८१८. अस्य दग्धशरीरस्य कृते क्षणविनाशिनः ।
हताशः कुरुते किं न जीवो विषयदासकः ।।१११।१५

८१९. ज्ञात्वा जीवितमानाय्यं त्यक्त्वा सर्वपरिग्रहम् ।
स्वहिते वर्त्तते यो न स नश्यत्यकृतार्थकः ।।१११।१६

८२०. सहस्रेणापि शास्त्राणां किं येनात्मा न शाम्यति।
तृप्तमेकपदेनापि येनात्मा शममश्नुते ॥१११।१७

८२१. कर्तुमिच्छति सद्धर्मं न करोति यथाप्ययम्।
दिवं यियासुर्विच्छिन्नपक्षकाक इव श्रमम् ॥१११।१८

८२२. विमुक्तो व्यवसायेन लभते चेत्समीहितम्।
न लोके विरही कश्चिद्भवेदद्रविणोऽपि वा ॥१११।१९

८२३. अतिथिं द्वारगतं साधुं गुरुवाक्यं प्रतिक्रियाम्।
प्रतीक्ष्य सुकृतं चाशु नावसीदति मानवः ॥१११।२०

८२४. नानाव्यापारशतैराकुलहृदयस्य दुःखिनः प्रतिदिवसम्।
रत्नमिव करतलस्थं भ्रश्यत्यायुः प्रमादतः प्राणभृतः ॥१११।२१

८२६. जिनचन्द्रार्चनन्यस्तविकासिनयनाः जनाः।
नियमावहितात्मानः शिवं निदधते करे ॥११२।६३

८२६. न तेषां दुर्लभं किञ्चित् कल्याणं शुद्धचेतसाम्।
ये जिनेन्द्रार्चनासक्ता जना मंगलदर्शनाः ॥११२।६४

८२७. श्रावकान्वयसम्भूतिर्भक्तिर्जिनवरे दृढ़ा।
समाधिनावसानं च पर्याप्तं जन्मनःफलम् ॥११२।६५

८२८. हा कष्टं संसारे नास्ति तत्पदम्।
यत्र न क्रीडति स्वेच्छं मृत्युः सुरगणेष्वपि ॥११२।७७

८२९. तडिदुल्कातरङ्गातिभङ्गुरं जन्म सर्वतः।
देवानामपि यत्र स्यात् प्राणिनां तत्र का कथा ॥११२।७८

८३०. अनन्तशो न भुक्तं यत्संसारे चेतनावता।
न तदास्ति सुखं नाम दुःखं वा भुवनत्रये ॥११२।७९

८३१. अहो मोहस्य माहात्म्यं परमेतद्‌बलान्वितम्।
एतावन्तं यतः कालं दुःखपर्यटितं भवेत् ॥११२।८०

८३२. उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यौ भ्रान्त्वा कृच्छ्रात्सहस्रशः।
अवाप्यते मनुष्यत्वं कष्टं नष्टमनाप्तवत् ॥११२।८१

८३३. विनश्वरसुखासक्ताः सौहित्यपरिवर्जिताः।
परिणामं प्रपद्यन्ते प्राणिनस्तापसङ्कटम् ॥१११।८२

८३४. चलान्युत्पथवृत्तानि दुःखदानि पराणि च।
इन्द्रियाणि न शाम्यन्ति विना जिनपथाश्रयात् ॥११२।८३

८३५. आनायेन यथा दीना बध्यन्ते मृगपक्षिणः।
तथा विषयजालेन बध्यन्ते मोहिनो जनाः ॥११२।८४

८३६. आशीविषसमानैर्यो रमते विषयैः सभम् ।
परिणामे स मूढात्मा दह्यते दुःखवह्निना ॥११२।८५

८३७. को ह्येकदिवसं राज्यं वर्षमन्विष्य यातनाम् ।
प्रार्थयेत विमूढात्मा तद्वद्विषयसौख्यभाक् ॥११२।८६

८३८. कदाचिद् बुद्ध्यमानोऽपि मोहतस्करवञ्चितः ।
न करोति जनः स्वार्थं किमतः कष्टमुत्तमम् ॥११२।८७

८३९. मुक्त्वा त्रिविष्टपे धर्मं मनुष्यभवसञ्चितम् ।
पश्चान्मुषितवद्दीनो दुःखी भवति चेतनः ॥११२।८८

८४०. भुक्त्वापि त्रैदशान् भोगान् सुकृते क्षयमागते ।
शेषकर्मसहायः सन् चेतनः क्वापि गच्छति ॥११२।८९

८४१. जन्तोर्निजं कर्म बान्धवः शत्रुरेव वा ॥११२।९०

८४२. तदलं निन्दितैरेभिर्भोगैः परमदारुणैः ।
विप्रयोगः सहामीभिरवश्यं येन जायते ॥११२।९१

८४३. श्रीमत्यो हरिणीनेत्रा योषिद्गुणसमन्विताः ।
अत्यन्तदुस्त्यजा मुग्धाः ॥११२।९३

८४४. दीर्घं कालं रन्त्वा नाके गुणयुवतीभिः सुविभूतिभिः ।
मर्त्यक्षेत्रेऽप्यसमं भूयः प्रमदवरललितवनिताजनैः परिललितः ।
को वा यातस्तृप्तिं जन्तुर्विविधविषयसुखरतिभिर्नदीभिरिवोदधिः ।
नानाजन्मश्रान्त श्रान्त व्रज हृदय !
शममपि किमाकुलितं भवेत् ॥११२।९५-९६

८४५. किं न श्रुता नरकभीमविरोधरौद्र-
स्तीव्रासिपत्रवनसङ्कटदुर्गमार्गाः ॥११२।९७

८४६. उत्तरन्तं भवाम्भोधिं तत्रैव प्रक्षिपन्ति ये ।
हितास्ते कथमुच्यन्ते वैरिणः परमार्थतः ॥११३।७

८४७. माता पिता सुहृद्भ्राता न तदागात्सहायताम् ।
यदा नरकवासेषु प्राप्तं दुःखमनुत्तमम् ॥११३।८

८४८. मानुष्यं दुर्लभं प्राप्य बोधिं च जिनशासने ।
प्रमादो नोचितः कर्त्तुं निमेषमपि धीमतः ॥११३।९

८४९. देवासुरमनुष्येन्द्राः स्वकर्मवशवर्तिनः ।
कालदावानलालीढाः के वा न प्रलयं गताः ॥११३।११

८५०. गताऽऽगमविधेर्दातृ मत्तोऽपि सुमहाबलम् ।
अपरं नाम कर्मास्ति ॥११३।१३

८५१. महामहाजनः प्रायो रतिवद्धिरतौ भृशम् ।।११३।४२

८५२. सन्तं सन्त्यज्य ये भोगं प्रव्रजन्त्यायतेक्षणाः ।
नूनं ग्रहगृहीतास्ते वायुना वा वशीकृताः ।।११४।२

८५३. भुज्यमानाऽल्पसौख्येन संसारपदमीयुषाम् ।
प्रायो विस्मयते सौख्यं श्रुतमप्यतिसंसृति ।।

८५४. सर्वेषां बन्धनानां तु स्नेहबन्धो महादृढ़ः ।।११४।४९

८५५. हस्तपादांगबद्धस्य मोक्षः स्यादसुधारिणः ।
स्नेहबन्धनबद्धस्य कुतो मुक्तिर्विधीयते ।।११४।५०

८५६. योजनानां सहस्राणि निगडैः पूरितो व्रजेत् ।
शक्तो नांगुलमप्येकं बद्धः स्नेहेन मानवः ।।११४।५१

८५७. कर्मणामिदमीदृशमीहितं बुद्धिमानपि यदेति विमूढताम् ।
अन्यथा श्रुतसर्वनिजायतिः कः करोति न हितं सचेतनः ।।११४।५४

८५८. कृत्यमत्र भवारिविनाशनं यत्नमेत्य परमं सुचेतसा ।।११४।५५

८५९. अप्रेक्ष्यकारिणां पापमानसानां हतात्मनाम् ।
अनुष्ठितं स्वयं कर्म जायते तापकारणम् ।।११५।१९

८६०. धिगसारं मनुष्यत्वं नाऽतोऽस्त्यन्यन्महाधमम् ।
मृत्युर्यच्छत्यवस्कन्दं यदज्ञातो निमेषतः ।।११५।५५

८६१. यो न निर्व्यूहितुं शक्यः सुरविद्याधरैरपि ।
नारायणोऽप्यसौ नीतः कालपाशेन वश्यताम् ।।११५।५६

८६२. आनाय्येन शरीरेण किमनेन धनेन च ? ११५।५७

८६३. कर्मनियोगेनैवं प्राप्तेऽवस्थामशोभनामाप्तजने ।
सशोकं वैराग्यं च प्रतिपद्यन्ते विचित्रचित्ताः पुरुषाः ।।११५।६३

८६४. कालं प्राप्य जनानां किञ्चिच्च निमित्त मात्रकं परभावम् ।
सम्बोधरविरुदेति स्वकृतविपाकेऽन्तरंगहेतौ जाते ।।११५।६४

८६५. न कृशानुर्दहत्येवं नैवं शोषयते विषम् ।
उपमानविनिर्मुक्तं यथा भ्रातुः परायणम् ।।११६।१८

८६६. जातेनावश्यमर्त्तव्यमत्र संसारपञ्जरे ।
प्रतिक्रियास्ति नो मृत्योरुपायैर्विविधैरपि ।।११७।८

८६७. आनाय्ये नियतं देहे शोकस्यालम्बनं मुधा ।
उपायैर्हि प्रवर्त्तन्ते स्वार्थस्य कृतबुद्धयः ।।११७।९

८६८. आक्रन्दितेन नो कश्चित्परलोकगतो गिरम् ।
प्रयच्छति ।।११७।१०

८६९. नारीपुरुषसंयोगाच्छरीराणि शरीरिणाम् ।
उत्पद्यन्ते व्ययन्ते च प्राप्तसाम्यानि बुद्बुदैः ।।११७।११

८७०. लोकपालसमेतानामिन्द्राणामपि नाकतः ।
नष्टा योनिजदेहानां प्रच्युतिः पुण्यसंक्षये ।।११७।१२

८७१. गर्भाक्लिष्टे रुजाकीर्णे तृणविन्दुचलाचले ।
क्लेदकैकससङ्घाते काऽऽस्था मर्त्यशरीरके ।।११७।१३

८७२. अजरामरणंमन्यः किं शोचति जनो मृतम् ।
मृत्युदंष्ट्रान्तरक्लिष्टमात्मानं किं न शोचति ।। ११७।१४

८७३. यदैव हि जनो जातो मृत्युनाधिष्ठितस्तदा ।
तत्र साधारणे धर्मे ध्रुवे किमिति शोच्यते ।। ११७।१६

८७४. अभीष्टसङ्गमाकांक्षो मुधा शुष्यति शोकवान् ।
शबरार्त्त इवारण्ये चमरः केशलोभतः ।। ११७।१७

८७५. लोकस्य साहसं पश्य निर्भीस्तिष्ठति यत्पुरः ।
मृत्योर्वज्राग्रदण्डस्य सिंहस्येव कुरङ्गकः ।। ११७।१९

८७६. संसारमण्डलापन्नं दह्यमानं सुगन्धिना ।
सदा च विन्ध्यदावाभं भुवनं किं न वीक्षसे ।। ११७।२१

८७७. पर्यट्य भवकान्तारं प्राप्य कामभुजिष्यताम् ।
मत्तद्विपा इवाऽऽयान्ति कालपाशस्य वश्यताम् ।। ११७।२२

८७८. धर्ममार्गं समासाद्य गतोऽपि त्रिदशालयम् ।
अशाश्वततया नद्या पात्यते तटवृक्षवत् ।। ११७।२३

८७९. सुरमानवनाथानां चयाः शतसहस्रशः ।
निधनं समुपानीताः कालमेघेन वह्लयः ।। ११७।२४

८८०. दूरमम्वरमुल्लङ्घ्य समापत्य रसातलम् ।
स्थानं तन्न प्रपश्यामि यच्च मृत्योरगोचरः ।। ११७।२५

८८१. षष्ठकालक्षये सर्वं क्षीयते भारतं जगत् ।
धराधरा विशीर्यन्ते मर्त्यकाये तु का कथा ।।

८८२. वज्रर्षभवपुर्बद्धा अप्यवध्याः सुरासुरैः ।
नन्वनित्यतया लब्धा रम्भागर्भोपमैस्तु किम् ।। ११७।२७

८८३. जनन्यापि समाश्लिष्टं मृत्युर्हरति देहिनम् ।
पातालान्तर्गतं यद्वत् काद्रवेयं द्विजोत्तमः ।। ११७।२८

८८४. हा भ्रातर्दयिते पुत्रेत्येवं क्रन्दन् सुदुःखितः ।
कालाहिना जगद्व्यङ्गो ग्रासतामुपनीयते ।। ११७।३०

८८५. करोम्येतत्करिष्यामि वदत्येवमनिष्टधीः।
जनो विशति कालास्यं भीमं पोत इवार्णवम् ॥ ११६।३०

८८६. जनं भवान्तरं प्राप्तमनुगच्छेज्जनो यदि।
द्विष्टैरिष्टैश्च नो जातु जायेत विरहस्ततः ॥ ११७।३१

८८७. परे स्वजनमानी यः कुरुते स्नेहसम्मतिम्।
विशति क्लेशवह्नि स मनुष्यकलभो ध्रुवम् ॥ ११७।३२

८८८. स्वजनौघाः परिप्राप्ताः संसारे येऽसुधारिणाम्।
सिन्धुसैकतसङ्घाता अपि सन्ति न तत्समाः ॥ ११७।३३

८८९. य एव लालितोऽन्यत्र विविधप्रियकारिणा।
स एव रिपुतां प्राप्तो हन्यते तु महारुषा ॥ ११७।३४

८९०. पीतौ पयोधरौ यस्य जीवस्य जननान्तरे।
त्रस्ताहतस्य तस्यैव खाद्यते मांसमत्र धिक् ॥ ११७।३५

८९१. स्वामीति पूजितः पूर्वं यः शिरोनमनादिभिः।
स एव दासतां प्राप्तो हन्यते पादताडनैः ॥ ११७।३६

८९२. विभोः पश्यत मोहस्य शक्ति येन वशीकृतः।
जनोऽन्विष्यति संयोगं हस्तेनेव महोरगम् ॥ ११७।३७

८९३. प्रदेशस्तिलमात्रोऽपि विष्टपे न स विद्यते।
यत्र जीवः परिप्राप्तो न मृत्युं जन्म एव वा ॥ ११७।३८

८९४. ताम्रादिकलिलं पीतं जीवेन नरकेषु यत्।
स्वयम्भूरमणे तावत्सलिलं नहि विद्यते ॥ ११७।३९

८९५. वराहभवयुक्तेन यो नीहारोऽशनीकृतः।
मन्ये विन्ध्यसहस्रेभ्यो बहुशोऽत्यन्तदूरतः ॥ ११७।४०

८९६. परस्परस्वनाशेन कृता या मूर्द्धसंहतिः।
ज्योतिषां मार्गमुल्लङ्घ्य यायात्सा यदि रुध्यते ॥ ११७।४१

८९७. शर्कराधरणीयातैर्दुःखं प्राप्तमनुत्तमम्।
श्रुत्वा तत्कस्य रोचेत मोहेन सह मित्रता ॥ ११७।४२

८९८. विरुद्धा अपि हंसस्य खद्योताः किं नु कुर्वते ?
यस्याभीषुसहस्राप्तं परिजाज्वल्यते जगत् ॥ ११८।५७

८९९. महान्न मरणेऽप्यस्ति गुणो जीवन् हि मानवः।
कदाचिदेति कल्याणं स्वकर्मपरिपाकतः ॥ ११८।५९

९००. परेतं सिञ्चसे मूढ कस्मादेनमनोकहम् ?
कलेवरे हलं ग्राविण बीजं हारयसे कुतः ? ११८।७८

९०१. नीरनिर्मंथने लब्धिर्नवनीतस्य किं कृता।
बालुकापीडनाद् बालस्नेंहः सञ्जायतेऽथ किम् ॥ ११८।७६

९०२. बालाग्रमात्रकं दोषं परस्य क्षिप्रमीक्षसे।
मेरुकूटप्रमाणान् स्वान् कथं दोषान्न पश्यसि ॥ ११८।८७

९०३. सदृशः सदृशेष्वेव रज्यन्ति ॥ ११८।८८

९०४. अहो तृणाग्रसंसक्तजलविन्दुचलाचलम्।
मनुष्यजीवितं यद्वत्क्षणान्नाशमुपागतम् ॥११८।१०३

९०५. कस्येष्टानि कलत्राणि कस्यार्थाः कस्य बान्धवाः।
संसारे सुलभं ह्येतद् बोधिरेका सुदुर्लंभा ॥११८।१०५

९०६. तेषां सर्वसुखान्येव ये श्रामण्यमुपागताः ॥११८।११०

९०७. कामोपभोगेषु मनोहरेषु सुहृत्सु सम्बन्धिषु बान्धवेषु।
वस्तुष्वभीष्टेषु च जीवितेषु कस्यास्ति तृप्तिर्नृरवे भवेऽस्मिन् ॥११८।१२७

९०८. किमनेन समस्तेन विनाशित्वावसादिना ? ११९।२१

९०९. सनातननिराबाधपरातिशयसौख्यदम्।
मनीषितं परं युक्तं जिनधर्मं वगाहितुम् ॥११९।२२

९१०. जैने शक्त्या च भक्त्या च शासने सङ्गतत्पराः।
जना बिभ्रति लभ्यार्थं जन्म मुक्तिपदान्तिकम् ॥११९।५६

९११. जिनाक्षरमहारत्ननिधानं प्राप्य भो जनाः।
कुलिङ्गसमयं सर्वं परित्यजत दुःखदम् ॥११९।५७

९१२. कुग्रन्थैर्मोहितात्मानः सदम्भकलुषक्रियाः।
जात्यन्धा इव गच्छन्ति त्यक्त्वा कल्याणमन्यतः ॥११९।५८

९१३. नानोपकरणं दृष्ट्वा साधनं शक्तिवर्जिताः।
निर्दोषमिति भाषित्वा गृह्णते मुखराः परे ॥११९।५९

९१४. व्यर्थमेव कुलिङ्गास्ते मूढैरन्यैः पुरस्कृताः।
प्रखिन्नतनवो भारं वहन्ति मृतका इव ॥११९।५०

९१५. ऋषयस्ते खलु येषां परिग्रहे नास्ति याचने वा बुद्धिः ॥११९।५१

९१६. कर्मणः पश्यताधानं ही शुभाशुभयोः पृथक्।
विचित्रं जन्म लोकस्य ॥१२२।१७

९१७. कुर्वन्तु वाञ्छितं वाह्याः क्रियाजालमनेकधा।
प्रच्यवन्ते न तु स्वार्थात्परमार्थविचक्षणाः ॥१२२।६३

९१८. किमनेनाभिमानेन परमानर्थहेतुना ॥१२३।१९

९१९. अदृष्टलोकपर्यन्ता हिंसानृतपरस्विनः।
रौद्रध्यानपराः प्राप्ता नरकस्थं प्रतिद्विषः॥१२३।२८

९२०. भोगाधिकारसंसक्तास्तीव्रक्रोधादिरञ्जिताः।
विकर्मनिरता नित्यं सम्प्राप्ता दुःखमीदृशम्॥ १२३।२९

९२१. अहो मोहस्य माहात्म्यं यत्स्वार्थादपि हीयते॥ १२३।३४

९२२. विषयामिषलुब्धानां प्राप्तानां नरकासुखम्।
स्वकृतप्राप्तिवश्यानां किं करिष्यन्ति देवताः॥ १२३।४०

९२३. एतत्स्वोपचितं कर्म भोक्तव्यम्। १२३।४१

९२४. कर्मप्रमथनं शुद्धं पवित्रं परमार्थदम्।
अप्राप्तपूर्वमाप्तं वा दुर्गृहीतं प्रमादिनाम्॥ १२३।४४

९२५. दुर्विज्ञेयमभव्यानां बृहद्भवभयानकम्।
कल्याणं दुर्लभं सुष्ठु सम्यग्दर्शनमूर्जितम्॥ १२३।४५

९२६. अर्हद्भिर्गदिता भावा भगवद्भिर्महोत्तमैः।
तथैवेति दृढं भक्त्या सम्यग्दर्शनमिष्यते॥ १२३।४८

९२७. मुक्तिर्वैराग्यनिष्ठस्य रागिणो भवमज्जनम्॥ १२३।७४

९२८. अवलम्ब्य शिलां कण्ठे दोर्भ्यां तर्त्तुं न शक्यते।
नदी तद्वन्न रागाद्यैस्तरितुं संसृतिः क्षमा॥ १२३।७५

९२९. ज्ञानशीलगुणासङ्गैस्तीर्यते भवसागरः।
ज्ञानानुगतचित्तेन गुरुवाक्यानुवर्त्तिना॥ १२३।७६

९३०. आदिमध्यावसानेषु वेदितव्यमिदं बुधैः।
सर्वेषां यन्महातेजाः केवली ग्रसते गुणान्॥ १२३।७७

९३१. पात्रभूतान्नदानाच्च शक्त्याढ्यास्तर्पयन्ति ये।
ते भोगभूमिमासाद्य प्राप्नुवन्ति परं पदम्॥ १२३।१०६

९३२. स्वर्गे भोगं प्रभुञ्जन्ति भोगभूमेश्च्युता नराः।
तत्रस्थानां स्वभावोऽयं दानैर्भोगस्य सम्पदः॥ १२३।१०७

९३३. दानतो सातप्राप्तिश्च स्वर्गमोक्षैककारणम्। १२३।१०८

९३४. अपि नाम शिवं गुणानुबन्धि व्यसनस्फातिकरं शिवेतरम्।
तद्विषयस्पृहया तदेति मैत्रीमशिवं तेन न शान्तये कदाचित्॥ १२३।१७१

९३५. स्वकलत्रसुखं हितं रहित्वा परकान्ताभिरतिं करोति पापः।
व्यसनार्णवमत्युदारमेष प्रविशत्येव विशुष्कदारुकल्पः॥ १२३।१७४

९३६. सुकृतस्य फलेन जन्तुरुच्चैः पदमाप्नोति सुसम्पदां निधानम्।
दुरितस्य फलेन तत्तु दुःखं कुगतिस्थं समुपैत्ययं स्वभावः॥ १२३।१७६

परिशिष्ट–२

पद्मपुराण की प्रमुख वंशावलियाँ

राक्षस-वंश
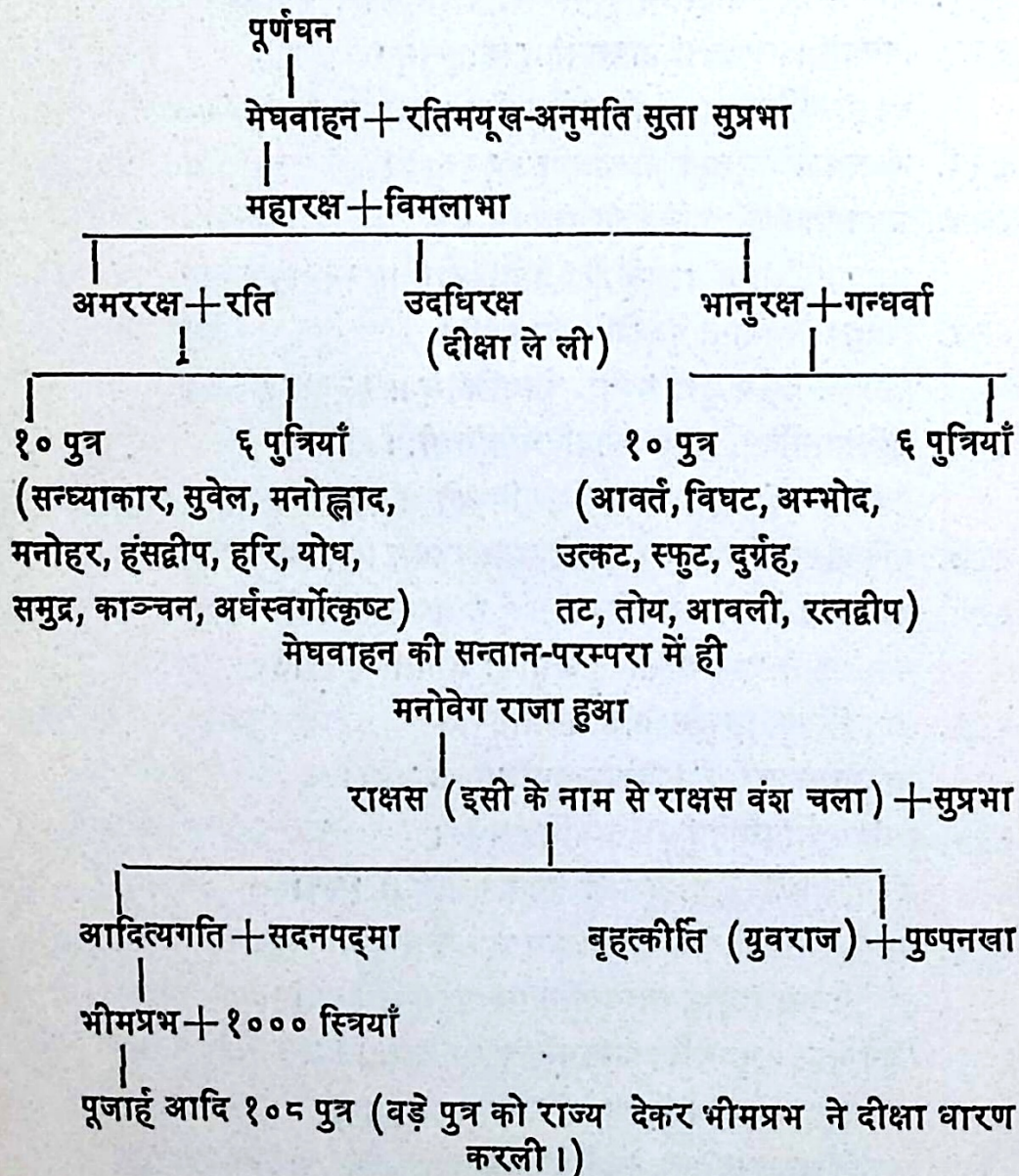
जिन भास्कर, सम्परिकीर्ति, सुग्रीव, हरिग्रीव, श्रीग्रीव, सुमुख, सुव्यक्त, अमृतवेग, भानुगति, चिन्तागति, इन्द्र, इन्द्रप्रभ, मेघ, मृगारिदमन, पवि, इन्द्रजित्, भानुवर्मा, भानु, भानुप्रभ, सुरारि, त्रिजट, भीम, मोहन, उद्धारक, रवि, चकार, वज्रमध्य, प्रमोद, सिंहविक्रम, चामुण्ड, मारण, भीष्म, द्वीपवाह, अरिमर्दन, निर्वाण-भक्ति, उग्रश्री, अर्हद्भक्ति, अनुत्तर, गतभ्रम, अनिल, चण्ड, लंकाशोक, मयूरवान् महाबाहु, मनोरम्य. भास्कराभ, बृहद्गति, बृहत्कान्त, अरिसन्त्रास, चन्द्रावर्त,

महारव, मेघध्वान, गृहक्षोभ, नक्षत्रदमन आदि करोड़ों विद्याधर इस वंश में हुए। चिरकाल वाद लंकाधिपति घनप्रभ (जिसकी रानी पद्मा थी) इस वंश में हुआ जिसका पुत्र कीर्तिधवल हुआ (जिसकी रानी अतीन्द्र की सुता देवी थी।) भगवान् मुनि सुव्रत के तीर्थ में इसी वंश में वानरवंशी महोदधि का समकालीन राजा हुआ—
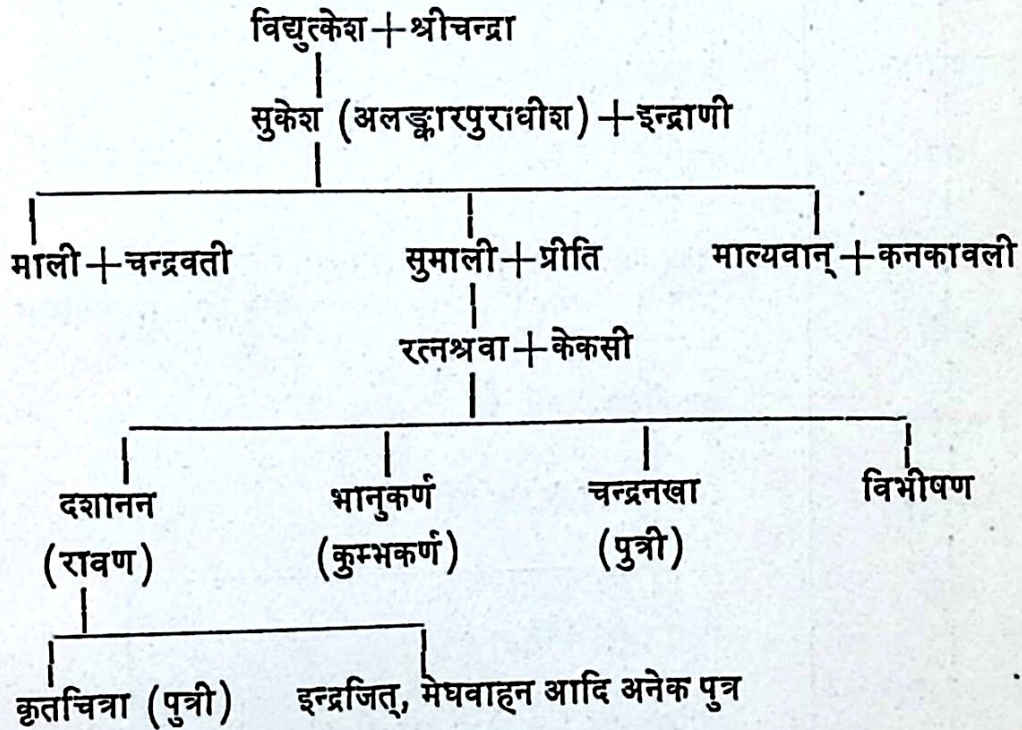
इक्ष्वाकु-वंश
(रामपर्यन्त)
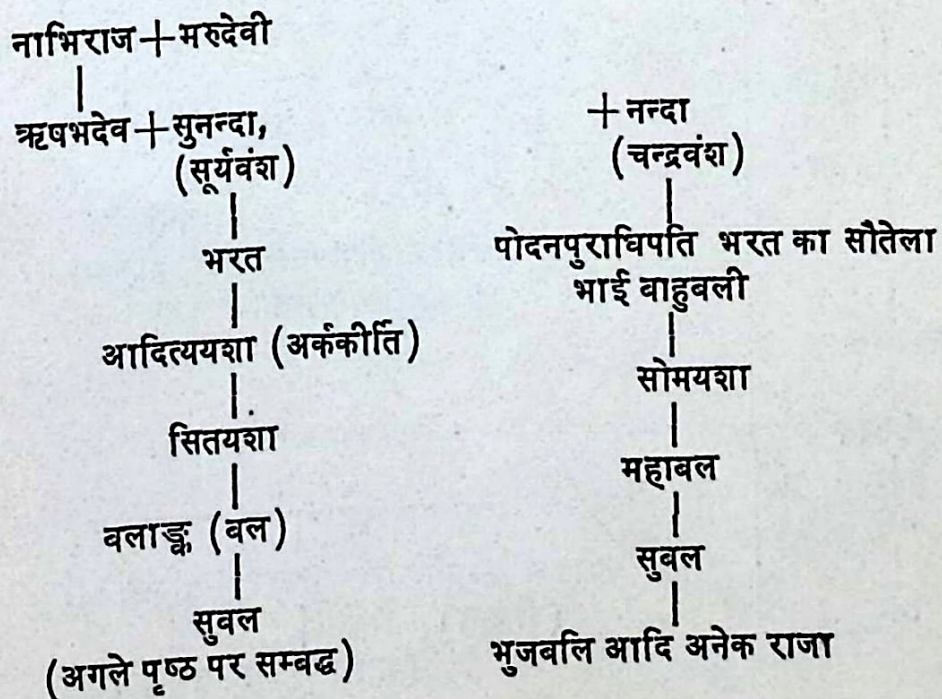
(अगले पृष्ठ पर सम्बद्ध)

(अगले पृष्ठ पर सम्बद्ध)

वज्रकण्ठ + चारुणी
वज्रप्रभ
इन्द्रमत
मेरु
मन्दर
समीरणगति
रविप्रभ + गुणवती
कपिकेतु + श्रीप्रभा
प्रतिबल
गगनानन्द
खेचरानन्द
गिरिनन्दन
अनेक संख्यातीत राजा जिन्होंने स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त किया :
मुनि सुव्रत के तीर्थकाल में
महोदधि + विद्युत्प्रकाशा
१०८ पुत्र जिनमें अन्यतम प्रतिचन्द्र
किष्कन्ध + श्रीमाला
अन्ध्रक (-रूढ़ि)
सूर्यरजा + चन्द्रमालिनी
ऋक्षरजा + हरिकान्ता
सूर्यकमला + मृगारिदमन
(पुत्री) (मेरु-मघोनी-सुत)
नल
नील
वाली + ध्रुवा
सुग्रीव + सुतारा
श्रीप्रभा + रावण
(पुत्री)
अंग
अंगद
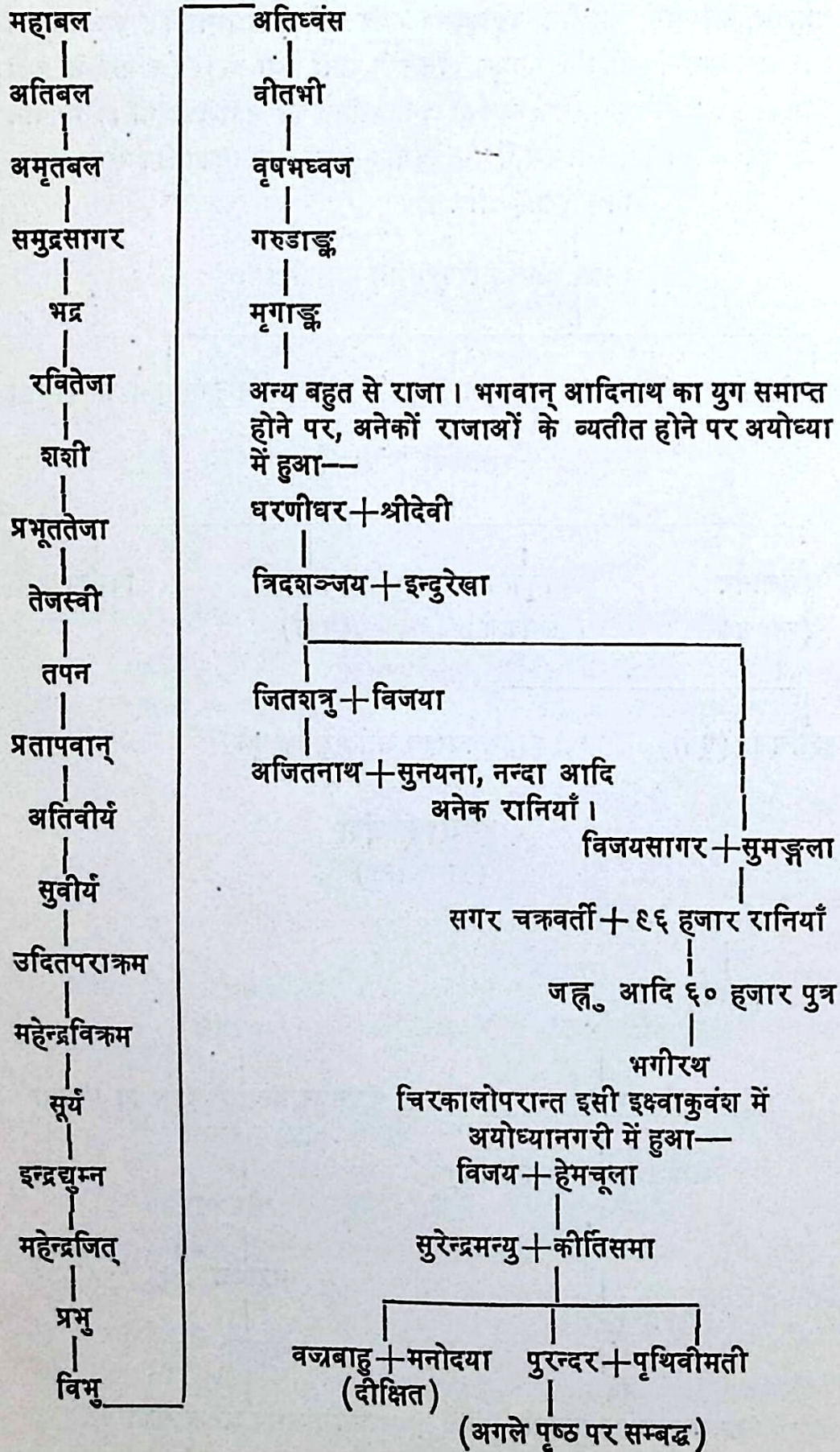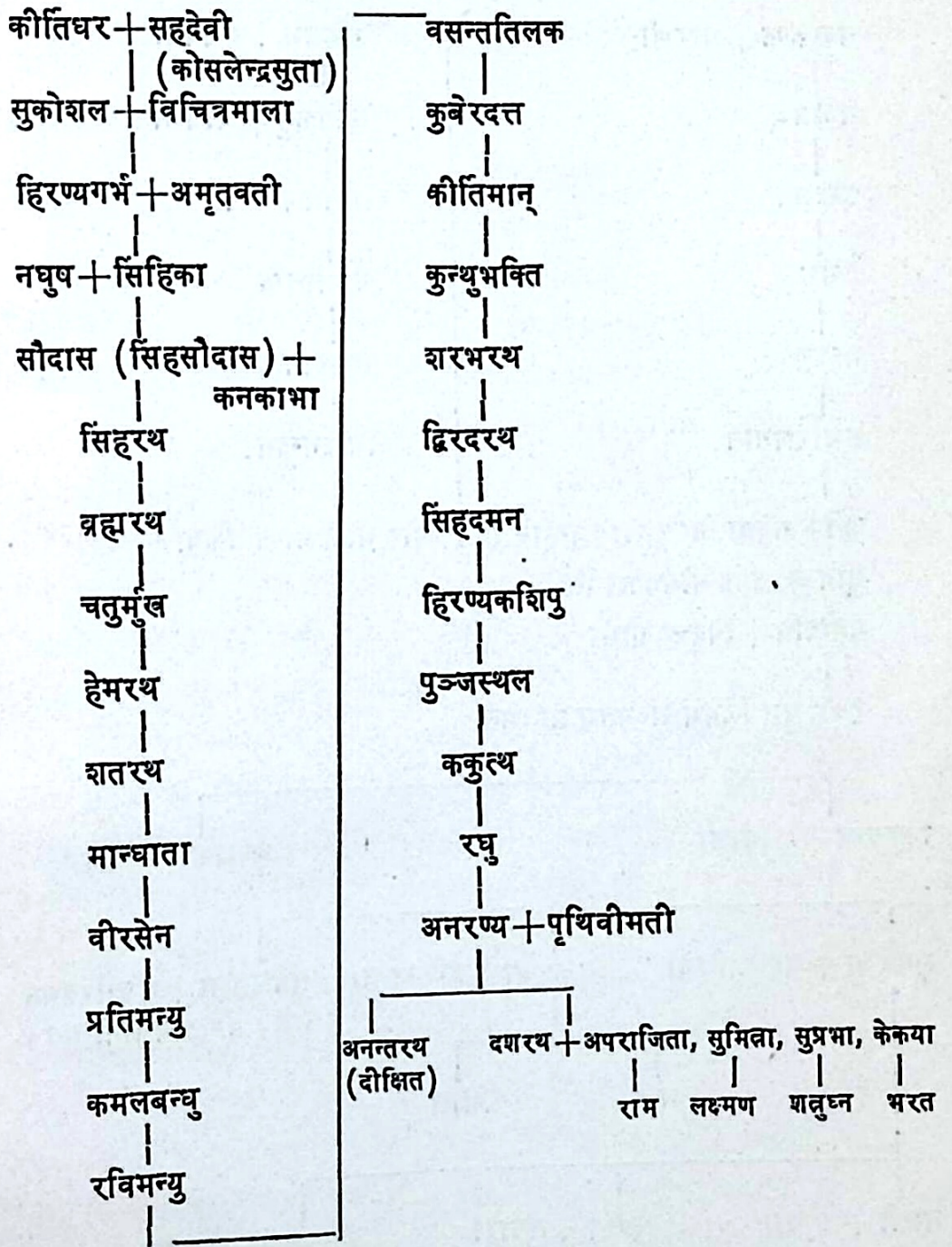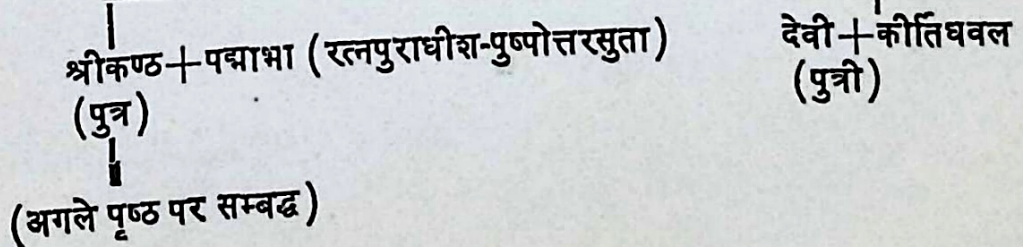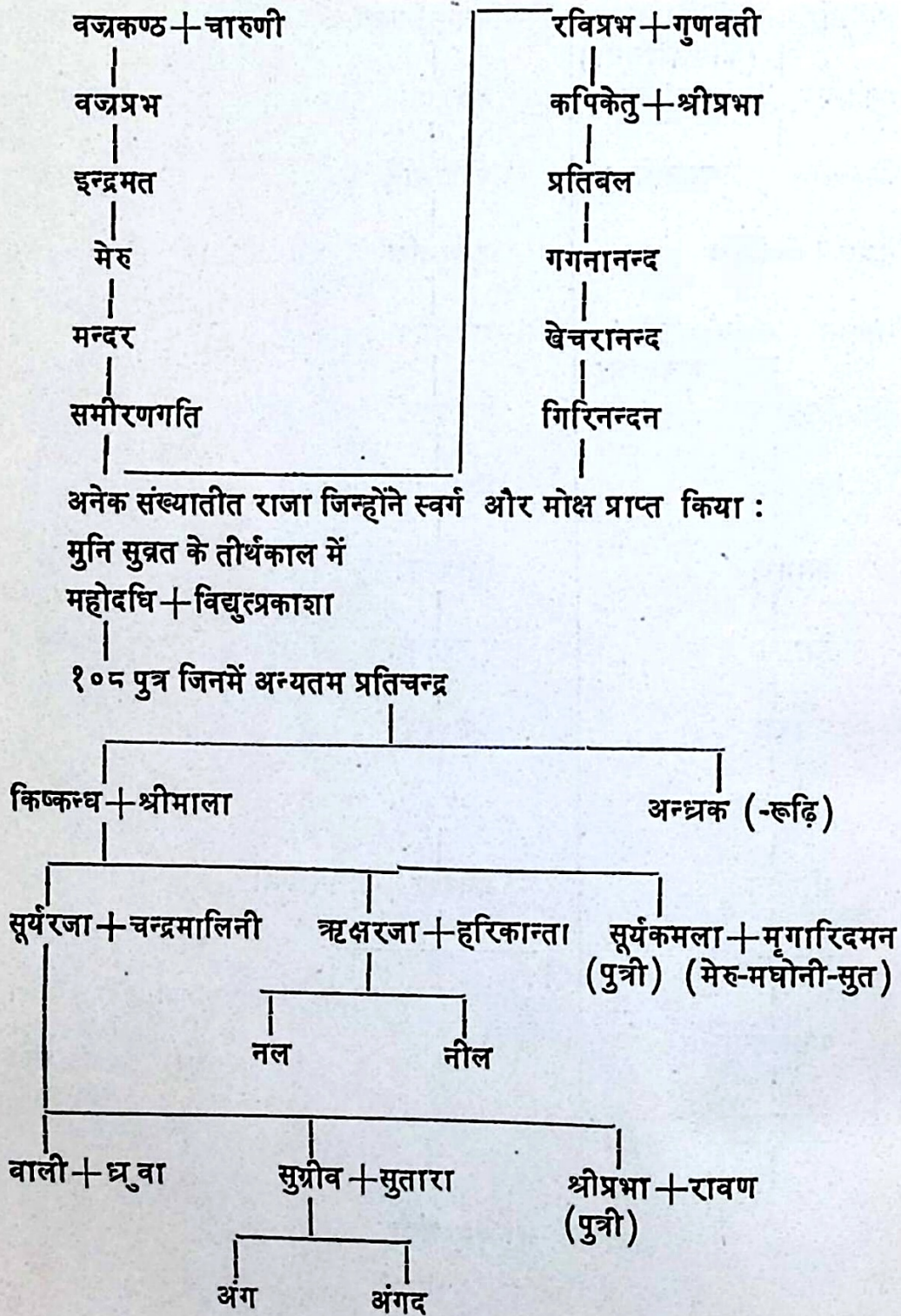
परिशिष्ट—३

संकेतित-ग्रन्थ-सूची

१. अकबरनामा : अबुलफजल
२. अथर्ववेद
३. अध्यात्मरामायण : व्यास
४. अनर्घराघव : मुरारि
५. अनामकं जातकम्
६. अमरुशतक : अमरुक
७. अष्टमहाश्रीचैत्यस्तोत्र : हर्ष
८. आश्चर्यचूड़ामणि : शक्तिभद्र
९. आदिपुराण : जिनसेन
१०. उत्तरपुराण : जिनसेन
११. उत्तररामचरित : भवभूति
१२. उदात्तराघव : मायुराज
१३. उदारराघव : साकल्यमल्ल
१४. उन्मत्तराघव : भास्करभट्ट
१५. उल्लासराघव : सोमेश्वर
१६. ऐहोल शिलालेख
१७. कथाकोषप्रकरण : जिनविजय
१८. कवितावली : तुलसी
१९. कल्याण (मानसांक)
२०. कहावली : भद्रेश्वर
२१. कात्यायनश्रौतसूत्र
२२. कादम्बरी : बाणभट्ट
२३. काव्यप्रकाश : मम्मट
२४. काव्यादर्श : दण्डी
२५. काव्यालंकार : रुद्रट
२६. काशिका
२७. किरातार्जुनीय : भारवि
२८. कुन्दमाला : दिङ्नाग
२९. कुवलयमाला : उद्योतनसूरि
३०. कृष्णगीतावली : तुलसी
३१. कुमारसम्भव : कालिदास
३२. गीतावली : तुलसी
३३. चउपन्नमहापुरिसचरिय : शीलाचार्य
३४. चण्डीशतक : बाण
३५. चारित्तपाहुड : कुन्दकुन्द
३६. चित्रबन्धरामायण : वेंकटेश
३७. छक्कम्मोवएस : अमरकीर्ति
३८. छन्दमाला : कुलशेखर
३९. जानकीपरिणय : चक्रकवि
४०. जानकीहरण : कुमारदास
४१. जिनरामायण : चंद्रसागर वर्णी
४२. जीवनसम्बोधन : बन्धुवर्मा
४३ जैनसाहित्य और इतिहास : नाथूराम प्रेमी
४४. डेवलपमेण्ट ऑफ ट्रेड एण्ड इण्डस्ट्री अण्डर दी मुगल्स : एस. एस. कुलश्रेष्ठ
४५. तत्त्वार्थसूत्र : उमास्वाति
४६. तुलसी : डा० उदयभानुसिंह
४७. तुलसीदास : डॉ० माताप्रसाद गुप्त
४८. तुलसीदास और उनका युग : डॉ० राजपति दीक्षित

४९. तुलसी और उनका काव्य : डॉ० रामनरेश त्रिपाठी
५०. तुलसी रसायन : डॉ० भगीरथ मिश्र
५१. तुलसी-ग्रन्थावली : सं० रामचन्द्र शुक्ल, भगवानदीन, ब्रजरत्नदास
५२. तिलोयपण्णत्ति : यतिवृषभ
५३. तिसठ्ठीमहापुरिसगुणालंकारु : पुष्पदन्त
५४. त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित : हेमचंद्र
५५. त्रिषष्टिशलाकापुरुषपुराण : चामुण्डराय
५६. दशकुमारचरित : दण्डी
५७. दी हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ दी इण्डियन पीपिल-दी क्लैसिकल एज : आर. सी. माजूमदार आदि।
५८. दी कलेक्टेड वर्क्स ऑफ भन्डारकर, वाल्यूम-३
५९. दूतांगद : सुभट्ट
६०. दोहावली : तुलसी
६१. धर्मपरीक्षा
६२. धूर्तायानम् : हरिभद्र
६३. नीतिशतक : भर्तृहरि
६४. पम्परामायण : अभिनव पम्प
६५. पउमचरिउ : स्वयंभू
६६. पउमचरिय : विमलसूरि
६७. पद्मचरित (पद्मपुराण) : रविषेण
६८. पंचतंत्र : विष्णु शर्मा
६९. पंचसंग्रह (संस्कृतानुवाद : अमितगतिसूरि
७०. पार्वतीमंगल : तुलसी
७१. पुण्याश्रवकथाकोष : रामचन्द्र मुमुक्षु
७२. पुण्याश्रवकथासार : नागराज
७३. पुराणविमर्श : बलदेव उपाध्याय
७४. पुराणविषयानुक्रमणी (राजनीतिक) : डा० राजबली पाण्डेय
७५. पुरुषसूक्त (ऋग्वेद)
७६. पृथ्वीराज रासो : चन्दवरदाई
७७. पंचास्तिकाय : कुन्दकुन्द
७८. प्रतिमानाटक : भास
७९. प्रवचनसार : कुन्दकुन्द
८०. प्रसन्नराघव : जयदेव
८१. प्राचीन भारत का इतिहास : रमाशंकर त्रिपाठी
८२. प्राचीन भारत का इतिहास : वी० डी० महाजन
८३. प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका : डा० रामजी उपाध्याय
८४. बरवै रामायण : तुलसी
८५. बालरामायण : राजशेखर
८६. भक्तामरस्तोत्र : मानतुंग
८७. भगवती आराधना
८८. भारत का प्राचीन इतिहास : एन० एन० घोष
८९. भारतीय दर्शन : डॉ. राधाकृष्णन्
९०. भारतीय संस्कृति : डा० बलदेव-प्रसाद मिश्र

९१. भावसंग्रह : देवसेन
९२. भावार्थरामायण : एकनाथ
९३. मध्ययुगीन वैष्णव संस्कृति और तुलसीदास : डा० रामरतन भटनागर
९४. मनुस्मृति
९५. महाभारत
९६. महावीरचरित : भवभूति
९७. मानस का कथाशिल्प : श्रीवरसिंह
९८. मालतीमाधव : भवभूति
९९. मिडिल मिस्टीसिज्म ऑफ इण्डिया
१०० मिडीवल इण्डिया अण्डर मुहमडन रूल : डा० स्टेनली लेनपूल
१०१ मुगल्स एडमिनिस्ट्रेशन : सर यदुनाथ सरकार
१०२. मेघदूत : कालिदास
१०३. मैथिलीकल्याण : हस्तिमल्ल
१०४. याज्ञवल्क्यस्मृति
१०५. रघुवंश : कालिदास
१०६. राघवनैषधीय : हरदत्तसूरि
१०७. राघवपाण्डवीय : धनंजय
१०८. राघवपाण्डवीय : माधवभट्
१०९. रामकथा : कामिल बुल्के
११०. रामकथावतार : देवचन्द्र
१११. रामचरित : अभिनन्द
११२. रामचरितः पद्मदेवविजयगणि
११३. रामचरित : सन्ध्याकरनन्दि
११४. रामचरित (रामपुराण) सोमसेन
११५. रामचरितमानस : तुलसी
११६. रामचरित रामायण : भूपति
११७. रामचरितमानस में लोकवार्ता : चन्द्रभान
११८. रामदेवपुराण (रामायण) : जिनदास
११९. रामलक्खणचरिय : भुवनतुंगसूरि
१२०. रामलला नहछू : तुलसी
१२१. रामलीलामृत : कृष्णमोहन
१२२. रामविजय : देवप्प
१२३. रामविवाह : भालण
१२४. रामायण : कुमुदेन्दु
१२५. रामायण : कृत्तिवास
१२६. रामायणमंजरी : क्षेमेन्द्र
१२७. रामार्चनपद्धति : रामानन्द
१२८. रामाज्ञाप्रश्न : तुलसी
१२९. रावणवध (भट्टिकाव्य) : भट्टि
१३०. लघुत्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित : सोमप्रभ
१३१. लघुत्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित : मेघविजय गणिवर
१३२. लोकविभाग : सर्वनन्दि
१३३. वरांगचरित : जटिलमुनि
१३४. वाल्मीकिरामायण : वाल्मीकि
१३५. वासवदत्ता : सुबन्धु
१३६. विनयपत्रिका : तुलसी
१३७. विषापहारस्तोत्र : धनंजय
१३८. वैराग्यशतक : भर्तृहरि
१३९. शिशुपालवध : माघ
१४०. शृंगारशतक : भर्तृहरि
१४१. श्रीमद्भागवत : व्यास
१४२. श्रीमद्भगवद्गीता : व्यास
१४३. समयसार : कुन्दकुन्द
१४४. साकेत: एक अध्ययन : डा० नगेन्द्र

१४५. साहित्यदर्पण : विश्वनाथ
१४६. साहित्य, शिक्षा और संस्कृति : डा० राजेन्द्र प्रसाद
१४७. सीयाचरिय : भुवनतुंगसूरि
१४८. सूर्यशतक : वाणभट्ट
१४९. संस्कृत-कवि-दर्शन : डॉ० भोलाशंकर व्यास
१५०. संस्कृत साहित्य का इतिहास : कन्हैयालाल पोद्दार
१५१. संस्कृत साहित्य का इतिहास : वाचस्पति गैरोला
१५२. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा : चन्द्रशेखर पाण्डेय
१५३. हर्षचरित : वाणभट्ट
१५४. हर्षचरित: एक सांस्कृतिक अध्ययन : डा० वासुदेवशरण अग्रवाल
१५५. हरिवंशपुराण : जिनसेन
१५६. हंससन्देश (हंसदूत) : वेंकटेश
१५७. हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप-विकास : डा० शम्भुनाथसिंह
१५८. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
१५९. हिन्दी-साहित्य-कोश, भाग १ : सं० धीरेन्द्र वर्मा
१६०. हिस्ट्री ऑफ इण्डिया एज़ टोल्ड वाइ इट्स ओन हिस्टोरियन्स : इलियट एण्ड डौसन
१६१. हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर : ए. ए. मैक्डानल